श्री देवराहा हंसावतरण

श्री देवराहा हंस बाबा
दिव्य-दर्शन और परा-वाणी
(आदि खंड)



सम्पादन

ज्ञानेश्वर



प्रकाशक

ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबा
शोध संस्थान
(स्वर्गाश्रम, भागदेवर, महुआरी कलाँ, मिर्जापुर जनपद, उ० प्र०)



प्रकाशन सहयोग

मंजुलराज प्रकाशन

जवाहर लाल नेहरू मार्ग, पटना-१

आवरण सहयोग :
पवन प्रकाशन
पटना बाई-पास
पटना-२०

मुद्रण :
कमनीय प्रिन्टर्स
दक्षिणी मंदीरी
(श्री देवराहा नगर)
पटना-१

प्रकाशन योग

' मौनी अमावस्या '
माघ कृष्ण ३०, गुरुवार
संवत् २०५०
(तद्नुसार १० फरवरी, १९९४ ई०)



सहयोग : ५१ रु०
(विंध्याचल स्वर्गाश्रम गो-सेवा)

सम्पादकीय अभ्यर्थन

परमपूज्य योगिवर श्री देवराहा हंस बाबा जी के पाद-पद्मों में हमारे कोटि-कोटि प्रणमन निवेदित हैं।

यह हमारा प्रभु-प्रदत्त परम सौभाग्य है कि प्रथमत: अनेक पुस्तकों तथा मासिक पत्र 'पावन प्रसाद' के माध्यम से अमितश्री योगिराज देवराहा बाबा के गुण-गान का गौरव हमें प्राप्त हुआ और अब पूज्य महाराज जी के ही विंध्याचल आश्रम के सिद्ध सन्त तथा उनके विचक्षण प्रतिरूप श्री हंस बाबा जी महाराज के इस अभ्यर्थन और विरुदावली-निदर्शन द्वारा भी हमें गौरवान्वित होने का सुअवसर लभ्य हो रहा है।

योगिराज श्री देवराहा बाबा जी के विंध्याचल आश्रम के अपने परम वर्चस्वी शिष्य श्री हंस बाबा जी की योग-सिद्ध काया के माध्यम से अवतरण की सांकेतिक प्रथम चर्चा हमारे मासिक प्रकाशन 'पावन प्रसाद' के अक्तूबर १९९१ के अंक में 'पूज्य-चरण बाबा का विन्ध्याचल स्थित स्वर्गाश्रम' शीर्षक से श्री अमरनाथ ओझा के लेख में हुई। उसके बाद स्वर्गाश्रम-दर्शन में जाने वाले अन्य भक्तों के अनुभव-वृत्तों में भी यह तथ्य उजागर होने लगा और इसका विमुग्ध आह्लादपूर्ण उल्लेख अपने प्रेषित निबन्धों/प्रतिवेदनों में वे करने लगे।

श्री अमरनाथ ओझा की उक्त स्वर्गाश्रम-यात्रा में इलाहाबाद के सुविदित वरिष्ठ सतीर्थ बन्धु श्री चन्द्र कुमार शर्मा जी भी उनके सहयात्री थे और निश्चय ही श्री हंस बाबा जी के सम्बन्ध में उनकी भी वही धारणा बन चुकी थी जो ओझा जी ने अभिव्यक्त की है। इस सम्बन्ध में स्मरणीय है कि आदरणीय शर्मा जी पूज्यपाद श्री देवराहा बाबाजी के निकटतम गृहस्थ शिष्यों में अग्रणी स्थान रखते हैं।

इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेख्य है कि अशरीरी हुए योगिराज श्री देवराहा बाबा के अपने सिद्ध संत-शिष्य श्री हंस बाबा जी के रूप में पुन: सकाय होने की प्रक्रिया का पूर्ण बोधगम्य वर्णन श्री वैरागी बाबा जी के

ही निबन्धों में भली-भाँति हुआ जिसका आरम्भिक आख्यान पुस्तक के शुरू में ही 'योगिराज देवराहा बाबा प्रत्यावर्त्तन प्रसंग' शीर्षक से आया है। बाद के उनके लेखों के शीर्षक हैं 'ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा : उत्तर-चरित पीठिका' (पृ० ३६-४४), 'योगिराज ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा का पुनः अवतरण' (पृ० ७०-७६) तथा 'ऋषि परम्परा के संत श्री हंस बाबा जी' (पृ० ८९-९४)। जिज्ञासु जनों के लिए श्री वैरागी बाबा की ये सभी व्याख्याएँ अनिवार्यतः पठनीय हैं। इनके अवलोकन-मनन से यह भली-भाँति स्पष्ट होगा कि आसन्न युग-परिवर्तन की प्रक्रिया को तीव्रतर करने की आशु आवश्यकता-वश ही योगिराज का किसी योग-सिद्ध प्रौढ़ काया में अविलम्ब अवतरण और प्राकट्य अनिवार्य हो गया था।

विंध्य-पर्वत शृखंला के एक अति सुरम्य अन्तराल में अवस्थित पूज्य योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज का स्वर्गाश्रम उनसे सम्बन्धित अनेक आश्रमों में स्यात् सर्वाधिक प्राचीन और विशिष्ट है। कहा जाता है, यहाँ का 'हाई-कोर्ट' नाम से पुकारा जाने वाला स्थान ही वह पूत परिसर था जहाँ ऋषियों की अध्यात्म तथा युग-परिवर्तन सम्बन्धी संगोष्ठियाँ पुरातन काल में हुआ करती थीं। सामान्य लोक दृष्टि से दूर, अपने इसी आश्रम पर पूज्य महाराजजी ने श्री हंस बाबा को—जिन्हें वे 'सिद्ध सन्त' कहा करते थे—पहले से ही प्रतिनियुक्त कर रखा था। और अपना तत्कालीन शरीर त्यागने के पूर्व वे पूरी परिस्थिति का जायजा पुनः ले लेने के लिए प्रयाग माघ मेला से मात्र एक-दो दिवस के लिए तदर्थ यहाँ पधारे भी थे। तात्पर्य यह है कि उनके द्वारा पुरानी जीर्ण अनुपयुक्त काया को छोड़कर एक नये सिद्ध शरीर का आलम्बन ग्रहण कर लेने की यह योजना सुचिन्तित और पूर्व-नियोजित थी। उनके इस निर्णय से अनभिज्ञ थे तो केवल भक्तगण, किन्तु पूज्य बाबा जानते थे कि सत्य-स्थिति से वे भी शीघ्र ही परिचित और अभिज्ञ हो जायेंगे और सांत्वना, विश्वास और आध्यात्मिक परितुष्टि के भागी बनेंगे।

यही सब अब हो रहा है—पूज्य हंस बाबाजी के माध्यम से योगिराज बाबा के शिष्य अब जागतिक कल्याण के साथ-साथ अशेष आध्यात्मिक ऐश्वर्य के भी भागी बन रहे हैं!

यह संकलन मुख्यतः पूज्य योगिराज श्री देवराहा बाबाजी के भक्तों की भावनाओं तथा अनुभवों की अभिव्यक्ति के एक माध्यम के रूप में

ही प्रस्तुत हुआ है। पाठक वृन्द पायेंगे कि ऊपर जो कुछ निवेदित किया गया वही समग्र सत्य इनमें प्रचुर रूप से मुखरित और स्थापित हो रहा है, हुआ है।

परा-वाणी अर्थात् परमार्थ का ज्ञान देने वाली वाणी, अथवा ब्रह्म-विद्या। पूज्य हंस बाबा जी महाराज द्वारा उपदिष्ट 'ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा अध्यात्म-तत्त्व-दर्शन' की व्याख्या के प्रसंग में सेन्ट एण्ड्रूज कालेज, गोरखपुर के संस्कृत विभागाध्यक्ष प्रो० माधव अनन्त फड़के जी ने कहा है (पृ० ४४-४५) कि "ये श्लोक अथवा पंक्तियाँ संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं एवं पूर्णतया अध्यात्म-तत्त्व से अनुस्यूत हैं—अतः स्वतः आलोकित हैं; ये पंक्तियाँ आर्ष हैं (अर्थात् ऋषि-कृत अथवा ऋषि-प्रयुक्त हैं), अतः संस्कृत भाषा या व्याकरण के नियमों से अनियंत्रित हैं। प्रस्तुत संकलन की पंक्तियाँ गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों से सम्पुटित एवं भक्ति रस से अभिसिंचित हैं। श्लोक की प्रत्येक पंक्ति 'सर्वम् प्रियम् नारायणः' इन शब्दों में पर्यवसित होती है अर्थात् जो कुछ भी दृश्य-अदृश्य है वह सब नारायण है।...ये पंक्तियाँ शुद्ध भाव से पठित होने पर तल्लीन अवस्था में मानव की हृत्तंत्री को पूर्णतया झंकृत करने में सर्वतोभावेन सक्षम हैं।"

प्रो० फड़के के इन कथनों के परिप्रेक्ष्य में ही परा-वाणी के संस्कृत-हिन्दी सभी सूत्रों का पठन-पाठन श्रेयस्कर होगा। वैसे भक्तप्रवर डा० मलय बी० दत्त ने भी 'श्री देवराहा बाबा अध्यात्म-तत्त्व दर्शन' के सूत्रों का जो हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है (पृ० ९८-११४) वह बड़ा ही योग्य और रुचिर है। श्री ओमप्रकाश सिंह तथा ईश्वर प्रसाद सिंह ने भी कुछ संस्कृत-निष्ठ परा-वाणी के सूत्र अर्थ-सहित प्रस्तुत किये हैं (पृ० २८४-५१ तथा १४७-४९) जो सर्वथा समीचीन हैं। इस सन्दर्भ में 'श्री देवराहा हंस बाबाजी की परा-वाणी' शीर्षक से प्रकाशित सुधी सतीर्थ बन्धु डा० राधा रमण का निबन्ध (पृ० १८६-१९६) भी कृपया अवश्य देखें।

अन्त में हम श्री अमरनाथ ओझा के उस निबन्ध की ओर विशेष रूप से ध्यानाकर्षण करना चाहेंगे जो इस संग्रह में 'ब्रह्मवेत्ता श्री देवराहा हंस बाबा लीलामृत' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है (पृ० २३२-३४)। उसमें विंध्याचल स्वर्गाश्रम के प्रस्तावित भावी विकास के प्रसंग में

वहाँ 'ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबा गीता-मानस मंदिर' के निर्माण की चर्चा की गयी है और साथ ही यह भी उन्होंने कहा है कि यह काशी के मानस मंदिर की तरह का ही होगा किन्तु उससे भी भव्यतर होगा क्योंकि इसमें मात्र मानस के ही नहीं सम्पूर्ण गीता के श्लोक भी अंकित रहेंगे। सभी सतीर्थ बन्धुओं के लिए यह एक अत्यन्त आह्लादकर संवाद है और हम इसका हार्दिक स्वागत करते हैं।

इस संदर्भ में श्री नरेश अनुरागी का 'विंध्याचल स्वर्गाश्रम और महात्मा हंस बाबा जी' शीर्षक से प्रकाशित लेख (पृ० ८१-८८) के अन्त में जो एक सुझाव 'श्री देवराहा बाबा योगाध्यात्म महाविद्यालय' के सम्बन्ध में प्रदत्त है वह भी विचाराधीन रखने योग्य है ताकि भविष्य में समुचित आधार मिलने पर उस ओर भी ध्यान दिया जा सके। स्पष्ट है कि इस प्रकार का एक महाविद्यालय उन आध्यात्मिक मूल्यों, मान्यताओं तथा उपलब्धियों के स्थायी और चिर काल व्यापी प्रचार-प्रसार के लिए—जो योगिराज महाप्रभु को प्रिय थे और जिनके उन्नयन के लिए श्री हंस बाबा जी के रूप में वे पुनः अवतरित हुए हैं अथवा हो रहे हैं—समागत नवयुग में अत्युपयोगी और कल्याणवाहक सिद्ध हो सकेगा।

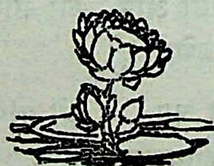
अन्त में मैं उन सभी भगवद्भक्तों तथा सतीर्थ बन्धुओं के प्रति भी अपना विनम्र अभिनन्दन और नमन निवेदित करता हूँ जिनके अभ्यर्चन-स्तवन और अनुभव इस संकलन में आकलित हैं और उनके प्रति भी जिनके अनुभव अभिलेख पुस्तक के अविलम्ब प्रकाशन की आवश्यकता के कारण—इसके प्रस्तुत आदि खण्ड में प्रकाशित नहीं किये जा सके।

—विनयावनत,

ज्ञानेश्वर



श्री देवराहा हंस बाबा
दिव्य-दर्शन और परा-वाणी



योगिराज देवराहा बाबा प्रत्यावर्त्तन प्रसंग

श्री रामविरागी दास जी (श्री वैरागी बाबा)

प्राचीन ऋषि युग से ही काया-प्रवेश का विधान चलता आ रहा है। आज इस सिद्धि का प्रयोग प्राचीन रूप में तो नहीं रह गया है, फिर भी कहीं-कहीं इस योग क्रिया का सदुपयोग देखने को मिलता है। काया-प्रवेश दो तरह से किया जाता है। एक में योगी अपनी व्यतीत आयु वाले कारण शरीर को किसी दूसरे किशोर या युवा वयवाली शव काया में प्रविष्ट कर काया-परिवर्तन कर लेते हैं। इस विधि में मन की वासनाएँ सजीव रहती हैं तथा यह योगियों की मुक्तावस्था नहीं है। दूसरी विधि को सूक्ष्मीकरण की संज्ञा दी जाती है। भूतलवासियों की अधर्म से आक्रान्त एवं पीड़ित चेतना को जगाने, सदाचार सिखाने, जन-कल्याण की व्यापक प्रेरणा देने, सत्ययुग आगमन काल की विशिष्ट घट-नाओं को सँभालने तथा स्वधर्म मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने के लिए ही यह दूसरे ढंग की काया-प्रवेश विधि है। यह सिद्धावस्था का विषय है। इस क्रिया को करने वाला योगी ब्राह्मी-स्थिति प्राप्त हुआ होता है, या ईश्वर-प्राप्ति की सबसे ऊँची भूमियां को पार कर गया होता है। एक तरह से वह ईश्वरीय सत्ता का ही अधिकारी कहा और माना जाता है।

ऐसी आर्ष-सत्ता प्राप्त महापुरुषों को भूतल का कार्य सौंपने के लिए ईश्वर का आदेश होता है। काया-प्रवेश करनेवाला आत्मसाधना की ऊँची अवस्था में पहुँचा हुआ सिद्धाचारी ऋषि अपनी दिव्य शक्ति से यह जान लेता है कि भूतल में कौन-सी आत्मा उसके योग्य है, जिसमें वह अपनी शक्ति का प्रक्षेपण करे।

कलियुग में सत्ययुग का प्रवेश

ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा को यह पहले से ही मालूम था कि कलियुग में सत्ययुग प्रवेश करनेवाला है। १९९० ई० के फाल्गुन मास में जब उनके विन्ध्य-स्थित आश्रम के संत हंसदासजी दर्शनार्थ वृन्दावन गये थे तब श्री महाराज ने आकाश की ओर देखते हुए उनसे यह घोषणा की थी कि "बच्चा, तत्काल तुमसे ही यह मैं कहता हूँ कि मैं हिमालय जाऊँगा।" यह उन ऋषिवर का अंतरंग भविष्यकथन था। इसके पूर्व

श्री बाबा ने हंसदासजी से विन्ध्याचल में कहा था कि "कलियुग में सत्ययुग प्रवेश कर रहा है, कहीं-कहीं पर चिराग जलता दिखाई देगा।" आनेवाले बीच के विनाशकारी समय को भी अपनी दिव्य शक्ति से वे जानते थे।

बुरे दिन समीप आ गए। ग्रह-नक्षत्रों के पृथ्वी पर पड़ने वाले प्रभाव को, इन दिनों सूर्य पर पड़ते धब्बे को तथा प्रायः होने वाले सूर्य-ग्रहण को धरती के निवासियों के लिए हानिकारक बताया गया। पृथ्वी की वायु, जल और जमीन तीनों विषाक्त हो गए हैं। यन्त्र युग की दानवी लीला ने विष बिखेर दिया है। फलतः दुर्बलता, रुग्णता और अकाल मृत्यु का खतरा हर किसी के सर पर मँडरा रहा है। अणु आयुधों के विस्फोट से पैदा हुआ जहर प्राणघातक सिद्ध हो चुका है। विपत्तियों और विभीषिकाओं से विषाक्त युग ने जीवन को नरकतुल्य बना दिया है।

ऐसे विनाशकारी समय को बदलने के लिए हिमालय-स्थित ऋषि सत्ताएँ ही सदा से प्रवृत्त एवं सक्षम रही हैं। भूतल पर जब-जब भी ऐसे समय आने के लक्षण होते है तब-तब ईश्वर की ओर से इन कारणावस्था में स्थित ऋषियों को आवश्यक निर्देश होता है।

इन्हीं कारणों से ब्रह्मलीन श्री देवराहा बाबा को अकाय होने की अकस्मात् घोषणा करनी पड़ी। वे सदा अपने शरीर-विसर्जन के संबंध में यह कहा करते थे कि "बच्चा, जबतक योगी चाहे तबतक वह रह सकता है।" परन्तु स्वेच्छाधीन आप्तकाम पुरुष के ऊपर युग-परिवर्तन का दायित्व सहसा आ पड़ा। इसलिए यह यात्रा भी उन्हें अकस्मात् करनी पड़ गई; चौदह वर्ष के भीतर कलियुग में सत्ययुग का प्रभाव लाना है, संहारक वृत्तियों पर काबू पाकर मानव के अन्तःकरण में बंधुत्व भाव की शृंखला जोड़नी है। ऐसे भारी समष्टि दायित्व का बोझ बिना पूज्य बाबा के समान देवमानव के दूसरा कौन वहन कर सकता?

पूज्य बाबा को उनके असंख्य भक्तगण भगवत्स्वरूप अथवा ब्रह्मरूप ही मानते रहे हैं। और उन विराट पुरुष ने ब्रह्म सत्ता में विलीन होने के पूर्व भी कुछ ऐसी ही घोषणा की थी—

"बच्चा, अब हम अपनी जगह जा रहे हैं। वह जगह हिमालय के तिब्बत क्षेत्र में है। वहाँ हमारी एक टोली है—जो बारी-बारी से

निर्देशानुसार पृथ्वी पर आती है। हम फिर पन्द्रह वर्ष के पूर्व ही भारत के अध्यात्म ज्ञान की रक्षा के लिए शरीर से आएँगे। तुम लोग चिन्ता नहीं करो।" यही उस ब्रह्मलीन परमपूत पार्थिव चेतन काया की प्रयाण से पूर्व की अंतिम वाणी थी।

स्थूल वपु त्यागने के बाद श्री महाराजजी अपनी सूक्ष्म ऋषि सत्ता की शक्ति से इस भूतल पर जो भी देव-क्रियाकलाप करना चाहेंगे, उसके लिए एक ऐसे शरीरधारी सिद्ध माध्यम की जरूरत थी जो विचार-संयम, अर्थ-संयम तथा इन्द्रिय-संयम से ऊँचा उठा हुआ समाधि-प्राप्त स्थिति का हो। जबतक ऐसा न हो जाय, कोई भी अशरीरी सत्ता अपनी दिव्यता का प्रयोग और संचालन नहीं कर सकती थी।

'बच्चा, हंसदास सिद्ध योगी है'

लगता है कि ईश्वरीय निदेशों के इस विलक्षण दायित्व को सँभालने के लिए, पूर्व से ही श्री महाराजजी ने अपने तपस्यारत आचार-विचार सम्पन्न संयमी शिष्य श्री हंसदासजी को निर्दिष्ट कर रखा था। वह पूज्य महाराजजी के ही आदेशाधीन विंध्याचल आश्रम के प्रभारी संत बहुत काल से थे। इनके योगनिष्ठ गुणों के कारण ही श्री महाराजजी इनके बारे में कहा करते थे कि 'बच्चा, हंसदास सिद्ध योगी है।' चिर काल से यही विचार महामुनि ब्रह्मर्षि श्री बाबा के थे। लगता है कि श्री हंसदासजी को इस सिद्धावस्था तक पहुँचाने के लिए श्री महाराजजी की योग की गुप्त प्रक्रिया भी चलती रही थी।

अर्थात्—पूज्य बाबा अप्रत्यक्ष रूप से हंसदासजी की साधना के यान को स्वयं गतिमान रख रहे थे। और हंसदासजी भी गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर विन्ध्याचल आश्रम के प्रभारी संत मनोनीत किये जाने के बाद भी मंच पर आसीन नहीं होकर एक विरक्त फकीर की तरह दरवेश के रूप में रह रहे थे; और आज भी वे उसी रूप में देखे जाते हैं। मठ में कई अच्छे कमरे भी बने हुए हैं, परन्तु उन्होंने इनका इस्तेमाल कभी नहीं किया। आश्रम से दूर कुटीरवासी बन कर गुरु-सन्निधि और भगवदाराधन की साधना में लीन रहना ही इन्हें सदा प्रिय रहा।

अशरीरी श्री बाबा का आह्वान : ऋषि सत्ताओं का केन्द्र हिमालय

जब पूज्य महाराजजी का स्थूल काया से गमन हो गया तो उस समय संवाद सुनते ही हंसदासजी की हालत विक्षिप्त-जैसी हो गयी। वे किधर जायें और क्या करें, कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे। वे बिना कहे-सुने आश्रम से बृन्दावन पहुँचने के लिए निकल पड़े जहाँ श्री महाराजजी ने शरीर त्यागा था। विंध्याचल आश्रम के उत्तर विंध्यगिरि की अनेक शृंखलाएँ फैली हुई हैं। उनको पार करते हुए जब वे पर्वत के ऊपर उस प्राकृतिक सरोवर के पास पहुँचे जिसे गेरुवाँ तालाब कहाँ जाता है तो एक आश्चर्यमय घटना घटी। वहाँ इन्हें लगा कि मानो अदृश्य होकर स्वयं बाबा कह रहे हैं—'बच्चा, तुमको हिमालय आना है, वहीं आदेश मिलेगा।' इतना कह कर वह दिव्य वाणी शून्य में समा गयी। श्री हंसदास भी अब असमंजस में घिर गये। ये तो वृन्दावन जा रहे थे और अदृश्य शक्ति के रूप में श्री बाबा इनको हिमालय बुला रहे हैं। श्री बाबा के साथ रहने से, तथा विन्ध्याचल में उनके बार-बार अकाय और सकाय दोनों रूप में सन्निधि देने तथा नजदीक से वार्त्तालाप के कारण, उस ध्वनि को पहचानने में इनको तनिक भी देर नहीं लगी कि यह तो पूज्य महागुरु श्री देवराहा बाबा जी महाराज की ही देववाणी है। विश्वास करने का दूसरा कारण बना श्री महाराजजी द्वारा फाल्गुन मास में हिमालय-गमन सम्बन्धी की गयी घोषणा। दोनों घटनाओं ने महात्मा हंसदासजी को वृन्दावन के बदले हिमालय जाने के लिए मजबूर कर दिया। ट्रेन और बस के द्वारा जैसे-तैसे ये हरिद्वार और वहाँ से ऋषिकेश पहुँचे। ऋषिकेश से गंगोत्री तक बस जाती है। उनको तपोवन से आगे नन्दनवन पहुँचना था जहाँ से आगे महागुरु श्री देवराहा बाबा अशरीरी रूप से विराजमान हो रहे थे। यह स्थान तिब्बती हिमालय में है और इसे धरती का स्वर्ग अथवा सिद्धों का देश या ज्ञान-गंज के नाम से पुकारा जाता है।* उसे हिमालय का हृदय भी कहा जाता है तथा ऋषि सत्ताएँ अगोचर रूप से वहाँ निवास करती हैं। उत्तराखण्ड

* ध्यातव्य है कि इसका उल्लेख जगद्‌गुरु पुरुषोत्तमाचार्य जी महाराज (सुग्रीव किला, अयोध्या) तथा मूर्धन्य साहित्यकार श्री नरेश के जुलाई १९९० के 'पा० प्र०' विशेषांक (भगवत्स्वरूप देवराहा बाबा अर्चा विशेषांक) में प्रकाशित लेखों में भी आया है।

का वह क्षेत्र दुर्गम है। यमुनोत्री से लेकर नन्दादेवी तक इसका विस्तार है। यहीं वे विभु ऋषि सत्ताएँ निवसित हैं जिनका आध्यात्मिक प्रकाश अभी भी भारतीय संस्कृति के अस्तित्व को अनुप्राणित रखे हुए है।

परमसंत लाहिड़ी महाशय के गुरु श्री बाबाजी महाराज भी जिनका "ऑटो बायोग्राफी ऑफ ए योगी" में उल्लेख किया गया है—सूक्ष्म शरीर से इसी क्षेत्र में रहते आये हैं। थियासफी की संस्थापिका मैडम ब्लावट्स्की के अनुसार भी सूक्ष्म कायाधारी सिद्धों का पार्लियामेन्ट इसी क्षेत्र में है। ऋषि सत्ताओं का निवासस्थान तथा देवताओं का क्रीड़ास्थल भी यहीं है।

श्री मद्भागवत तथा स्कन्दपुरान में इस स्थान को उन सिद्ध पुरुषों का निवास बताया गया है जो सारे विश्व के उपकार हेतु अहर्निश तपस्यारत रहते हैं।

स्वामी श्री राम की पुस्तक "लिविंग विथ हिमालय मास्टर्स" में ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख है जिनमें हिमालय के सिद्ध योगियों की विलक्षणता की बात आती है। पॉल ब्रंटन की लिखी पुस्तक 'इन सर्च ऑफ सिक्रेट इण्डिया' में भी इस पावन क्षेत्र को देवलोक माना गया है।

गायत्री महाभियान के प्रवर्तक आचार्य श्रीराम शर्मा जी ने अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में इस क्षेत्र की महिमा का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस क्षेत्र के देवताओं का क्रीड़ास्थल होने के कारण ब्रह्मपरायण जीवन जीने वाले देवमानव यहाँ रहकर दार्शनिक शोधों में निरत रहते थे। दिव्यदर्शियों का कथन है कि ब्रह्माण्ड की सघन आध्यात्मिक चेतना का धरती पर विशिष्ट अवतरण यहाँ की भू-चुम्बकीय व आध्यात्मिक विशेषताओं के कारण इसी क्षेत्र में होता है। नारदजी विष्णु भगवान् से महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श करने स्वर्ग-लोक संभवतः इसी मार्ग से जाया करते होंगे। पौराणिक आख्यानों के अनुसार श्री दशरथ को इन्द्र द्वारा सहायता के लिए बुलाना, अर्जुन का इन्द्रलोक जाना, दधीचि का देवगणों को अस्थिदान देना, सुकन्या के आह्वान पर अश्विनीकुमारों द्वारा च्यवन ऋषि का कायाकल्प कर देना, आदि प्रमाणित करते हैं कि पृथ्वी पर स्वर्ग कहीं होगा तो इसी क्षेत्र में होगा।

इस क्षेत्र में अनगिनत ऐसी गुफाएँ, कन्दराएँ, झीलें, प्रपात तथा गुप्त स्थान हैं जिनमें तापमान भी अनुकूल और योग्य होता है तथा उनमें निवास करते हुए तत्त्वज्ञान और विज्ञान का संधान भी अति सुकर हो जाता है।

पतंजलि, चरक, आर्यभट्ट के चिंतन और प्रयोग स्थल यहाँ थे एवं कणाद ने अणु-विज्ञान का शोध कार्य यहीं किया था। शास्त्रों की रचना, योगाभ्यास की सफलताएँ, अध्यात्म का विकास तथा चिकित्सा शास्त्र की उपलब्धियाँ इसी क्षेत्र के प्रभाव में होती थीं।

सबसे बड़ी विशेषता यहाँ की यह थी कि पार्थिव शरीर को सूक्ष्म शरीर में विकसित कर उसे इच्छानुसार लम्बी अवधि तक जीवित बनाए रखना संभव था। सूक्ष्म तथा कारण शरीर को समर्थ बनाने के उपरांत स्थूल शरीर के न रहने पर भी मनुष्य का अस्तित्व सदियों तक बना रहता है। यहाँ पर अमृततुल्य दो कंद भी हैं जिनका नाम ब्रह्मकमल और देवकन्द है, जिनको ग्रहण करने पर थोड़ी ही देर में योगनिद्रा की स्थिति हो जाती है।

प्राणोत्सर्ग का संकल्प

श्री हंसदासजी को यहीं पर बुलाया गया था। प्रातःकाल ऋषि-केश से गंगोत्री की बस पकड़कर हंसदासजी गंगोत्री पहुँचे। उस समय रात्रि के नौ बजे थे। अविरल शोक-जन्य अश्रुपात के कारण उनकी आँखें सूज गयी थीं और स्थिति संज्ञाशून्य की-सी हो चुकी थी। जिस सद्गुरु की छाया में उनका ब्रह्मज्ञान विकसित हुआ था, उनका सहसा दृष्टि से तिरोभूत हो जाना मर्मान्तिक पीड़ा का कारण बन गया था। अन्ततः असह्य दुःख के कारण गंगोत्री की धाराओं में प्राण देने का संकल्प उन्होंने लिया। गंगा के किनारे एक बड़ी शिला थी जिस पर खड़े होकर वेगयुक्त प्रवाह में कूद जाने की वे तैयारी करने लगे। उसी समय उनके मन में भाव आया कि पहले माँ भागीरथी से प्रार्थना कर लूँ तब शरीर भेंट चढ़ाऊँ। "हे माता, जब मेरे महाप्राण सद्गुरु जी ही शरीर से नहीं रहे तो मैं यह देह रखकर क्या करूँगा।" ऐसा संकल्प व्यक्त कर उन्होंने मृत्यु का वरण करना ही चाहा कि ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा की चिर-परिचित वाणी ध्वनित हो उठी—"बच्चा, तुम पीछे हटो। अब तुम्हें ही शेष कार्य का माध्यम बनना है। मेरा

वहाँ से सत्वर लौटना अनिवार्य हो गया था।" यह विश्ववंद्य गुरुजी की ही ऋषिवाणी है, हंसदासजी को यह पहचानने में देर नहीं लगी। वाणी के माध्यम से ही गुरु महाराज का दर्शन उन्हें मिल गया। निराश मन को शान्ति मिली और वे गुरु-वाक्य शिरोधार्य कर पीछे हट गए। उन्हें गेरुवाँ तालाब पर प्राप्त आदेश का मर्म भी स्पष्ट हो गया।

श्री हंसदासजी को इस प्रकार परम गुरु श्री देवराहा बाबा का अप्रत्यक्ष उद्बोधन मिला किन्तु श्री बाबा का कायिक दर्शन भी कैसे और कब मिलेगा, इस भावना ने उन्हें अभी भी अधीर और उद्वेलित रखा। इस निराशा और अवसाद भरे घोर अंधकार में भी श्रीमुख की अंतरिक्ष से प्राप्त वाणी पतवार की तरह इनका साहस बढ़ाती जा रही थी।

उस दिन अब अन्यत्र कहाँ जायँ, इसी उधेड़बुन में वहाँ घाट के पास ही उन्हें रात्रि में विश्राम करना पड़ा। ठंढ़क बहुत थी। पास के एक वृक्ष के नीचे रात बीती। साथ में दो अम्बर-खंडों के सिवा और कुछ नहीं था। रात्रि में उपवास भी करना ही था। गंगोत्री से गोमुख का मार्ग १८ किलोमीटर पड़ता है। गोमुख तक के लिए अब रास्ता बन गया है, किन्तु पहले ऐसा नहीं था। गोमुख के आगे का पथ अब भी कठिनाइयों से भरा हुआ है। महात्मा हंसदासजी अब गोमुख की ओर ही आगे बढ़े। गंगोत्री और गोमुख के बीच एक स्थान मिला जिसका नाम लंका है। यहाँ पहुँचने पर इनका गुरु-वियुक्ति का आघात फिर उभरने लगा और पुनः गुरु के कायिक दर्शन के अभाव में अपनी काया को भी मृत्यु को भेंट कर देने की इच्छा प्रबल होने लगी। वे गंगा की प्रखर धारा में शरीर विसर्जन कर देने की भावना के साथ घाट की ओर पुनः उतर आये। वहाँ दो बड़ी-बड़ी शिलाएँ थी जिनमें एक पर बैठकर वे घंटों अश्रुपात करते रहे। किन्तु इस पर भी हारे मन को शान्ति नहीं मिली। अब प्राण दे देना ही उचित है, ऐसा पुनः सोचकर अपने प्राण विसर्जन कर देने को जब वे पूर्ववत् दुबारा उद्यत हुए तो फिर वही अदृश्य वाणी ध्वनित हो गयी—"हंस बच्चा, अभी पीछे हट।" इस ध्वनि का संबोधन पाते ही वे पुनः पीछे हट गये। उस समय इनके मन में कुछ देर के लिए प्रफुल्लता तो आ गयी कि पूज्य बाबा सदैव मेरे साथ ही हैं; पर फिर प्रश्न उठा कि वे अपना दर्शन देकर मुझ दीन-वंचित को कृतार्थ क्यों नहीं करते? उन्हें भावनाओं की तीव्रता में यह ध्यान नहीं आता था कि परम

गुरु बाबा अब मानवेतर श्रेणी में हैं, वे देवमानव हो चुके हैं। देवमानव के दर्शन, तथा उनसे संभाषण के लिए जो अति विशिष्ट देवस्थान नियुक्त हैं, वहीं उनका दर्शन सम्भव है—वहीं उनके पार्थिव शरीर के बदले हुए आध्यात्मिक रूप को विकसित किया जाता है।

पूज्य बाबा के तेज का चुम्बकीय आकर्षण

यह स्पष्ट है कि अशरीरी योगिराज श्री देवराह बाबा अपने इस वरेण्य संत शिष्य श्री हंसदास के अंतःकरण को चैतन्य शक्ति प्रदान कर अपनी ओर आहूत करते थे। दिव्य तेज का यह चुम्बकोय आकर्षण वाणी के रूप में गेरुवाँ तालाब पर से ही पथ-निर्देशक बना था और हिमालय पहुँचने तक आगे-आगे सूत्रधार का कार्य करता रहा था। किंतु हंसदासजी को अभी और आगे जाना था। इनको अपने गुरु के उसी स्वरूप से मिलना था जिसे दिगम्बर रूप में ये मंच पर सदा देखते आये थे—विन्ध्याचल में तथा अन्यत्र। इस काल श्री हंसदासजो की वही अवस्था थी जो अपने मणि के बिणा सर्प की होती है। श्री महाराजजी के शरीर-त्याग के बाद गुरु के मानने वाले बड़े-बड़े उपासकों और भक्तों की भीड़ तो वृन्दावन में आँसू बहा रही थी; स्यात् इस समय श्री हंसदास को भी वृन्दावन ही जाना चाहिए था, पर ये वहाँ नहीं गए। ब्रह्मलीन सद्गुरु ने तो अकाय होने के पूर्व ही घोषणा कर दी थी कि मैं अब हिमालय जाता हूँ। अन्य जनों के लिए तो यह उद्घोषणा शरीर त्यागने की एक सामान्य सूचना भर थी, किन्तु हंसदासजी ने इसे अक्षरशः सत्य माना। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि महाराजश्री ने वृन्दावन छोड़कर नन्दनवन में वास किया है। इस सिद्धपीठ नन्दनवन को तो सब जा नहीं सकते; कोई सर्वतः समर्पित व्यक्ति ही इस देवभूमि की कठिन यात्रा पूरी कर सकता है। पूज्य बाबा ने श्री हंसदास के आध्यात्मिक जोवन को बागडोर पूर्व से अपने हाथ में ले रखी था—हंसदासजो हो सर्वत्र से सर्वथा असम्बद्ध थे, इसलिए इन्हें हो हिमालय आहूत किया गया, स्यात् इनको हो तपोनिष्ठ काया उस दिव्य शक्ति के प्रक्षेपण के योग्य मानी गयी, जिसको निकट भविष्य के निर्धारित आध्यात्मिक कार्यों के लिए आवश्यकता थी।

महागुरु श्री देवराहा बाबा की अकाय रूप से उपस्थिति ही हंसदास जो द्वारा नदियों और दुर्गम पहाड़ियों को पार कराने में सूत्रधार का काम कर रही थी।

संत हंसदास ने दुर्गम हिमालय के उस बीहड़ प्रदेश को पहले कभी भी देखा नहीं था जहाँ से होकर वह अब गुजर रहे थे। यह कैसे कोई विश्वास कर सकता था कि शरीर विसर्जन के बाद भी ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा के फिर उस अवस्था में ही दर्शन हो सकेंगे ! किन्तु हंसदासजी को यह विश्वास प्राप्त था। और इस एकनिष्ठ श्रद्धा और विश्वास के सहारे ही वे अकेले उस दुर्गम पथ पर बढते गये।

श्री हंसदासजी को गोमुख से बहुत आगे के देश में जाना था। आगे का मार्ग बड़ा ही विकट तथा भयंकर मिला। लोगों का उधर आना-जाना बिल्कुल ही नहीं था। आत्यन्तिक नीरवता भयदायक सिद्ध हो रही थी। परन्तु हंसदासजी के निर्भय कदम दृढ़ आस्था से अनुप्राणित हो अविराम बढ़ रहे थे। उन्हें न तन की खबर थी और न मृत्यु का भय था। आगे बढ़ने पर जो पथरीली पगडंडी मिली वह बर्फ से भरी हुई थी। एक संकीर्ण रास्ता और बगल में हजारों फीट गहरी खाई !

मंजिल तय करते हुए बाँयी तरफ उन्हें एक मैदान दिखाई पड़ा। मार्ग के एक-दो तपस्वी जन से प्राप्त विवरण के आधार पर प्रतीत हुआ कि यहीं देवताओं का क्रीड़ा स्थल नन्दनवन होगा। तपोवन इसकी दाहिनी ओर पीछे छूट जाता है।

नन्दनवन तक तो किसी-किसी तरह आ गये परन्तु प्यास के चलते इसके आगे प्राण जाने को-सी हालत हो आयी क्योंकि जलधारा का साथ तो बहुत पहले छूट चुका था। चारों तरफ दृष्टि दौड़ायी पर कहीं भी पानी का कोई स्रोत नजर नहीं आया। अब ये नितान्त निरुपाय हो निराशा से घिरे जा रहे थे, तभी पुनः पूज्य बाबाजी महाराज की वाणी सुनायी पड़ी—"बच्चा, पीछे घूमकर देखो।" यह वाणी सुनते ही हंसदासजी की प्यास-जन्य अधीरता समाप्त हो गयी। अशरीरी ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा की इस अमृत देववाणी को सुनकर इनमें आशा, आह्लाद और साहस का पुनः संचार हुआ। रास्ते के सारे संकट वे भूल गये। घूमकर देखने पर पत्थर के टुकड़ों से घिरा जल का एक कुंड उन्हें स्पष्ट दीखा। वहाँ जाकर ये पानी पीने ही लगे थे कि पुनः आवाज आयी—"बच्चा, और पी लो, आगे कठिनाई होगी।"

श्री महाराजजी वैसे बोल रहे थे जिस प्रकार माँ अपने वियुक्त बच्चे को प्राप्त कर लेने पर फिर क्षण भर भी उसे दूर नहीं जाने देना चाहती।

गुरु प्रदत्त सुरक्षा की छत्रच्छाया

श्री हंसदासजी को लगा कि गुरु-कृपा उनकी रक्षा और देख-रेख करती अदृश्य छाया की तरह साथ-साथ चल रही है ! धन्य है शिष्य के आत्यंतिक समर्पण का चमत्कार ! प० श्रीराम शर्माजी को जब हिमालय बुलाया गया था उस समय उनके गुरु सर्वेश्वरानन्दजी भी इसी तरह छाया की भाँति उस विकट प्रदेश में रास्ते भर उनकी रक्षा करते और व्यवस्था देते रहे थे। अशरीरी सूक्ष्म सत्ताएँ जिनको अपना लेती हैं, उनके जीवन की बागडोर अपने हाथ में ही ले लेती हैं।

श्री हंसदासजी को सद्गुरु श्री बाबा ने विन्ध्याचल आश्रम का अधिकारी संत बनाया था पर शिष्य में तदनुरूप अधिष्ठाता भाव कभी नहीं आया, वे बराबर निःस्व फकीर ही बने रहे। उनकी ऐसी परीक्षा कदम-कदम पर ली गयी परन्तु वे गुरु-कृपा से कभी साधना-च्युत नहीं हुए।

अब यह हिमालय की यात्रा भी उनकी आखिरी परीक्षा के ही सदृश थी। हिमालय के नितान्त अंतरंग का अजाना बीहड़ रास्ता और अनेक हिंसक पहाड़ी जीव-जन्तु आदि ! उनके लिए कुछ सहारा था तो केवल सद्गुरु महाराज का सहज वत्सल अनुग्रह ! और गुरु की कृपा भी उसी को मिलती है जो गुरु का ही हो रहता है।

उन्हें लगता था कि परमगुरु देवराहा बाबाजी महाराज इस अभि-मंत्रित यात्रा में उनकी हर गति के साथ-साथ ही चल रहे हैं। कई बार ऐसा लगा कि अब ये आगे नहीं बढ़ सकेंगे, किन्तु पुनः-पुनः विन्ध्याचल के गेरुवाँ तालाब का उद्बोधन स्मरण में आता और लगता कि पूज्य बाबाजी यहाँ भी सचेत करते हुए कह रहे हैं कि 'बच्चा, और आगे बढ़ो !' तपोवन और नन्दनवन तो जैसे-तैसे ये पार कर गये थे, परन्तु आगे का मार्ग तो उससे भी अधिक दुर्गम था।

पूज्य बाबा का सकाय दर्शन

नन्दनवन का विस्तार पार कर लेने के बाद अब इनको ज्ञानगंज पहुँचना था जहाँ अतीतकालीन ऋषि सत्तायें निवास करती हैं। किन्तु आगे का मार्ग और भी कठिन था। एक तरफ ऊँचा पर्वत जिस पर की जमी बर्फ की परतें पिघलती धारा बन कर नीचे की ओर आ रही थीं तथा दूसरी ओर हजारों फीट गहरी खाई! बीच में एक पतला पथरीला रास्ता था जिस पर से होकर बर्फ के वे सोते भी बह रहे थे जिनकी गति नीचे की खाई की ओर थी।

श्री हंसदासजी ने पूज्य बाबा का स्मरण किया और उसे पार करने को सन्नद्ध हो चल पड़े। किन्तु थका-हारा निपीड़ित शरीर, उन्होंने साहस तो किया पर उसे पार कर जाने की क्षमता नहीं ला सके। पैर फिसल गए और देखा कि शरीर अवश रूप से सैंकड़ों फीट गहरी खाई की ओर अब जाने वाला है। अपनी आँख बंद कर वे मन ही मन पुकार उठे—'बाबा, जैसा भी हूँ आपका ही चरणसेवी हूँ, आज्ञा-पालन की चेष्टा तो मैने की, पर...।'

देवाधिदेव परमगुरु श्री देवराहा बाबा अपनी दिव्य शक्ति से इनकी रक्षा करते हुए और तत्क्षण सकाय रूप से दर्शन देते हुए सांत्वना भरे शब्दों में बोले—"तुम्हें अभी इस शरीर से रहना है। मेरी जो इच्छा है वही होगा। मैं तुम्हारे सदा साथ हूँ। अब विन्ध्याचल ही लौटो। यहाँ पहुँचने की तुम्हारी निर्दिष्ट तपस्या पूरी हो गयी। आगे का क्षेत्र देहधारियों के लिए वर्जित है। तुम अपनी निर्धारित स्थिति बनाये रखकर ही हमारा शेष कार्य पूरा करते रहोगे। भविष्य में तुम्हारे लिए क्या कर्तव्य है सो तुम्हें स्वयं प्रकट होता रहेगा।'

पूज्यपाद महाराजजी की वही दिगम्बर काया, वही गुरु गम्भीर स्वर। प्रदीप्त भाल के चतुर्दिक् फैली लम्बी-लम्बी जटाएँ, वक्ष तक लटकती हुई सुदीर्घ कुंचित दाढ़ी तथा नैसर्गिक आभा से दीपित शरीर और झुका हुआ बदन। श्री हंसदासजी ने कुछ ही दिन पहले जैसा उन्हें देखा था बाबा का ठीक वही रूप उस दिन भी था।

महागुरु का वह कायिक दर्शन अतिमुग्ध सम्मोहित भाव से लौटते हुए श्री हंसदासजी को बराबर आवृत किये रहा, चतुर्दिक् से घेरे रहा। उन्हें बिलकुल स्मरण नहीं कि विंध्याचल तक वापसी की वह लम्बी यात्रा इन्होंने कैसे पूरी की। अतीन्द्रिय बाबा की चमत्कारी दिव्य शक्ति ही उन्हें मानो अपने क्रोड़ में लेकर विंध्याचल तक छोड़ गयी। कल्पनातीत है ब्रह्मरूप सद्गुरु श्री बाबा की महिमा!

ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा तो पार्थिव काया में रहते हुए भी सैकड़ों मील की यात्रा क्षणों में कर लेते थे। कहीं-कहीं ऐसा भी होता था कि उनके मंच पर आने के समय मार्ग में समुत्सुक दर्शनार्थी जनता की भीड़ खड़ी की खड़ी रह जाती और बाबा मंच पर ठीक समय पर विराजमान हो जाते। उन्हें मार्ग में कोई देख नहीं पाता था!

ब्रह्मर्षि श्री बाबा की योग शक्ति अपार है। उसकी तुलना नहीं की जा सकती। यह स्पष्ट पूर्ण सत्य है कि पूज्य महाराजजी अपनी चैतन्य शक्ति श्री हंसदास के अन्तःकरण में उतार चुके थे और अब वही शक्ति उनका निर्देशन करती हुई उन्हें वापसी यात्रा में सकुशल ले आयी।

काया-त्यागी देवाधिदेव श्री बाबा का अपने कायासिद्ध तपस्वी शिष्य श्री हंसदासजी को प्रबल हिमालय के दुर्धर्ष संकटों के बीच डालकर उन्हें कसौटी पर कसने का भी यह उपक्रम शायद रहा हो।

इस परीक्षा में गुरुनिष्ठ शिष्य हंसदास जी निश्चय ही पूरे-के-पूरे खरे उतरे। इस परीक्षा में उन्होंने शरीर का किंचित् भी मोह न कर परमेश्वर-रूप गुरु के दर्शन के लिए अपने प्राण भी हाजिर किये और जब ये परीक्षा में इस प्रकार सफल हुए तब शक्तिपात के महनीय अधिकारी भी बने और पूज्य बाबा की संकल्प वाणी का प्रक्षेपण हुआ—"बच्चा, मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ।"

पूज्य बाबा ने इस प्रकार दिव्य शक्ति से शिष्य को अनुप्राणित-जाग्रत किया और उसे अपना योग्य वाहन बनाया। सूक्ष्म सत्ताधारी ऋषियों की यही नियमावली है, क्योंकि अशरीरी ऋषि-सत्ताएँ अपने में प्रचंड प्रखर क्षमता रखते हुए भी योग्य शरीरधारी आत्मा के बिना अपना लोक-सेवा कार्य सम्पन्न नहीं कर सकतीं।

विन्ध्याचल आश्रम का वर्तमान स्वरूप

वर्तमान समय में विन्ध्याचल आश्रम के समीप मंच पर श्री हंस बाबा हो ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा का लौकिक कल्याण का पूर्वागत अभियान चला रहे हैं। श्री बाबा की आत्यन्तिक विरक्तावस्था ही इनकी भी अवस्था बनती जा रही है। इनका तन भी दिगम्बर ही कहा जायेगा क्योंकि असह्य ठंढक में भी ये बदन पर कपड़े नहीं रखते, सिर्फ कटिप्रदेश ही कौपीन से आवृत रहता है।

पहले ये मंच के पास स्थित पर्णकुटी में रहते हुए गुरु-मूर्ति की सेवा में सन्नद्ध रहते थे। किन्तु १९९१ के आश्विन मास में स्वप्न में निर्देश हुआ कि मंच के ऊपर विराजमान होकर ही रहो। हंसदासजी ने इसे पूज्य बाबा का ही आदेश माना और नतमस्तक हुए। अब वे अहुधा मंच पर ही आसीन दीखते हैं। यह पूछे जाने पर कि श्री बाबा प्रत्यक्ष रूप में आपका निर्देशन करते हैं या अदृष्ट रहते हुए ही, वे कहते हैं—'पूज्य बाबा तो सूक्ष्म शरीर धारी हो गये हैं, इसलिए उनको मुझसे जो भी काम करवाना होता है, मेरा अन्तःकरण स्वतः वैसा हो जाता है। आगे क्या करना है और कब करना है इसके बारे में मुझे कुछ नहीं सोचना पड़ता। वह सूक्ष्म शक्ति समय और परिस्थिति के मुताबिक संदेश और आदेश देती रहती है।'

श्री हंसदासजी का कहना है कि उन सूक्ष्मकायाविहारी देवऋषि बाबा ने विन्ध्याचल आश्रम को प्राचीन ऋषिकुल के रूप में विकसित करने की कई योजनाएँ तैयार करायी हैं, जो गुप्त हैं; समय आने पर उनका उद्घाटन होगा।

युग-संधि बेला के आगमन में अभी १५ वर्ष और रह गये हैं। इस अवधि में प्रगति-चक्र और भी तेजी से भ्रमण करेगा—विनाश को रोकने तथा विकास को बढ़ाने की आवश्यकता होगी। इस झंझावात के दिनों में कौन-सा काम कब और किस प्रकार करें—यह सारी रचनात्मक प्रक्रिया उसी सूक्ष्म शक्ति के माध्यम से प्रकाशित होगी।

सूक्ष्मशरीरधारियों के विवरण प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। यक्ष और युधिष्ठिर के मध्य विवाद का वर्णन महाभारत में विस्तारपूर्वक मिलता है। यक्ष और गन्धर्व जैसे कई वर्ग सूक्ष्मशरीरधारियों के थे और स्यात् अब भी हैं।

सूक्ष्म शक्ति का चमत्कार कैसा होता है, इसका अनुभव विन्ध्याचल मंच के समीप जाने पर ही किया जा सकता है। दूर से तो इस प्रसंग में मात्र बहुत-सी कल्पनायें की जा सकती हैं। इन पंक्तियों का लेखक भी इस सम्बन्ध में बहुत तरह की कल्पनाएँ करता रहा था, परन्तु निकट से दर्शन करने पर महात्मा हंसदासजी में श्री बाबा की प्रत्यक्ष मूर्ति दिखाई पड़ी। इसके बाद तो कुछ व्यक्त करने की जगह आँसू ही गिराने पड़े। इसी प्रकार अन्य कइयों को देखा कि मंच के पास पहुँचकर श्री हंस बाबा का दर्शन करते ही वे विह्वल और अभिभूत हो गये—मानों स्वयं बड़े महाराजजी का, गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी का, उन्हें सान्निध्य लाभ हो गया हो !

भक्त और भगवान् की जय !*

---

*इस सम्बन्ध में अक्तूबर १९९१ के 'पावन प्रशाद' में प्रकाशित श्री अमरनाथ ओझा का 'पूज्य बाबा का विन्ध्याचल स्थित स्वर्गाश्रम' शीर्षक से प्रकाशित लेख भी द्रष्टव्य है जो अगले पृष्ठों में दिया जा रहा है। परमवंद्य वैरागी बाबा का जनवरी १९९२ के 'पावन प्रसाद' में प्रकाशित प्रस्तुत लेख उसके बाद ही प्राप्त हुआ था किन्तु स्पष्ट है कि इसके अन्तिम वाक्य में जिस स्थिति की चर्चा आयी है उसकी सम्पुष्टि श्री ओझा के लेख द्वारा भलीभाँति हो जाती है।

[सूत्र : 'पावन प्रसाद', जनवरी १९९२]



पूज्यचरण बाबा का विंध्याचल-स्थित स्वर्गाश्रम

श्री अमरनाथ ओझा

योगवाशिष्ठ, नारद भक्तिसूत्र एवं अन्य शास्त्रों में प्रमाण मिलते हैं कि योगी अपनी इच्छा के अनुसार कायाकल्प या पर-काया प्रवेश कर सकते हैं। ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबाजी महाराज के काया-कल्प की बात भी बहुत वर्षों से चल रही थी। इसी प्रयोजन के लिए उनके सरयूतट-निकटस्थ आश्रम (देवरिया जनपद, उत्तर प्रदेश) के पास भक्तों ने एक कायाकल्प भवन का भी निर्माण कराया था।

'पावन प्रसाद' में विन्ध्याचल (मिर्जापुर) के निकट स्थित श्री महाराजजी के स्वर्गाश्रम की चर्चा इधर हुई है। यह अमरावती रोड पर स्थित है। इसके विषय में मैंने भी संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण लिखा था जो 'पावन प्रसाद' के अक्तूबर १९९० के अंक में प्रकाशित हुआ। उसी प्रकरण में संत हंसदासजी की चर्चा भी है जो स्वर्गाश्रम में पीठाधीश के रूप में अधिष्ठित हैं। उसका थोड़ा अंश प्रसंगवश मैं यहाँ दे रहा हूं। श्री योगिराज महाराजजी के शरीर त्यागने के बाद महात्मा हंसदास जी भी हिमालय में यह सोचकर चले गये कि पूज्य महाराजजी ने जब अपना शरीर त्याग दिया तो उन्हें भी उनका अनुसरण करना चाहिए। उन्होंने गंगोत्तरी मार्ग पर से दो बार शरीर विसर्जन करना चाहा परन्तु अदृश्य शक्ति ने उन्हें दोनों बार बचा दिया। महात्मा हंसदासजी ने स्वयं बताया कि उन्हें ऐसा लगा कि साक्षात् श्री सद्गुरु महाराज आकर अवरोध बन रहे हैं और उन्हें पूज्य बाबा की ऐसी वाणी की भी प्रतीति हुई कि 'बच्चा, मैं जब चाहूंगा तभी तुम शरीर छोड़ोगे, तुमसे अभी बहुत-सा काम लेना है, तुम स्वर्गाश्रम लौट जाओ।' तदनुसार श्री हंसदासजी आश्रम वापिस आ गये।

विन्ध्याचल आश्रम लौटने से पहले प्रत्यावर्त्तन क्रम में ही वे वृन्दावन के मुख्य भंडारा में भी उपस्थित हुए थे। हमलोगों ने भंडारा में उनका दर्शन वृन्दावन में किया था, परन्तु वहाँ हिमालय की उनकी यात्रा का विवरण जानने का सुयोग हमें नहीं हो सका। गत वर्ष दशहरे के अवसर पर काशी एवं विन्ध्याचल आश्रम पर भंडारे की व्यवस्था की गई थी। काशी के भंडारा में मैं शामिल हुआ था तथा विन्ध्याचल आश्रम पर भी भंडारा के एक-दो दिन पहले मैं गया था। उस समय विन्ध्याचल आश्रम पर मैं दिन भर रहा था और उसी बीच श्री हंसदासजी महाराज ने हिमालय की घटना हमें बताने की कृपा की थी। मेरे साथ उस समय श्री शिवबालक राय, मुख्य महाप्रबंधक, बी० सी० सी० एल०, धनबाद

भी अपने परिवार के साथ थे। श्री हंसदास जी उस समय बड़े सरकार योगिराज श्री देवराहा बाबा के विंध्याचल मंच के पास ही एक कुटी में रहते थे।

अभी हाल में स्वर्गाश्रम की तीर्थयात्रा का सौभाग्य हमें पुनः हुआ था। हम प्रयाग के श्री चन्द्र कुमार शर्माजी एवं एक अन्य भक्त के साथ गत १-९-९१ को विन्ध्याचल आश्रम पहुँचे। विन्ध्याचल आश्रम जाने का तात्कालिक प्रयोजन वहाँ की गोशाला की व्यवस्था देखना एवं उसके सुधार के लिए आवश्यक कार्य तजबीज करना था। दूसरे दिन सुबह हमलोग श्री महाराजजी के तत्स्थानीय मंच के समीप गये जो मुख्य आश्रम से लगभग एक किलोमीटर दूर है। गत वर्ष वहीं, मंच के पास ही श्री हंसदासजी का दर्शन हमें हुआ था। श्री शर्माजी ने मुझे बताया कि बड़े सरकार कहा करते थे कि 'हंसदास सिद्ध संत हैं'।

योगी यदि चाहे तो अपना शरीर त्यागने पर किसी अन्य शुद्ध आत्मा वाले शरीर में प्रवेश कर जा सकता है। हमलोग जब मंच के पास पहुँचे तो उसे देखते ही रोमांच हो आया। हमें श्री हंसदास जी महाराज कुटी से उसी भाव भंगिमा में निकलते प्रतीत हुए जिसमें बड़े महाराजजी हमलोगों को दर्शन देते तथा उपदेश करते थे। उसी तरह की अमृत वाणी और सर्वथा वैसी ही उठने-बैठने एवं चलने की शैली ; उसी प्रकार दया बताना एवं उसी रीति से प्रसाद बाँटना। इस बीच उपदेश-क्रम में भी भगवत्स्वरूप बड़े महाराजजी की ही तरह शास्त्र-पुराणों से वे उद्धरण देते रहे। प्रवचन के दौरान उन्होंने एक मुख्य बात कही कि 'बच्चा, बीज पड़ गया है, पौधा बड़ा हो रहा है, १४ वर्ष बाद पूर्ण हो जायगा।'

उपर्युक्त तथ्यों से मुझे तथा मेरे साथ गये शर्मा जी एवं अन्य भक्तों को धारणा हुई है कि पूज्य महाराजजी अब भी हमारे बीच परकाया के माध्यम से कदाचित् विद्यमान हैं ! जैसा कि 'पावन प्रसाद' के द्वारा पहले भी ज्ञापित किया जा चुका है पूज्य बाबा का स्वर्गाश्रम विन्ध्याचल (मिर्जापुर) से ७ किलोमीटर दूर अमरावती रोड पर स्थित है और टेम्पो-ताँगा आदि से वहाँ जाया जा सकता है।

इस समय ऐसी व्यवस्था है कि भक्तगण आश्रम जाकर रुक भी सकते हैं या उसी दिन वापिस भी लौट सकते हैं। हमने विन्ध्याचल-अमरावती रोड स्थित पूज्य महाराजजी के स्वर्गाश्रम पर जो कुछ देखा-सुना उसे अपनी भावना के अनुसार भक्तों की जानकारी के लिए लिखना आवश्यक समझा। हमारी दृढ़ भावना है कि यह सर्वार्थ-साधक तथा सद्‌गुरु-अर्चा संधारक कल्याणमय संवाद सभी मंगलों का वाहक सिद्ध होगा। 

(सूत्र : 'पावन प्रसाद', अक्तूबर १९९१)

देवर्षि देवराहा बाबा और विंध्याचल के महात्मा हंसदास जी

श्री गिरिजा शंकर त्रिपाठी

अहर्निश स्मरणीय ब्रह्मलीन देवर्षि देवराहा बाबा के चरणकमलों का मैं सतत स्मरण करता हुआ उनकी अतिशय कृपा का आनन्द अनुभव करता रहता हूँ। यज्ञधर्मादि क्रियाओं से प्रतिष्ठित प्रयागराज में श्री बाबा का माघमास में आ जाना स्वयं में एक महामेला हो जाता था। जन कोलाहल से दूर गंगा माँ के तट पर बाबा का आश्रम लगाया जाता था और वे मंच पर विराजमान रहते थे। जब उनके मन में लहर उठती, वे भक्तों को दर्शन देने हेतु अग्रभाग में आ विराजते। दिगम्बर सन्त की बड़ी-बड़ी दाढ़ी और शृंखलित केश उनके अलौकिक आभा वाले मुख पर प्रदीप्त चक्षु के साथ मानो अभी भी मेरे सामने हैं और बाबा की अमर वाणी से स्नात हो रहे हैं दर्शनार्थी। बाबा कहते थे—कलियुग में केवल भगवन्नाम स्मरण ही सभी क्लेशों को दूर करने में समर्थ है।

बाबा के ज्ञान सामर्थ्य की कोई सीमा नहीं थी। विद्वान् से विद्वान् व्यक्ति भी अपने ही ज्ञान में, और उसी में जिसमें उसने दक्षता प्राप्त की है, बाबा से ज्ञान प्राप्त कर लेता था और गूढ़ तत्त्वों को भी श्री बाबा बड़े सरल शब्दों में व्याख्यायित कर देते थे। सर्वज्ञ थे, दुःखहर्ता-सुखकर्ता थे श्री बाबा।

पूज्य बाबा का जीवन प्रतिक्षण उर्ध्वगामी शिखा की भाँति हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत रहा है। शायद ही कोई ऐसा हो जो बाबा के यहाँ किसी मनोकामना से गया हो और वह अपूर्ण रह गई हो। वे सभी पर 'दया' करते थे। दया की, ज्ञान की, भक्ति की लहर आती थी और उससे सभी का कल्याण हो जाता था।

भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा था—आत्मा अजर है, अमर है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

—(गीता २।२०)

अर्थात्—यह आत्मा किसी काल में भी न जन्मता है और न मरता है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है; शरीर का नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता।

बाबा अपनी उस काया में आज हमें दृष्टिगोचर नहीं होते किन्तु वे आज भी हमारे बीच विद्यमान हैं, उनकी अमृतमयी वाणी आज भी हमारे कानों में गूंजती है। वे कहा करते थे—'बच्चा, योगी जबतक चाहे रह सकता है।' वे हैं, किसी की काया में विद्यमान हैं और १५ वर्षों में वे प्रकट हो जायेंगे, पूर्ण रूपेण।

बाबा के अन्तिम दिनों में जो लोग उनके पास थे उन्होंने सुना था कि बाबा अपने एक सुयोग्य शिष्य को—जो तपस्या और आचार-विचार में, नियम-संयम में, ज्ञान-वैराग्य में अग्रगण्य हैं—उन्हें ही अपनी दिव्य ज्योति दे गये हैं। वे स्वयं उन बाबा हंसदासजी को 'सिद्धयोगी' कहते थे। अतः जब बाबा का दर्शन बहुत दिनों तक मुझे नहीं हुआ, तो एक दिन अपने एक मित्र के साथ बाबा हंसदासजी का दर्शन करने के लिए मैं विन्ध्याचल चल पड़ा।

स्वर्गाश्रम की यात्रा

शिशिर ऋतु का सुहावना प्रभात था। भगवान् भास्कर अरुणाभा स्वीकार कर चुके थे। मेरे एक मित्र, उनकी पत्नी, मैं और मेरी पत्नी तथा मेरे एक वरिष्ठ साहित्यकार-पत्रकार मित्र भी 'स्वर्गाश्रम' का दर्शन लाभ करने चल पड़े। मेरे मित्र की कार प्राची दिशा की ओर बढ़ रही थी। शीतल मन्द पवन हमारा अभिनन्दन कर रहा था। पत्रकार मित्र मार्ग में श्री बाबा के अनेक सुमधुर संस्मरण सुना रहे थे। दोनों महिलायें भी तन्मयता से बाबा की गाथा का आनन्द ले रही थीं। पूज्य बाबा की चर्चा के साथ हम अष्टभुजी देवी के स्थान तक पहुंच गए और तब मुख्य राजमार्ग से अमरावती रोड स्थित आश्रम की ओर गाड़ी मुड़ गई। विन्ध्याटवी के उच्च पर्वत शिखर ऋषि-मुनियों की साधना के प्रतीक के रूप में खड़े उनकी तपस्या की कथा कह रहे थे। हम उन्हीं को देखते-देखते आगे बढ़ रहे थे। सात किलोमीटर जाने के पश्चात् निर्जन वन में एक भव्य आकर्षक मनोहारी मन्दिर देखा। मैंने मित्र से पूछा कि इस निर्जन में यह दिव्य भवन क्या है? उन्होंने उत्तर दिया—यही है महान् सन्त मनीषी देवर्षि देवराहा बाबा का स्वर्गाश्रम।

'अमरा निर्जरा देवा:' की पंक्ति याद आयी और भासित हुआ कि बाबा के वचन उस पावन स्थल पर गूँज रहे हैं। हमने वहाँ स्थित मूर्तियों को नमन किया और स्थान की पवित्रता, शान्ति, स्वच्छता में अपना गात भी पवित्र किया। आश्रम मीलों लम्बा है। प्रस्तर निर्मित भवन अपने में एक महान् शिल्पी की कल्पना को साकार करता तथ्य लगा। हमने 'गोशाला' देखी, नान्दी बैल देखे और एक अन्धा साँढ़ भी देखा जो ध्यान लगाकर सबके पदचाप सुन रहा था। गोशाला में जल और भोजन का प्रबन्ध भी बेजोड़ देखा। सभी पशुओं के भोज्य स्थल पर जल उपलब्ध कराने के लिए बड़े-बड़े पाइप लगे हुए हैं और आवश्यकतानुसार उन्हें जल दिया जाता है। लगता है कि ऐसी बड़ी सुव्यवस्था स्वयं बाबा आज भी कर रहे हैं।

मैंने सोचा था कि स्वामी हंसदास जी भी वहीं मिलेंगे। मैंने अपने मित्र से पूछा कि भाई हंसदास जी तो यहाँ नहीं दिखे, वे कहाँ चले गए? वे मुस्कराये और बोले कि आतुरता भी क्या है, चलिए उनके भी दर्शन कराता हूँ। मन्दिर से हम पगडंडी पर चले। रास्ते में सरोवर था, झाड़ियाँ थीं, बड़े-बड़े पेड़ थे। लगभग आधा कि० मी० जाने के बाद एक अत्यन्त रमणीक सुरम्य स्थान दिखाई पड़ा। हरी-भरी घास, आँवला के पेड़, केले के पेड़ और फूल-पत्तियाँ—किसी ऋषि की कुटिया का भान सबको करा रहे थे। आगे चलने पर बाबा का पवित्र मचान भी दिखाई पड़ा और समीप जाने पर श्रीहनुमानजी एवं श्रीराधा-कृष्ण जी की भी भव्य मूर्तियाँ दिखीं। फूलों पर भौंरे और पेड़ों पर बन्दर भी दिखे। स्थान एकदम निर्जन—बस बाबा का मचान और तीन मूर्तियाँ। हम मचान के समीप पहुँचे ही थे कि एक भव्य दीप्त आभा वाले तथा दाढ़ी और बढे हुए बालों वाले महात्मा का दिव्य दर्शन हुआ। पहले तो भ्रान्ति हुई कि स्वयं पूज्य देवराहा बाबा ही हैं, किन्तु मेरे मित्र ने कहा कि यही हैं स्वामी हंसदास जी महाराज! हम सभी ने उन्हें दण्डवत् किया और उन्होंने आशीष दिया, कुशल-क्षेम पूछा, परिचय जाना।

भयंकर सर्दी थी, बड़ी शीतल वायु थी। हम काँप से रहे थे किन्तु स्वामी जी केवल एक कोपीन पहने थे, लगता था कि उन्होंने ऋतुओं पर कब्जा कर लिया है। उन्होंने हमारा मार्ग दर्शन किया, धार्मिक तत्त्वों की विवेचना की और कहा कि ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में विराजमान हैं, उन्हें अन्यत्र कहीं ढूँढ़ना नहीं है, अपनी ही खोज मनुष्य करे तो ईश्वर मिल जायेंगे। देवर्षि देवराहा बाबा का स्मरण करते-करते वे खो-से गये और सहसा अनन्त असीम से

बातें करते दीखे। हर्ष-भाव, चाल-ढाल और मुद्रा में वे पूरे ब्रह्मलीन बाबा ही लगते थे। जिस स्थान पर वह मचान एवं आश्रम है वहाँ एक सामान्य व्यक्ति दिन में ही नहीं रह सकता। एकदम भयानक जंगल है—पशु-पक्षियों से, सरीसृपों से भरा स्थल। बात-ही-बात में उन्होंने कहा कि मैं तो रासलीला देखते-देखते ही समय के बंधन से मुक्त हो जाता हूँ। अकेला मैं कभी भी नहीं रहता। देवर्षि योगिराज मुझसे बातें करते हैं, संदेश देते हैं और राधा माँ तथा भगवान् अपनी लीला का दर्शक भी मुझे ही बनाते हैं। फिर जहाँ पवनपुत्र श्री हनुमान जी सदा उपस्थित रहें वहाँ एकान्त कहाँ है, भय कैसा !

सन्तश्री हंसदास जी का प्रेरक लेखन प्रतिदिन चलता है। यह बड़ा ही रहस्यपूर्ण लगता है। ब्रजभाषा में 'रासलीला' का वर्णन किया है। जो लीला वे रात्रि में देखते हैं उसे लिपिबद्ध कर देते हैं। कुछ दार्शनिक बातें भी उन्होंने लिखी हैं।

आश्रम से वियुक्त होने की इच्छा नहीं करती थी किन्तु घर में बताया नहीं था बच्चों से, अतः हमने बाबा से आज्ञा माँगी। उन्होंने कहा 'जाओ बच्चा, दया है' और प्रभूत प्रसाद देकर छुट्टी दे दी। हमने फिर मन्दिर में दर्शन किया और वहाँ का प्रसाद पाकर प्रयाग की ओर रवाना हो गये। मार्ग में जगज्जननी माँ विन्ध्यवासिनी का दर्शन भी किया और चल पड़े। 'एकता यात्रा' के कारण शास्त्री पुल जाम था, सहस्रों लोग जमा थे। लगता था कि मध्यरात्रि से पूर्व हम स्वस्थान नहीं पहुँचेंगे। किन्तु बाबा की कृपा से हम लोगों को आगे ही रास्ता मिल गया और हम अपने-अपने घर पहुँच गए।

अविस्मरणीय है वह मनोहर आश्रम और वन्दनीय हैं बाबा हंसदास जी।

('पावन प्रसाद', जून १९९२ अंक)



श्री देवराहा हंस बाबा जी की परम विशिष्ट विभुता

डा० मलय बो० दत्त

आज श्री देवराहा हंस बाबा जी का नाम भगवत्प्रेमी समाज में अपरिचित नहीं है। विराट वपु अनन्तश्री योगिराज देवराहा बाबा जी महाराज जिस शरीर में निवास करते हों, वह अविदित नहीं रह सकता; शक्ति का जब स्फुरण हुआ तो उसका विकिरण भी होगा ही और फलतः यशोगान भी होगा।

विन्ध्याचल मैं कई बार गया। श्री-श्री हंस बाबा जी का दर्शन मिला। बाबा जी उपदेश के क्रम में छंद बोलते हैं—अनवरत, अबाध बोलते हैं। यह वाणी सहस्रार से उद्‌गत होती है—इसलिए यह परावाणी है। इसमें ही श्री-श्री बाबाजी का आशीर्वाद निहित रहता है और महाप्रभु योगिराज बाबा से उनका एकात्म्य भी द्योतित होता रहता है।

"लिविंग विथ द हिमालयन मास्टर्स" में स्वामी राम ने अनन्तश्री देवराहा बाबा को प्रेम की मूर्ति (Symbol of Love) बताया है। श्री हंस बाबा के रूप में श्री-श्री बाबा जी आज भी प्रेम और भक्ति का एक साथ निदर्शन करते हैं। ईसा का जो प्रेम था वह प्रेम भी श्री-श्री बाबाजी की सर्वात्म-सत्ता से आज भक्तों के लिए उछली पड़ती है—असीम करुणा के रूप में।

प्रेम-प्रेम से तेरो-तेरो ऐसो-ऐसो प्रेम है।
वाही प्रेम सें मेरो एक मेरो एक प्रेम है॥

प्रेम के सागर में निमज्जित होकर भगवान उस प्रेम को विकीर्ण करने के लिए आज भक्तों के सम्मुख उपस्थित हैं।

वे कहते हैं—"हे भक्त, मुझमें तेरा ऐसा प्रेम वास्तव में भगवान के प्रति तुम्हारे प्रेम का ही द्योतक है क्योंकि मैं तो एक माध्यम मात्र हूँ और मेरे आशीर्वाद से भगवान में अब तेरा पूर्ण अविचल प्रेम होगा और तब तू भगवान को पायेगा जिसकी तुझे ललक है।"

लेकिन "भक्त, भगवान को तू पायेगा कैसे ?" पूज्य बाबा बतलाते हैं कि सब में जब तुझे एक ही विभु के दर्शन होंगे तब ही भगवान मिलेंगे।

ऐसा-ऐसा पाया-पाया। इस पाने में एक ही पाया॥

भगवान की माया को समझना बड़ा कठिन है। कभी-कभी तो वे सर्वात्म-रूप में दिखाई देते हैं, फिर भी वे भक्तों की पकड़ में हर समय नहीं रहते।

नहीं तेरो नहीं तेरो, तेरो तेरो तेरो है।

"मैं तेरा नहीं हूँ—तेरा नहीं हूँ ! लेकिन यह नहीं होना भी मेरी इच्छा के अधीन है। यह नहीं दिखाई देना भी एक लीला है—मेरी लीला !"

भक्त भगवान की यह लीला समझ नहीं पाता है। वह व्याकुल होकर पुकारता है—"कहाँ गये भगवान !" भक्त के हृदय में जब इस प्रकार उठता है भगवान का नाम तब वे उसे बुलाते हैं।

भगवान आज गुरु के रूप में ही अवतरित हुए हैं—श्री देवराहा बाबा... श्री देवराहा हंस बाबा !

जा जा देखा ऐसा तेरा। यह तेरा है मेरा मेरा॥

आत्मज्ञान न होने के कारण दर्शन पाने के बाद भी भक्त के मन में सन्देह रह ही जाता है। वह सोचता है—"जो कुछ मैंने देखा है वह सच था या मन का भ्रम मात्र था ?" स्वयं बाबाजी बताते हैं—"वह मन का भ्रम नहीं है। वह बिलकुल सच है।" भगवान श्री देवराहा हंस बाबाजी बोलते हैं—

नहीं नहीं माना, ऐसा माना फिर नहिं माना।

पहले तो माना ही नहीं। दर्शन होने के बाद में तो मान गया, लेकिन फिर भी संशय बच गया। इसका कारण है आत्मज्ञान में कमी रह जाना। इस हालत में गुरुजी कभी-कभी सूक्ष्म रूप से शिक्षा भी देते हैं, शिष्य को समझाते हैं। और उनकी कृपा से शिष्य समझ भी लेते है कि गुरुजी तो साक्षात् भगवान के प्रतिरूप हैं। ऐसा सोचने के क्रम में भक्त भगवान को, उस एक को पा जाते हैं। श्री हंस बाबा कहते हैं—

पाया पाया एक पाया। उसको पाया पाया पाया॥
वह जो बोला, उसको देखा। देखा देखा उसको देखा॥

पूज्य हंस बाबा जी के पास मेरे जाने से पहले 'पावन प्रसाद' में प्रकाशित हुआ था कि पूज्य अनन्तश्री योगिराज श्री देवराहा बाबाजी महाराज इस समय हंस बाबाजी में अवतरित हैं। इस बात की पुष्टि मैंने श्री हंस बाबाजी से ही सुननी चाही थी। लेकिन मुख से मैं कुछ नहीं बोला। किन्तु मेरे अन्तःकरण की बात महाराजश्री को अवगत हो गयी थी। वे स्वयं बोल पड़े अपनी हिमालय-यात्रा की कहानी। उससे पहले उनके मुखारविन्द से निकल गया—

नहीं आया नहीं आया। वह आने में तू ही आया॥

मुझे लगता है कि यह कथन उस स्थिति का वाचक है जब श्री हंस बाबा को पूज्यचरण अनन्तश्री योगिराज देवराहा बाबा ने हिमालय में सकाय दर्शन प्रदान किया। तब उस समय ही श्री हंस बाबा की काया में योगिराज की विभूता प्रवेश कर गयी और जो वहाँ से लौटे हैं वह अनन्तश्री देवराहा बाबा के ही प्रतिरूप हैं। मैं पुनः एक बार उस वाणी को उद्धृत करता हूँ—

नहीं आया नहीं आया, उस आने में तू ही आया।

श्री-श्री हंस बाबा जी के उपदेश का क्रम चलता रहा और मैं लिखता गया।

जब जब रोया रोया रोया। इस रोने में तू ही खोया॥

पूज्यचरण गुरुदेव अनन्तश्री योगिराज देवराहा बाबा यमुना माता को शरीर समर्पित करके विदेह हो हिमालय प्रस्थान कर गये। वह संवाद सुनकर शेष सभी तो रोये लेकिन श्री हंस बाबा जी ने रो-रो कर अपने आपा को ही सर्वथा त्याग दिया! उनका सम्पूर्ण अस्तित्व परमात्म-स्वरूप श्री-श्री देवराहा बाबाजी का ही निवास बन गया।

इसलिए श्री हंस बाबा अब सर्वथा सार्थक रूप से श्री देवराहा हंस बाबा हो गये। लेकिन इस तथ्य को शुरू में स्वीकारा कम ही लोगों ने। बाद में दया-परवश होकर स्वयं बाबा जी ने जिस-जिस को वर्तमान देह में श्री अपने पूर्व रूप का दर्शन करवाया वह अन्ततः मान गया, नतमस्तक हो रहा। इस तथ्य की जानकारी पूज्य हंस बाबाजी महाराज को भी है। उन्होंने कहा—

माना माना ऐसा माना। माना माना तुझको माना॥

सहस्रार से निःसृत 'श्री राधाकृष्ण लीलामृतम्' के इन परावाणी सूत्रों में स्थिति को दर्शाया गया है। इसके निगूढ भाव को समझने के लिए स्वयं श्री हंस बाबाजी महाराज द्वारा उपदिष्ट अन्य सूत्रों की सहायता भी ली जा सकती है। उससे स्थिति और भी विशेष रूप से स्पष्ट हो जायेगी।

श्री हंस बाबाजी महाराज बहुत सालों से विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम के अरण्य-स्थित निभृत मंच के समीप, प्रकृति की गोद में रहते हुए एकान्त में अनन्तश्री देवराहा बाबाजी की अर्चा, कठोर तपस्या और गो-सेवा में निरत रहते रहे थे। अकेले इस वन में श्री हंस बाबाजी इस प्रकार प्रकृति देवी का सान्निध्य और श्री-श्री राधाकृष्ण की रास लीला का दर्शन भी पाते रहे।

इन तथ्यों के प्रकाश में नहीं होने के कारण उन दिनों विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम में जन-समागम एक प्रकार से बन्द ही था। इसी कारण श्री हंस बाबा जी का परिचय पूज्यपाद बड़े महाराजजी के अति निकटतम मात्र गिने-चुने दो-चार भक्तों को ही था; आम भक्त श्री हंस बाबाजी की कठोर तपस्या, अचल गुरु-भक्ति और पूर्ण समर्पण भाव के बारे में अवगत नहीं थे। उन्होंने स्वयं योगिराज बाबाजी की मात्र यह वाणी ही सुनी थी कि—"बच्चा, हंसदास सिद्ध योगी है।"

विन्ध्याचल में श्री राधा-कृष्ण का सान्निध्य और उनकी रासलीला का दर्शन श्री हंस बाबाजी को निरन्तर प्राप्त होता रहा। और इस लीला का दर्शन जिनकी कृपा से स्वर्गाश्रम पर होता रहा, वह सद्गुरुदेव महाराजश्री स्वयं वृन्दावन में अवस्थान कर रहे थे। किन्तु जब योगिराज को भान हुआ कि स्वयं गोलोक-विहारी राधा-कृष्णजी विन्ध्याचल में लीला कर रहे हैं, तब महाराजश्री १९८९ में कुम्भ के समय विन्ध्याचल पधारे और राधा-कृष्णजी की युगलमूर्ति की मंच के समीप प्रतिष्ठा की।

सोचने की बात यह है कि एक तरफ वृन्दावन में बाबाजी महाराज भक्तों को 'असीम दया' वितरित कर रहे थे और दूसरी तरफ उसी 'असीम दया' के प्रवाह में अपने प्रिय शिष्य हंस दासजी को राधाकृष्णजी की अनुपम रासलीला का दर्शक बनाकर श्री राधाकृष्णजी के साथ वार्त्तालाप करने की आध्यात्मिक शक्ति भी प्रदान कर रहे थे। इसी अवस्था में श्री हंसजी अपार्थिव अपार आनन्द में निमग्न रह कर आध्यात्मिक प्रगति करते रहे। किन्तु इसी बीच लीलानायक गुरुदेवश्री ने अचानक शरीर छोड़ने का संकल्प व्यक्त किया और स्वीय पूत पावन

काया को यमुनाजी को अर्पण करके विदेह होकर हिमालय चले गये ! शरीर-परित्याग के पहले आर्त्त भक्त-जनों को सान्त्वना देते हुए उन्होंने घोषणा की—"मैं पन्द्रह वर्षों के अन्तर्गत पुन: पूर्ण रूप में तुम्हारे बीच आ जाऊंगा।"

गुरुदेवश्री के काया छोड़ने का संवाद सुनकर श्री हंस बाबा जी का हृदय विदीर्ण हो गया। ये स्वयं भी प्राण-त्यागने का संकल्प कर हिमालय के उस पावन क्षेत्र ज्ञानगंज के लिए चल पड़े जहाँ बड़े महाराजजी ने अपना अशरीरी रूप में सद्य: जाना आवश्यक बताया था। इसका पूर्ण विवरण श्री वैरागी बाबा के लेख 'योगिराज देवराहा बाबा प्रत्यावर्त्तन प्रसंग' में द्रष्टव्य है जो १९९२ के गुरु अर्चा विशेषांक में लगभग ९ पृष्ठों में प्रकाशित हुआ था। अमितविभूति पूज्यपाद योगिराज देवराहा बाबा की उसी प्रत्यावर्त्तन प्रक्रिया के फलस्वरूप श्री हंस बाबाजी अब श्री देवराहा हंस बाबा के रूप में अर्चित-पूजित हो रहे हैं। और उसी अवतरण प्रक्रिया का संकेत ऊपर उल्लिखित "श्री राधा-कृष्ण लीलामृतम्" के सूत्रों में आया है।

इस क्रम में जो कुछ भी कथित-संकेतित है, उसे अनुमान भी माना जा सकता है, किन्तु यदि समग्र परिस्थिति प्रवाह को ध्यान में रखें तथा अभी की विस्मयपूर्ण स्थिति पर भी विचार करें तो अवश्य यह बोध हो जायेगा कि श्री हंस बाबा वस्तुत: श्री देवराहा हंस बाबा ही हैं—उन विश्व-विभूति सद्गुरुदेव योगिराज के ही प्रतिरूप हैं—इसमें तनिक संशय मानना सर्वथा विच्युति-कारक होगा।

गुरुदेव अनन्तश्री योगिराज देवराहा बाबाजी को अनन्त प्रणाम। और उनके प्रतिरूप योगिवर श्री देवराहा हंस बाबाजी को भी अमित प्रणतियाँ !

जय गुरुदेव !



[सूत्र : 'पावन प्रसाद' दिसम्बर १९९३]

पूज्य बाबा का विंध्याचल स्वर्गाश्रम और महात्मा हंस जी बाबा

श्री दयाशंकर पाण्डेय

विन्ध्याचल स्टेशन (उत्तर रेलवे) से सात किलोमीटर की दूरी पर पूज्य बाबा का स्वर्गाश्रम भागदेवर, महुआरी कलाँ क्षेत्र में अमरावती रोड पर स्थित है। 'पावन प्रसाद' एवं सतीर्थ बन्धुओं से तत्सम्बन्धी सूचना मिलने के बाद हमें वहाँ दर्शनार्थ जाने की प्रबल इच्छा हुई। दिल्ली से लौटते समय, जहाँ कुछ सामाजिक कार्य से हमलोग गये हुए थे, सतीर्थ बन्धु श्री चतुर्भुज तिवारी (आमी, सारण), श्री सतीश चन्द्र झा (जगतपुर, सहरसा), श्री विनोद कुमार पाण्डेय (अस्थावाँ, नालन्दा) तथा श्री सिंहेश्वर प्र० सिंह (परसा नगर, प० चम्पारण) के साथ हम विन्ध्याचल में गाड़ी से उतर गये। आरम्भ में तो हमने माँ विन्ध्यवासिनी देवी, अष्टभुजा माता एवं कालीखोह का दर्शन किया और तदुपरान्त अमरावती रोड पर स्वर्गाश्रम के लिए हमने ताँगे से प्रस्थान किया। आश्रम पर भगवान का चरणामृत एवं प्रसाद पाने के बाद पुजारीजी के साथ हमलोगों ने गोशाला देखा, जिसमें २५० गौवों की सेवा इस समय हो रही है। गोशाला का कुछ भाग अभी भी निर्माणाधीन ही है। पुजारीजी ने वहीं से बाबा के मंच तक का मार्ग बता दिया।

हमें पूज्य मंच का रास्ता वन-प्रान्तर से होकर है। काफी दूर जाने पर वहाँ विराजमान बाबा का दर्शन मिला। दूर से ही नमन-दण्डवत् कर हमलोग मंच तक पहुँचे। मंचासीन बाबा पूज्य हंसदासजी महाराज थे। मंच के समीप राधा-कृष्ण एवं हनुमानजी की प्रतिमाएँ है। पूज्य हंसदास जी साक्षात् परम पूज्य योगिराज महाराजजी की प्रतिमूर्ति लग रहे थे। उनका बैठना-बोलना, आशीर्वाद देना, आदि सब पूज्य देवराहा बाबा जी महाराज का ही स्मरण कराते थे। उनके द्वारा बहुत कुछ उपदेश दिये गये। साथ ही मुझे मंच के बिल्कुल पास बुलाकर बारी-बारी से ५-६ पुस्तकें (भागवत पुराण आदि) देकर आदेश हुआ कि चिह्नित पंक्तियों को जोर से पढ़ो। भाव-विह्वल हो जाने के कारण पढ़ने में मुझे थरथराहट होती थी। उसमें लिखा था :—

"योगी कभी भी मरते नहीं, वे शुद्ध आत्मा वाले दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।"

फिर हमलोगों को मंच के नीचे बैठने का आदेश हुआ। पूज्य बाबा हंसदासजी महाराज के द्वारा पुनः उपदेश शुरू हुआ, जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

बच्चा ! स्नान ऊपर से करते हो, परन्तु उसका असर शरीर के भीतर होता है और चित्त की भी शुद्धि होती है। सूर्य की किरण शरीर के ऊपरी भाग पर लगती है किन्तु शरीर के अन्दर उष्णता प्रतीत होती है। भगवद्-भजन करने में भले ही चित्त एकाग्र नहीं होता हो परन्तु वह लाभ ही करेगा।

इसी बीच राधिकाजी की मूर्ति जंगम-सी दृष्टिगोचर हुई। इस सम्बन्ध में बाबा से जिज्ञासा की गई तो उनके द्वारा बहुत सारी बातें बतायी गई। पूज्य ब्रह्मर्षि योगिराज महाराजजी के प्रथम भंडारा के समय ही वहाँ राधा-कृष्ण की मूर्ति स्थापित की गई। वहाँ रात्रि में अपने-आप रास-लीला हुआ करती है, जिसे अनेक लोगो ने देखा-सुना है।

पूज्य बाबा के अशरीरी होने के पश्चात् श्री हंसदास जी महाराज हिमालय गये थे। वहाँ से उनके वापस आने बाद से ही लगने लगा कि महात्मा हंसदासजी में ही तत्काल पूज्य बड़े महाराजजी का अवतरण हो गया है। पूज्य हंसदासजी के द्वारा बताया गया कि—"बीज डाला गया है, वह अंकुरित हो रहा है। फल पूर्णतः तैयार होने में १४ वर्ष का समय है।"

पूज्य हंसदासजी ने हमलोगों की छुट्टी कर देने की बात मंच पर से कही। इसी समय मंच पर पूरब से पश्चिम की ओर जाते हुए परम पूज्य ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबाजी महाराज का दर्शन-लाभ हम सबों को साक्षात् हुआ। फिर हमलोगों को श्री राधा-राधा का कीर्तन करते रहने का आदेश देकर पूज्य हंसदास-जी झोपड़ी में चले गये। झोपड़ी से कुछ दूसरी ही तरह की ध्वनि सुनाई देने लगी। इतने में पूज्य हंसदासजी बाबा ने बाहर फिर दर्शन देकर हमें कहा कि 'बच्चा, काफी विलम्ब हुआ। तुम लोगों को जाना भी है। आओ प्रसाद ले लो।' एक-एक पोलीथीन में पूरा भरा हुआ बतासे का प्रसाद देकर वे बोले कि यह अनेक मिलकर दो (राधा-कृष्ण) हैं। फिर दो-दो नीबू देकर बोले कि बच्चा, ये दो मिलकर एक ब्रह्माण्ड हैं, इसलिए इन्हें भी ले लो। पुनः एक-एक सेव हम सबों को देकर और यह कहकर हमारी छुट्टी की गयी कि 'आते रहना, असीम दया है, जहाँ स्मरण करोगे वहीं मिलेंगे !'

परम गुरु श्री बड़े महाराज जी की जय !
उनकी अकथ लीला विलास की जय !

['पावन प्रसाद', जनवरी १९९२]

श्री देवराहा हंस बाबाजी महाराज की योग विभुता : ध्यान-योग

डॉ० राधा रमण

अनन्तश्री योगिराज देवराहा बाबा की परम्परा में सर्वाधिक चर्चित प्रात:स्मरणीय श्री देवराहा हंस बाबा आज सम्पूर्ण देश में लब्धप्रतिष्ठ संत के रूप में समादृत एवं वंदित हैं।

गीता में कहा गया है—

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ (१५/१०)

अर्थात्—शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को (और) विषयों को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानी जन नहीं जानते हैं, (केवल) ज्ञानरूप नेत्रों वाले (ज्ञानी जन हीं) तत्त्व से जानते हैं।

अतएव स्पष्ट है कि श्री हंस बाबा को तत्त्व से जानने के लिए हमें श्रद्धा-भक्ति से प्रयत्नशील होना चाहिए क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता में हीं यह भीं स्पष्ट कहा हुआ है कि—

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ (७/२६)

अर्थात्—हे अर्जुन पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित और आगे होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूं किन्तु मुझे कोई भी श्रद्धा-भक्ति रहित पुरुष नहीं जानता।

श्री हंस बाबा अनन्तश्री योगिराज देवराहा बाबा के प्रति समर्पित साधक रहे। परमगुरु श्री देवराहा बाबाजी महाराज में श्री हंस बाबा अपना 'स्व' मिटाकर एकाकार हो गए हैं। अब उनका अपना कुछ भी नहीं, भृंग-भृंगी भाव की यह उच्चतम स्थिति है। यही असम्प्रज्ञात समाधि है। उससे भी और आगे 'प्रेमयोग' या 'समर्पण योग' है। जिस प्रकार दीपक स्वयं खींचकर पतंगे को अपने में मिलाता है, उसका अहम् और उसका 'नाम-रूप' मिटाकर उसे आत्मसात् कर लेता

है, उसी तरह कोई ग़ैबी कशिश (दैवी आकर्षण) ऊपर खींचती है और साधक अनजान की तरह खिंचता चला जाता है। इस अवस्था में प्रियतम खुद ही अपने प्रेमी को देखने और उसे अपनाने के लिए व्यग्र होता है तथा उसका आलिंगन करने हेतु उसे त्वरित रूप से अपनी ओर खींचता है।

साध्य, साधक और गुरु इन तीनों को त्रिपुटी मिटा देना कोई खेल नहीं है। मीरा को जैसे गिरधरलाल के सिवा कोई अन्य पुरुष संसार में दिखाई ही नहीं देता था, उसी तरह श्री हंस बाबा को सर्वत्र एक और एक ही दिखाई देता है और उसी एक की साधना के लिए श्री हंस बाबा स्वयं श्री देवराहा हंस बाबा के रूप में सर्वत्र मानो यही कहना चाहते हैं कि—

दर दिवार दर्पण भये जित देखूँ तित तोय।
कांकर-पाथर-ठीकरी भयो आरसो मोय॥

और फलस्वरूप अब स्थिति ऐसी है कि—

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, जा में दो न समाहिं॥

श्री हंस बाबा 'ध्यानयोग' के साक्षात् प्रमाण हैं। वे सर्वत्र, सर्वकाल अनन्तश्री योगिराज देवराहा बाबा सदृश ईश्वरलीन अवस्था में रहते हैं। ग़ैरियत (भेद) का पर्दा बीच से दूर हो गया है। अब तो सच्चाई यही है कि—

मैं जाना मैं और था, मैं तो हो गया सोय।
में-तें दोऊ मिट गये, रहे कहन को दोय॥

सम्पूर्ण भारतीय धर्म-साधना और हमारे वेदान्त की भी यही मान्यता है—

अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः ॥१।२।२९।
(वेदान्त-दर्शन, अध्याय १ पाद २, सूत्र २९)

---

* अर्थात् (भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए) देश (या पात्र) विशेष में ब्रह्म का प्राकट्य होता है, इसलिए इसमें विरोध नहीं है, ऐसा आश्मरथ्य आचार्य मानते हैं।

अभिप्राय यह कि भक्तजनों पर अनुग्रह करके उन्हें दर्शन देने के लिए भगवान समय-समय पर उनकी श्रद्धा के अनुसार नाना रूपों में प्रकट होते हैं तथा अपने भक्तों को दर्शन, स्पर्श और आलाप आदि के द्वारा सुख पहुँचाने, उनका उद्धार करने और जगत् में अपनी कीर्ति फैला कर अपने कथनों के द्वारा साधकों को सुख पहुँचाने के लिए भी भगवान मनुष्य आदि के रूप में समय-समय पर प्रकट होते हैं।

कुछ लोगों के मन में यह धारणा है कि अनन्तश्री योगिराज देवराहा बाबा का स्थानापन्न कोई कैसे हो सकता है। किंतु पूर्वागत विवरणों से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि जब योगिराज लोक-कल्याण के अवशेष कार्यों के निमित्त स्वयं किसी को अपना प्रतिरूप निर्धारित करते हैं तो उसमें कोई व्यतिक्रम सम्भव ही नहीं है। भगवद्भक्त समुदाय को दोनों में तत्त्वतः किसी अन्तर की प्रतीति होती ही नहीं, और विशेषतः इस कारण ही सारी दुनिया श्री हंस बाबा के समक्ष नतमस्तक है।

साधु की शक्ति साधु में, बाबा की शक्ति बाबा में, परमहंस की शक्ति हंस में, न श्रीकृष्ण अलग, न राधाजी अलग। दोनों एक ही नदी के दो किनारे हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। नदी के दूसरे छोर पर खड़े होकर हम यदि यह कहें कि यह दूसरी नदी है तो भ्रांति होगी। नदी वही है, हम केवल दूसरी छोर पर हैं। सिक्का एक ही है, एक तरफ श्री देवराहा बाबा का मानसिक चित्र है तो दूसरी ओर श्री हंस बाबा का प्रत्यक्ष चित्र है।

अपनी अप्रतिम योग शक्ति से श्री हंस बाबा व्याधिग्रस्त मानवों का कल्याण भी कर रहे हैं। यद्यपि चिकित्सा उनकी दिशा नहीं है, वे साधु स्वभाव से विवश हैं क्योंकि किसी को दुखी देखकर संत विचलित हो ही जाता है। यही करुणा का पारावार योगिराज को भी विवश करता था और इनको भी करता है- आगत जनों की कायिक व्याधि को दूर करना श्री हंस बाबा के लिए एक अवश कर रखने वाला सहज स्वभाव मात्र है।

श्री हंस बाबा का ध्यानयोग में अटूट विश्वास है। सब समय, हर क्षण वे 'एक' में ध्यान मग्न रहने की सीख देते रहते हैं।

'एक एक आयो है हंस बाबा आयो है।'

ऐसे बाबा आये हैं. जो पूर्व के रूप से भिन्न होते हुए भी 'एक-एक' हैं।

कलियुग में सत्ययुग की झाँकी

आज घोर कलियुग है ; इस कलियुग में सत्य युग की अनुभूति का एक प्रभविष्णु माध्यम ध्यानयोग है। श्री हंस बाबा महाराज का कथन है कि जो ध्यानयोग पर ध्यान देगा, वह कलियुग में ही सत्ययुग की अनुभूति कर सकेगा। इस ध्यानयोग के क्रम में श्री बाबा आबाल-वृद्ध-वनिता को अपनी अध्यात्म-शक्ति की अनुभूति साक्षात् करा रहे हैं। मैंने गत नवम्बर में ही राँची-स्थित लाह कोठी मंच के निकट देखा कि वे अनेक छात्र-छात्राओं, छोटे-बड़े बच्चों, बड़े-बूढ़ों तथा बहन-माताओं से उनके छः-छः महीने पूर्व के पढ़े-लिखे विस्मृत पाठ ध्यान योग की प्रक्रिया से क्षण भर में बंद आँखों से ही पढ़वा देते थे। यह एक कुतूहल भी था। मुझे स्वयं इस ध्यान योग की प्रक्रिया से लाभ उठाने का लोभ हुआ और मैंने तत्क्षण श्री बाबा से इस सम्बन्ध में साग्रह निवेदन किया। श्री बाबा ने अविलम्ब मुझे आँख बंद करने का आदेश दिया और उसी हालत में मुझे देवरिया सरयू-तट स्थित मंच, फिर वाराणसी मंच और तब श्री वृन्दावन मंच पर अनन्तश्री देवराहा बाबा के दर्शन कराये। जब मैं श्री वृन्दावन स्थित मंच पर अनन्तश्री देवराहा बाबा का दर्शन कर रहा था तो पूज्य हंस बाबा की वाणी गूँज उठी—'बच्चा, ले-इसी ध्यान योग में वाणी भी सुन।' और मैंने स्पष्ट अनंतश्री देवराहा बाबा द्वारा वृन्दावन स्थित मंच से मुझे ही सम्बोधित पूर्ववाणी सुनाई पड़ी—"बच्चा राधारमण, तू इतना रोता क्यों है ?"

उसके बाद ही श्री हंस बाबा ने आँखें खोल देने की आज्ञा दी। यह एक अभूतपूर्व अनुभूति थी। श्री बाबा ने तब स्पष्ट किया—"बच्चा, इसी ध्यानयोग को विकसित कर सत्ययुग में होनेवाली अनुभूति का संधान भी मिल सकता है। ध्यानयोग बहुत विलक्षण साधना है, किन्तु यह सद्गुरु की कृपा के बिना सम्भव नहीं है।"

मैंने मंच के निकट गुरु-दीक्षा लेते हुए भाई-बहनों में यह पाया कि जब श्री बाबा दीक्षा से पूर्व सबको आँखें बंद करने को कहते थे और पूछ बैठते थे कि वे उस स्थिति में क्या देख रहे हैं तो वे अपनी-अपनी पुण्यानुभूति के अनुसार अलग-अलग यह कहते सुने गये—

"बाबा, मैं आपको देख रहा हूँ।"…"बाबा, मैं श्री हनुमानजी को देख रहा हूँ।"…"बाबा, मैं मंच पर विराजमान आपको देख रहा हूँ।"

अध्यात्म का दूरदर्शन

कलियुग में व्यक्ति जब दिन-रात सांसारिक चिन्ताओं में मग्न है, जब वह नितान्त भौतिकतावादी है, क्षण भर में ही श्री बाबा की कृपा से सबका त्याग कर, सबको भूलकर आध्यात्मिक ध्यानयोग में उसका स्थित हो जाना एक अत्यन्त विस्मयकारी, महान उपलब्धि है; इसे ही श्री बाबा सरस्वती योग की भी संज्ञा से विभूषित करते है। वे बालकोचित सरलता में कहते है—'बच्चा, यह भी एक दूरदर्शन ही है।' पूर्ण प्रतीति भाव तथा श्रद्धा और विश्वास की त्रिवेणी में अवगाहन करने से यह सुवसर मंच के पास जिस तरह आज सर्व सुलभ है, यह भी एक महती कृपा है। जो समझ रहे हैं, वे डूब रहे हैं, जो डूब रहे हैं वे धन्य हो रहे हैं! यदि यह सत्य है कि—'बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता'—तो यह भी सत्य है कि—

आना जाना एक है, एक एक में एक।
जब जब आया एक में, वही एक से एक॥
तेरा-मेरा प्यार एक है, सदा एक में एकइ एक।
एकइ एक से बना हुआ है, एकइ एक में एकइ एक॥

अतः यह अच्छी तरह समझना है कि—

बाबा आए, बाबा आए, 'हंस' रूप में बाबा आए।
आ आ करके अपना प्यारा, ज्ञान-ध्यान सब में फैलाए॥
बाणी का है रूप वही, शक्ति का संचार वही।
देख देख के एक रूप में, आये प्यारे प्यार वही॥

पूज्य श्री हंस बाबा जी से यह पूछने पर कि श्री योगिराज बाबा प्रत्यक्ष रूप से आपका निर्देशन करते हैं या अदृष्ट रूप में, उन्होंने कहा—'श्री बाबा सूक्ष्म शरीरधारी हो गए हैं, इसलिए उनको मुझसे जो भी काम कराना होता है, मेरा अन्तःकरण स्वयं ही वैसा हो जाता है। ध्यानयोग की यही सर्वोच्च स्थिति है—

इन नयनन का यही विशेख, यह भी देखा वह भी देख।
देखत-देखत ऐसा देख, मिट गयी दुविधा रह गया एक॥

[सूत्र 'पावन प्रसाद' जनवरी १९९४]

पूज्य बाबा के विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम के महात्मा हंसदासजी

श्री सुभाषचन्द्र

[कलकत्ता से प्रकाशित हिन्दी दैनिक 'सन्मार्ग' के २१ मई (१९९२) वाले अंक में 'स्वामी हंसदास जी में देवराहा बाबा की झलक' शीर्षक से एक बड़ा ही मार्मिक लेख प्रकाशित हुआ है जिसे हम अविकल रूप से यहाँ भी प्रकाशित कर रहे हैं। स्पष्ट है कि 'पावन प्रसाद' में पूज्य बाबा के विन्ध्याचल-स्थित स्वर्गाश्रम के सम्बन्ध में विगत कुछ अंकों से जो सूचनाएं प्रकाशित हो रही हैं उनकी पुष्टि ही श्री सुभाषचन्द्र द्वारा 'सन्मार्ग' में प्रकाशित इस निबन्ध के द्वारा भी होती है। यह लेख पूज्य बाबा के भक्त-प्रवर श्री अमरनाथ ओझा जी (निरसा, धनबाद) से हमें लब्ध हुआ और एतदर्थ हम उनके आभारी हैं। —सम्पादक]

विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत ही समृद्ध थीं, जिसका प्रमाण पुरातत्त्वविदों की खोजों से प्राप्त हो चुका है और इसने विज्ञान को आश्चर्य में डाल दिया है। लेकिन इनसे भी ज्यादा आश्चर्य-जनक शायद भारत भूमि की प्राचीन वैज्ञानिक, आध्यात्मिक एवं परामनोवैज्ञानिक उपलब्धियाँ हैं। यह सच है कि ऐसी सिद्धियों के लिए जिस कठोर तप या जीवनचर्या की आवश्यकता है वह आज के वस्तुवादी संसार में शायद कठिन है।

प्राचीन ऋषि युग से ही काया-प्रवेश का विधान चला आ रहा है। मुख्यतः दो प्रकार की काया-प्रवेश क्रिया का उल्लेख मिलता है। प्रथम विधि में साधक अपने जराजीर्ण शरीर को छोड़कर किसी युवा मृत देह में अपनी आत्मा का प्रवेश कराता है। इसमें साधक की मनोकामनाएँ सजीव रहती हैं। दूसरी विधि सूक्ष्मावस्था विधि है। इसमें साधक अपनी नश्वर देह को छोड़ने से पहले किसी योग सिद्ध साधक का चयन करने के बाद या यों कहें कि उस साधक की देह एवं आत्मा को शुद्ध कर अपनी देह को त्याग कर सूक्ष्म रूप में साधक की आत्मा एवं देह का लोक कल्याण के लिए उपयोग करता है। आध्यात्मिक परिभाषाओं के अनुसार यह सिद्धावस्था का विषय है। इस क्रिया को करनेवाला योगी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त किया हुआ होता है बल्कि एक तरह से वह ईश्वरीय सत्ता का ही अधिकारी माना और कहा जाता है। ऐसे ही एक सिद्धात्मा योगिराज श्री देवराहा बाबा हुए हैं।

योगिराज श्री देवराहा बाबा ने अपने भक्तों से कहा था कि कलियुग में सतयुग का प्रवेश होगा एवं घोर तमस में कहीं-कहीं दीप जलता दीखेगा। शायद उन दीपों में प्रकाश को चारों ओर समान रूप से फैलाने के लिए ही योगिराज ने अपने शिष्य श्री हंसदास जी को अपने काया-प्रवेश के लिए सुनिश्चित कर लिया था एवं कठिन योग साधना में उनका मार्ग दर्शन करते हुए एक सच्चा योगी बना दिया था। समाधि ग्रहण से काफी पहले ही उन्होंने भी हंसदास जी को कह दिया था, "वत्स! तत्काल तुमसे ही कहता हूँ कि मैं हिमालय जाऊँगा।" उस दिव्य पुरुष ने काया त्यागने से पहले उपस्थित भक्त समूह से कहा—"अब हम अपनी जगह जा रहे हैं। वह जगह हिमालय के तिब्बत क्षेत्र में है। वहाँ हमारी एक टोली है जो बारी-बारी से निदेशानुसार पृथ्वी पर आती है। हम फिर चौदह वर्ष के अन्दर भारत के अध्यात्म ज्ञान की रक्षा के लिए आयेंगे। तुम लोग चिन्ता मत करना।" और १९ जून, १९९० को वृन्दावन धाम में काया त्याग कर उन्होंने तिब्बती हिमालय के उस रहस्यमय आध्यात्मिक लोक ज्ञानगंज के लिए प्रयाण किया।

इसके बाद बाबा का सूक्ष्मावतरण श्री हंसदास जी पर प्रत्यक्ष होना शुरू हुआ। वे आश्रम में बने सुन्दर कमरों में कभी भी न रहकर कुछ दूर जंगल के निकट पर्णकुटीर में रहकर आश्रम के संचालन तथा भजन-आराधन और साधना में लीन रहते हैं। आश्चर्य की बात है कि दर्शनार्थियों को उनमें अब पूज्य बाबा का साक्षात् दर्शन होना शुरू हो गया है। आयु एवं शारीरिक विषमताएँ जैसे धीरे-धीरे दूर होने लग गयी हैं। आशीर्वाद की मुद्रा, शारीरिक पहचान इत्यादि श्री हंसदासजी की सभी कुछ अब पूज्य श्री देवराहा बाबा की तरह का होता जा रहा है।

इस सम्बन्ध में श्री हंसदास जी का कहना है—"बाबा तो सूक्ष्म शरीरी हो गये हैं, इसलिए उनको मुझसे जो भी कराना होता है, मेरा अन्तःकरण स्वतः वैसा हो जाता है। आगे क्या करना है और कब करना है इसके बारे में मुझे कुछ सोचना ही नहीं पड़ता।"



[सूत्र : 'पावन प्रसाद' जून १९९२]

'लिया हंस बाबा के तन में बाबा ने अवतार'

श्री गोपाल भारतीय

गुरु-पद-चिह्नों को जीवन पथ जो लेते हैं मान।
उन सत्‌शिष्यों को मिलता है, सद्‌गुरु का अवदान।।

दयानंद को मिले तपोधन स्वामी विरजानन्द।
सत्य-धर्म को ध्वजा फिराकर फैलाया आनन्द।

सत्‌गुरु-शिष्य मिलन महिमा का है आदान-प्रदान।
सत्‌शिष्यों को ही मिलता सद्‌गुरु का अवदान।।

गुरु नानक की आत्मशक्ति से मुखरित गुरुगोविन्द।
विश्व विदित है, रामकृष्ण ही बने विवेकानन्द।

योग शक्ति को तोल नहीं सकता भौतिक विज्ञान।
सत्‌शिष्यों को ही मिलता सद्‌गुरु का अवदाम।।

आकुल-व्याकुल भक्तजनों की सुनकर करुण पुकार।
लिया हंस बाबा के तन में, बाबा ने अवतार।

देवरहा-उर्जा का उद्‌भव प्रत्यावर्तित-प्राण।
सत्‌शिष्यों को ही मिलता, सद्‌गुरु का अवदान।।

तेज वलय अति दिव्य हंस-सा भाल प्रशस्त विशाल।
स्वर्गाश्रम में वास आपका विन्ध्य चतुर्दिक् भाल।

विन्ध्यवासिनी माता का भी जहाँ सतत जयगान।
वहीं मिला करता शिष्यों को अब गुरु का अवदान।।



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', दिसम्बर १९९३]

ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा : उत्तरचरित
पीठिका

श्री रामविरागी दासजी (श्री वैरागी बाबा)

समय-समय पर जब कभी धर्म की हानि होती है, और अधर्म के आच्छादन से युग-युग की सतोगुणी शक्तियों का पराभव होता है, ऐसे समय में मानवोचित कर्म, न्याय, आचरण, नीति तथा संस्कृति और स्वधर्म सभी अज्ञान के घिर जाने से मूक हो जाते हैं। सत्य की जगह असत्य का प्रयोग होने लगता है तथा स्वधर्म को छोड़ सभी स्वार्थ के उपासक बन जाते हैं। ऐसे ही अंधकाराच्छन्न समय में अखिल ब्रह्मांड के स्वामी परमेश्वर अपने किसी लघु रूप में अवतरित होकर धरती के भार को दूर करते हैं।

अध्यात्म-उत्थापक योगिराज ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा का अवतरण भी इसी ईश्वरीय विधान के अन्तर्गत युग धर्म की संरचना हेतु हुआ था। पार्थिव-वपु के विसर्जन के पूर्व उन्होंने ईश्वरीय सत्ता का अपने संवाहक होने को घोषणा श्री वृन्दावन धाम में तथा अन्यत्र कई बार की थी। अध्यात्म काया के तीनों आवरणों से वे तभी परे हो चुके थे, जब वे स्थूल काया में विराजमान थे। परन्तु उनकी प्रत्यक्ष काया की अपूर्व ब्रह्म-शक्ति तथा योग-विभुता को देखकर यह आँका जा सकता था वे कि अपनी अनन्तता से जुड़े एक बिराट देव पुरुष हैं। वे जब कभी लहर में आते थे तो इस कथन को प्रत्यक्ष रूप भी दे दिया करते थे—"बच्चा, मैं ठाकुरों का ठाकुर हूँ। मैं ही मंदिर और मैं ही पुजारी हूँ। मैंने ही महाबली हनुमान के रूप में श्री राम का हितकार्य सम्पादन किया और मैंने ही परवर्ती युग में कृष्ण-रूप में गोपियों के साथ रास भी रचाया।"

ऐसी घोषणा पूज्य बाबा के ब्रह्म-रूप की एक स्पष्ट व्याख्या मात्र होती थी।

युगावतार श्री बाबा के अकाय हो जाने के बाद चैतन्य जीवन में कुछ तार्किक चर्चाओं का वातावरण बनता जा रहा है—किन्तु ऐसा

होना नहीं चाहिए था। ब्रह्मर्षि को जाते समय जो कहना था, सो उन्होंने श्री वृन्दावन मंच से भी कह दिया था। उस कथन के बाद उन्हें भक्त समाज को जो कहना था, उसमें कुछ शेष नहीं रह जाता। चौदह वर्ष बाद पुन: भारत में आकर पूर्वागत आध्यात्मिक कार्य अग्रसारित करते रहने की रहस्ययुक्त घोषणा भी उनके द्वारा की जा चुकी है। उनकी यही घोषणा हमारे लिए मार्ग-दर्शक का काम करेगी, यह सुनिश्चित है। प्रज्ञापुरुषों का अलौकिक जीवन-विधान सामान्य भौतिक जीवन से विलक्षण हुआ करता है। दिव्य अदृश्य लोक से अवतरित चमत्कारिक शरीर की शक्तियों को और कार्यक्रम को, उनकी तेजस्विता, विधि-विधान तथा उद्देश्यों के पराज्ञान के बिना नहीं आँका जा सकता।

देवर्षि श्री बाबा की पुनीत सेवा में अनेक पार्षद आये और रहे; उनकी अनेक नामावलियाँ श्रुतिगत हैं; किन्तु आश्चर्य यह है कि जो ब्रह्म प्रत्यक्ष है, जीव-जगत के उद्धार में अहर्निश संलग्न है, उसके संग रहकर भी वे अपने में उसके ब्रह्म तत्त्व के प्रकाश को नहीं ग्रहण कर सके; बल्कि ऐसे अधिकांश सेवक भौतिक लाभालाभ की अपनी गठरी सहेजने में ही भूले रह गए। उनका आध्यात्मिक रीतापन तब भी नहीं जा सका, और आज भी वे ही जन ब्रह्मर्षि के उत्तराधिकार के लिए भ्रमरों की तरह गुंजार-रत हैं, व्यस्त हैं।

युगावतारी संत शरीर-विसर्जन के पूर्व सर्वात्महित की दृष्टि से कुछ घोषणाएँ कर देते हैं। उनमें कुछ तो सम्प्रदाय सम्बन्धी हुआ करती हैं—जैसे मठ या आश्रमों के संचालक चुनने की बात—और दूसरी उनसे मतलब रखती हैं जो उस युगावतार गुरु के शरीर-त्याग के बाद उसके ब्रह्मत्व पद की यथासंभव देख-रेख रख सकें। क्षमता जिसमें न हो उसे यह गुरुतर दायित्व नहीं दिया जा सकता। इसके लिए स्थित-प्रज्ञ आत्मा का होना जरूरी है। सिक्ख गुरु श्री नानकदेव जी ने गुरु की गद्दी अपने पुत्रों को न देकर श्री अंगददेव जी को ही दी। सिद्ध ज्ञानी संतों का सनातन से यही मार्ग रहा है।

अनंतश्री विभूषित योगिराज देवराहा बाबा परम प्रतापी संत के साथ उत्तुंग महिमा मंडित महंत भी थे। अपने से सम्बद्ध मठों की व्यवस्था और संचालन का कार्य पूर्व से ही वे ट्रस्टों के जिम्मे कर चुके थे। इसलिए इस प्रसंग में उनको कुछ सोचना नहीं पड़ा। रही बात

उनके प्रज्ञावपु पद की जिस पर वे आसीन थे। इस प्रसंग में वे समाधि लेने के पूर्व तक मौन बने रहे और किसी संत के बारे में कुछ भी नहीं बोले। परन्तु उनके अकाय होने के संग ही वृन्दावन में कुछेक संतों ने श्री बाबा समाज को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए निज को उनका उत्तराधिकारी बताया तथा समाज में दल-दुन्दुभी द्वारा भी इसका प्रचार कराया जो आगे चलकर असार्थक और हास्यास्पद सिद्ध हुआ। यह उचित भी नहीं था कि वैसे ब्रह्म-वपु परम तपस्वी और परमज्ञानी संत से सम्बन्ध जोड़कर निजी नामैषणा के चलते सत्य-ज्ञान के निर्मल मार्ग को कलुषित बनाया जाय। जहाँ श्री बाबा का शरीर विसर्जन हुआ है, कोई जरूरी नहीं था कि वहीं सिद्ध-पीठ की स्थापना की लम्बी योजनाएँ बनायी जायँ जिसमें लाखों-करोड़ों का व्यय हो। आज तो जरूरत थी श्री बाबा के अपूर्व ज्ञान-सम्पदा को जन-जन तक ले जाने के लिए अपने को वीतराग तपस्वी के रूप में ढालने को। आज नवयुग अवतरण को इस वेला में दृष्टि को विशुद्ध बनाकर शुद्ध आचार-व्यवहार दिग्दर्शन की ओर पूज्य बाबा के सर्वात्मभाव के योजनाबद्ध रूप से प्रचार-प्रसार की जरूरत है न कि स्मारकों की।

आज के युग में कुछ ऐसा प्रभाव हो होता जा रहा है कि लोग साधना-पथ को स्वीकार न कर सुयोग पाते ही सत्पथ त्याग स्मारकों और आश्रमों की रचना में जुट जाते हैं। इस विधि का प्रचलन आजकल धर्म के क्षेत्र में भी साधना का एकमात्र विषय बन चुका है। अगर किसी सम्प्रदाय के महा तेजस्वी संत का शरीर छूट गया तो स्थान विशेष पर उनकी महिमा और उनके नाम के पार्थिव अभिनन्दन के लिए उनकी मूर्ति के प्रतिष्ठापन द्वारा स्मारक-निर्माण का विधान रच दिया जाता है और उसके चलते अधिकाधिक लोगों को अपनी तरफ खींचने की होड़-सी लग जाती है। ऐसा वे ही लोग करते हैं, जिनमें गुरु के आध्यात्मिक ज्ञान को आत्मसात् कर उसके प्रचार-प्रसार में नियुक्त होने की उत्कट गुरु-भक्ति जनित प्रेरणा या क्षमता नहीं रहती।

धार्मिक क्षेत्र में ऐसी परम्पराओं के जकड़न से लोगों में घोर रूढ़िवादिता तथा अंधविश्वास का संक्रमण होता जा रहा है। उपनिषद् काल में धर्म का आश्रय लेकर ऐसो काय-पोषक दम्भद्योतक परम्पराओं को बढ़ाने का निषेध था, जिस वजह से विश्व में आत्म-ज्ञान का पर्याप्त

प्रकाश प्राप्त हो सका। रूढ़िवादिता से धर्म की आँखें बन्द हो जाती हैं और अंधविश्वास के कारण समाज में अज्ञान का विस्तार बढ़ता है। धर्म के नाम पर ऐसे आयोजनों को यदि बढ़ावा दिया गया तो यह स्पष्ट है कि अध्यात्म के ह्रास के साथ-साथ युग-जीवन का सर्वनाश ही सुनिश्चित होगा।

जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य, स्वामी दयानन्द सरस्वती, भगवान बुद्ध और महावीर आदि धर्म-प्रवर्तकों ने गलत धार्मिक प्रचलनों के विरुद्ध आवाज उठायी। आज भी हमारे धार्मिक जीवन की यही हालत है। व्यापक धर्म-संकट के रास्ते गुजरते हुए युग की ओर से यह स्पष्ट घोषणा हो रही है कि हम देवालय तथा महापुरुषों की मूर्तियाँ अथवा स्मारक जोड़ने की जगह अपने मानसिक दुराग्रहों को दूर करें। और आचारतः अपने आप में, अपने हृदय-प्रकोष्ठ में, ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा की ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित करें।

देव-शक्तियों का प्रवेश चैतन्य काया में होता है। ज्ञानार्जन हो जाने के बाद ही कोई दूसरों के मन के अन्धकार को दूर कर सकता है। अध्यात्म के क्षेत्र में यह अत्यन्त महान कार्य होगा कि पूज्य बाबा के अग्रणी अनुयायी उनके स्मारक या मंदिर बनाने की जगह यमुना के पावन-पुलिन पर—अथवा गंगा या सरयू तट पर ही कई पर्ण-कुटियों की रचना करते और उनमें साधना युक्त होकर अपने विरक्त जीवन द्वारा आम लोगों को वही प्रसाद देते जिसे पूज्य बाबा अबाध रूप से अहर्निश बाँटा करते थे। युगावतार ब्रह्मर्षि श्री बाबा के अकाय हो जाने के बाद भक्त समुदाय का मन शंकाकुल हो चुका है कि वे अपने महागुरु श्री बड़े महाराजजी सदृश पथ-प्रदर्शन के लिए अब कहाँ जायँ, किसकी शरण लें?

यह प्रश्न लोगों को किंचित् दिग्भ्रमित-सा बनाये हुए है। ऐसा अनिश्चित माहौल बन जाने के कारण श्री महाराजजी के भक्त समाज के सदस्य कभी वृन्दावन, कभी काशी, कभी अयोध्या और कभी विन्ध्याचल जाने में बँट जाते हैं, जो स्वाभाविक ही है। जो वरिष्ठ भक्त मार्ग-दर्शक होने की योग्यता ही रखते हैं उनको चाहिए था कि अलग-अलग बँटे हुए लोगों को एकता के सूत्र में बाँधते और एक मत, एक पथ तथा सत्य सिद्धान्त की मेखला बनाकर संघबद्ध हो उस पर चलते और चलाते। श्री महाराजजी अपनी योगशक्ति के द्वारा युगों से विभक्त लोगों को एक

मार्ग पर लाते रहे और मान्यताओं में भेद रहने पर भी उन्होंने सबमें समन्वय स्थापित किया। उनके ही पद-चिह्नों पर चलने से हमारा कल्याण होगा न कि अलग-अलग शक्ति-पीठ की योजना करने से।

विश्वगुरु श्री बड़े महाराजजी अपने प्रयाण के पूर्व इलाहाबाद के भक्त श्री चन्द्रकुमार शर्माजी से मंच सेवा के समय विन्ध्याचल आश्रम के तपस्वी संत श्री हंसदास जी की योग-सिद्धि की प्रखरता के सम्बन्ध में कह दिया करते थे—"बच्चा, हंसदास सिद्ध योगी है।" मंच से इस स्थिति की घोषणा श्री महाराजजी योग्य भक्तों से समक्ष अक्सर किया करते थे। श्री जगन्नाथदास जी, जो पूर्व के अवकाश-प्राप्त वरीय अभियन्ता हैं, उनसे भी बाबा ने कहा था—"बच्चा, हंसदास सिद्ध संत है। मैं तुमको उसके ही पास भेज रहा हूँ।" पूज्य बड़े महाराज जी की ऐसी वाणी निराधार नहीं हो सकती—क्योंकि वे त्रिकालदर्शी थे। यह कहना भी अत्युक्ति नहीं हैं कि श्री हंसदास जी को हंसवत् ज्ञानी-ध्यानी बनाने का श्रेय पूज्य महाराजजी को ही है।

श्री हंसदास जी की तपस्या उनकी युवावस्था से ही शुरू होती है। युवावस्था से ही ये ईश्वर-दर्शन के लिए परिवार से नाता तोड़कर बड़े महाराज जी के कृपापात्र बने। आत्म-साधना की लगन तथा भगवान की प्राप्ति में इनकी अतिशय प्रीति देखकर श्री महाराज जी ने मंच की सेवा में इन्हें नियुक्त कर लिया। गुरु पादरविन्द की सेवा से कभी इनका मन थकता नहीं था। त्रिकालज्ञ सद्गुरु ने इस सेवा काल में इनको अध्यात्म-ज्ञान का निगूढ़ उपदेश दिया।

श्री महाराज जी को उनमें उस समय के विरक्त भाव को देखकर यह निश्चित करते देर नहीं लगी कि भविष्य में हंसदास महान संत का पद शोभित करेगा। ऐसा विचार कर एक दिन बाबा ने अपने पास बुलाकर इन्हें समझाया—"बच्चा हंसदास, पास में रहोगे तो वृत्ति भक्तों में रहेगी, विन्ध्याचल रहोगे तो वृत्ति ब्रह्माकार होगी, एकान्त चिन्तन होगा। अगर हाकिम नहीं बन सकते तो आरम्भ में पेशकार बनकर ठाकुर जी के मंदिर-निर्माण में ईंट-पत्थर तो जोड़ ही सकते हो।"

कुम्भकार वर्तन तैयार करने के पूर्व मिट्टी में से एक-एक कंकड़ को चुनकर निकाल देता है ताकि बना हुआ घड़ा सर्वोपयोगी एवं सुघड़ सिद्ध हो। आध्यात्मिक रचना में सद्गुरु की भी यही दृष्टि रहती है।

भविष्य-द्रष्टा गुरुदेव शिष्य की सारी बात जानकर उसके लिए वैसे ही विधान की रचना करते हैं—जिसका ज्ञान सामान्य लोगों को नहीं होता। अतएव ऐसा कहना असंगत नहीं होगा कि श्री महाराज जी पूतात्मा हंसदास के भावी जीवन से भी पूर्व परिचित थे; इसी कारण उन्होंने साधुओं के शेष समुदाय से उनको अलग किया और उन्हें निर्दिष्ट रूप में ढालने के लिए विशिष्ट उपक्रम की रचना की तथा सरयू-तट की अपनी सेवा से मुक्त कर उन्हें विन्ध्याचल भेज दिया। यही प्रतीत होता है कि श्री महाराज जी को इनमें एक योगी संत की रचना करनी थी जिसकी विधिवत् साधना के हेतु विन्ध्याचल का आश्रम ही एकमात्र उपयुक्त तपोवन था। एकान्त स्थान में कठोर तप के साधन से जब जन्म-जन्मान्तरों के कलमष छुट जाते हैं तब ब्रह्मदर्शन प्राप्त होता है और काया कंचन बनती है। श्री हंसदास जी बड़े सरकार की आज्ञा शिरोधार्य कर विन्ध्याचल आ गए और मठ को श्री सद्गुरुदेव की सगुण काया मानकर उसमें अपनी निष्काम सेवाएँ अर्पण करने लगे। गुरुदेव श्री बाबा ने अपनी समीपता इनसे इसलिए छुड़वायी थी कि सुदूर रहकर ही पूर्णरूपेण गुरुतत्त्व की उपासना यह कर सकेगा। योग विभुता की उपासना एकान्त स्थान के बिना प्रतिफलित नहीं होती। भगवान् श्री कृष्ण ने भी इसकी चर्चा इस प्रकार की है—

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः॥

—(गीता ६/१०)

अर्थात् जिसका मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है ऐसा वासना-रहित और संग्रह-रहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित हुआ आत्मा को निरन्तर परमेश्वर के ध्यान में लगाये।

विन्ध्याचल योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज के पूर्व के महर्षियों की भी तपोभूमि रहा है। वहाँ की अरण्यपूरित भूमि का एक-एक पावन कण देवतीर्थ के समान है। अतीत के गर्भ में झाँकने पर लगता है कि सुदूर पर्वतों के अन्तराल में स्थित शृंखलाबद्ध वनखंडों में अनेक ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न महामुनियों का तपोवन अनतिदूर अतीत में भी जीवन्त था। आज भी वहाँ पहुँचने पर उन ऋषियों की शेष स्मृतियाँ प्रभावित करती है। यदि कुछ काल वहाँ रह कर उन पावन

स्थलों का सेवन किया जाय तो अनायास ही अन्तःकरण में आध्यात्मिक ज्ञान स्फुरित होने लगता है—ऐसा अनुभव इन पंक्तियों के लेखक को भी वहाँ रहते हुए कई बार हुआ है।

अस्तु, विन्ध्याचल का क्षेत्र श्री हंसदास के लिए योग-सिद्धि का कारण बना। वहाँ विरक्त साधुवेश में रहते हुए इन्होंने गुरुतत्त्व की उपासना की और उसमें सफल हुए। वैसे तो ये पूरे आश्रम के अधिकारी बनाये गये थे, परन्तु जिस प्रकार भक्तराज भरत जी ने श्रीराम द्वारा सौंपी गयी राजगद्दी का प्रयोग न कर प्रभु की पादुका को ही रामरूप में अंगीकार किया और उसकी ही उपासना में अपने को सर्वतः समर्पित कर दिया, ठीक इसी प्रकार इन्होंने भी अपने उस आरोपित स्वामीत्व को गुरु चरणों पर रखकर एक समर्पित दरवेश रूप में योग की सभी विधि-विधानों—शम, दम, तितिक्षा और उपरति आदि का पूर्णतः पालन किया।

मठ को अपने गुरु की ही प्रतिमूर्ति मानते हुए उससे प्राप्त व्यवस्था का भोग न कर ये भूमि पर ही उठते-बैठते-सोते रहे। जो मिल जाय उसे प्रसाद रूप से ग्रहण कर लेना और रात-रात भर जंगलों में दीवानों की भाँति विचरते रहना—यही उनका क्रम रहा। वहाँ के लोग उनकी कठोर तपस्या को देखकर विस्मित होते थे।

ब्रह्म-वपु बाबा का वरदहस्त इन पर बराबर रहा करता था। वे समय-समय पर इनकी देख-भाल के लिए स्थूल और कभी सूक्ष्म शरीर से वहाँ पहुँच जाया करते थे। ऐसे रहस्यात्मक और विलक्षण रूप से बाबाजी ने विन्ध्याचल में हंस दासजी को कई बार दर्शन दिया था तथा उनके हाथ का बनाया प्रसाद भी पाया था। हमने ऐसी घटनाओं की चर्चा श्री हंसदास जी से भी सुनी है।

विंध्याचल आश्रम के प्रति श्री महाराज जी की विशेष दृष्टि सदैव रही। विंध्याचल आश्रम के दक्खिन में स्थित महात्माओं का हाईकोर्ट है, जिसकी परिक्रमा पूज्य बाबा भी करते थे। उन्होंने एक समय कहा था—"बच्चा, विन्ध्याचल सिद्ध पीठ है। मैं कई जगह रहता हूँ पर मेरा ध्यान विन्ध्याचल की ओर सदैव आकृष्ट रहता है।"

एक बार वार्त्ता-क्रम में श्री ज्ञानेश्वर जी, सम्पादक 'पावन-प्रसाद' ने मुझे बताया था कि १९६० ई० में जब वे दीक्षित हुए थे

उसके कुछ ही समय बाद पूज्य महाराज जी का निर्देश हुआ कि भक्त गण अपनी यथाशक्य सेवा विंध्याचल आश्रम पर नियमित रूप से भेजें क्योंकि वह एक अतिगौरवमय ललित आश्रम है। और पूज्य बाबा के इस आदेश का अनुपालन अनेक पुराने भक्त दीर्घकाल तक करते रहे थे जिनमें श्री ज्ञानेश्वर जी स्वयं भी सम्मिलित थे। सुधी सम्पादक जी से यह भी स्पष्ट प्रतीति मुझे मिली कि उनके जानते ऋषिवर श्री सद्गुरु महाराज ने अपने से सम्पृक्त किसी भी अन्य आश्रम के बारे में ऐसा निर्देश कभी नहीं दिया था।

श्री महाराज जी अकल्पित आयु के योगी थे। अपने अतिव्याप्त आयुष्य में उन्होंने अनेकानेक स्थलों का भ्रमण किया था परन्तु उनमें से किसी स्थान को विंध्याचल जैसा महत्त्व उन्होंने कभी नहीं दिया।

और भी कुछ तथ्य हैं जिनके उद्घाटन से विंध्याचल के प्रति श्री महाराज जी की विशेष दृष्टि की बात जानी जा सकती है। श्री महाराज जी जब सकाय थे तब यह चर्चा बहुत जोरों से चल पड़ी थी कि वे अब विन्ध्याचल में ही वास करेंगे और एतदर्थ वहाँ दो योजनाएँ बनायी गयीं। एक सरोवर-निर्माण की और दूसरी नये मंच की रचना की। दोनों ही कार्य सम्पन्न हो गये किन्तु महाराजजी मात्र एक दिन की झाँकी के लिए वहाँ पधारे थे। इसके पूर्व उन्होंने यह निर्देश दिया था कि मंच की रचना ऐसी हो कि वह कम-से-कम चौदह वर्षों तक अक्षुण्ण रहे। आश्चर्य इसका है कि उस काल इस ऋषिवाणी का तात्पर्य नहीं समझा जा सका। महाराज जी के इस निर्देश से यही संकेत होता है कि मात्र इस अवधि तक की सकाय अनुपस्थिति के बाद वे पुनः पधारने की घोषणा कर गये हैं। और प्रतीक्षा की इस अवधि तक श्री हंसदास के योग-निष्ठ शरीर की रचना परोक्ष और अलक्ष्य रूप से उसी मंच के आलम्बन से की जा रही है।

ऐसा संकेत मिलता है कि ब्रह्म-वपु श्री बाबा समय-समय पर महात्मा हंसदास जी के आध्यात्मिक मार्ग का निर्देशन करते रहे हैं। ऐसा ही श्री हंसदास जी के मुख से भी सुनने में आता है। इनके वर्तमान जीवन का स्वरूप भी पूर्व की अपेक्षा अब अधिक प्रतिभा-सिक्त होता जा रहा है—ऐसा दीखने लगा है। ये श्री महाराज जी की तरह ही मंचासीन होते हैं तथा भक्तों को प्रसाद वितरण करते हैं, पर ये अपने

स्थलों का सेवन किया जाय तो अनायास ही अन्तःकरण में आध्यात्मिक ज्ञान स्फुरित होने लगता है—ऐसा अनुभव इन पंक्तियों के लेखक को भी वहाँ रहते हुए कई बार हुआ है।

अस्तु, विन्ध्याचल का क्षेत्र श्री हंसदास के लिए योग-सिद्धि का कारण बना। वहाँ विरक्त साधुवेश में रहते हुए इन्होंने गुरुतत्त्व की उपासना की और उसमें सफल हुए। वैसे तो ये पूरे आश्रम के अधिकारी बनाये गये थे, परन्तु जिस प्रकार भक्तराज भरत जी ने श्रीराम द्वारा सौंपी गयी राजगद्दी का प्रयोग न कर प्रभु की पादुका को ही रामरूप में अंगीकार किया और उसकी ही उपासना में अपने को सर्वतः समर्पित कर दिया, ठीक इसी प्रकार इन्होंने भी अपने उस आरोपित स्वामीत्व को गुरु चरणों पर रखकर एक समर्पित दरवेश रूप में योग की सभी विधि-विधानों—शम, दम, तितिक्षा और उपरति आदि का पूर्णतः पालन किया।

मठ को अपने गुरु की ही प्रतिमूर्ति मानते हुए उससे प्राप्त व्यवस्था का भोग न कर ये भूमि पर ही उठते-बैठते-सोते रहे। जो मिल जाय उसे प्रसाद रूप से ग्रहण कर लेना और रात-रात भर जंगलों में दीवानों की भाँति विचरते रहना—यही उनका क्रम रहा। वहाँ के लोग उनकी कठोर तपस्या को देखकर विस्मित होते थे।

ब्रह्म-वपु बाबा का वरदहस्त इन पर बराबर रहा करता था। वे समय-समय पर इनकी देख-भाल के लिए स्थूल और कभी सूक्ष्म शरीर से वहाँ पहुँच जाया करते थे। ऐसे रहस्यात्मक और विलक्षण रूप से बाबाजी ने विन्ध्याचल में हंस दासजी को कई बार दर्शन दिया था तथा उनके हाथ का बनाया प्रसाद भी पाया था। हमने ऐसी घटनाओं की चर्चा श्री हंसदास जी से भी सुनी है।

विंध्याचल आश्रम के प्रति श्री महाराज जी की विशेष दृष्टि सदैव रही। विंध्याचल आश्रम के दक्खिन में स्थित महात्माओं का हाईकोर्ट है, जिसकी परिक्रमा पूज्य बाबा भी करते थे। उन्होंने एक समय कहा था—"बच्चा, विन्ध्याचल सिद्ध पीठ है। मैं कई जगह रहता हूँ पर मेरा ध्यान विन्ध्याचल की ओर सदैव आकृष्ट रहता है।"

एक बार वार्त्ता-क्रम में श्री ज्ञानेश्वर जी, सम्पादक 'पावन-प्रसाद' ने मुझे बताया था कि १९६० ई० में जब वे दीक्षित हुए थे

उसके कुछ ही समय बाद पूज्य महाराज जी का निर्देश हुआ कि भक्त गण अपनी यथाशक्य सेवा विंध्याचल आश्रम पर नियमित रूप से भेजें क्योंकि वह एक अतिगौरवमय ललित आश्रम है। और पूज्य बाबा के इस आदेश का अनुपालन अनेक पुराने भक्त दीर्घकाल तक करते रहे थे जिनमें श्री ज्ञानेश्वर जी स्वयं भी सम्मिलित थे। सुधी सम्पादक जी से यह भी स्पष्ट प्रतीति मुझे मिली कि उनके जानते ऋषिवर श्री सद्-गुरु महाराज ने अपने से सम्पृक्त किसी भी अन्य आश्रम के बारे में ऐसा निर्देश कभी नहीं दिया था।

श्री महाराज जी अकल्पित आयु के योगी थे। अपने अतिव्याप्त आयुष्य में उन्होंने अनेकानेक स्थलों का भ्रमण किया था परन्तु उनमें से किसी स्थान को विंध्याचल जैसा महत्त्व उन्होंने कभी नहीं दिया।

और भी कुछ तथ्य हैं जिनके उद्‌घाटन से विंध्याचल के प्रति श्री महाराज जी की विशेष दृष्टि की बात जानी जा सकती है। श्री महाराज जी जब सकाय थे तब यह चर्चा बहुत जोरों से चल पड़ी थी कि वे अब विन्ध्याचल में ही वास करेंगे और एतदर्थ वहाँ दो योजनाएँ बनायी गयीं। एक सरोवर-निर्माण की और दूसरी नये मंच की रचना की। दोनों ही कार्य सम्पन्न हो गये किन्तु महाराजजी मात्र एक दिन की झाँकी के लिए वहाँ पधारे थे। इसके पूर्व उन्होंने यह निर्देश दिया था कि मंच की रचना ऐसी हो कि वह कम-से-कम चौदह वर्षों तक अक्षुण्ण रहे। आश्चर्य इसका है कि उस काल इस ऋषिवाणी का तात्पर्य नहीं समझा जा सका। महाराज जी के इस निर्देश से यही संकेत होता है कि मात्र इस अवधि तक की सकाय अनुपस्थिति के बाद वे पुनः पधारने की घोषणा कर गये हैं। और प्रतीक्षा की इस अवधि तक श्री हंसदास के योग-निष्ठ शरीर की रचना परोक्ष और अलक्ष्य रूप से उसी मंच के आलम्बन से की जा रही है।

ऐसा संकेत मिलता है कि ब्रह्म-वपु श्री बाबा समय-समय पर महात्मा हंसदास जी के आध्यात्मिक मार्ग का निर्देशन करते रहे हैं। ऐसा ही श्री हंसदास जी के मुख से भी सुनने में आता है। इनके वर्तमान जीवन का स्वरूप भी पूर्व की अपेक्षा अब अधिक प्रतिभा-सिक्त होता जा रहा है—ऐसा दीखने लगा है। ये श्री महाराज जी की तरह ही मंचासीन होते हैं तथा भक्तों को प्रसाद वितरण करते हैं, पर ये अपने

को मंच का अधिकारी नहीं पुजारी ही कहते हैं। महर्षि के गुप्त आदेशों को तो वे ही जान सकते हैं—हम तो केवल दर्शन में आगत भक्तों की भावनाओं को वाणी दे रहे हैं। आज सबसे बड़ी विलक्षण और आश्चर्य की बात यह देखी जा रही है कि ये मंच की सेवा का भार सँभालते हुए भी आध्यात्मिक भावनाओं से भरी निगूढ़ सूक्तियों की रचना कर रहे हैं। और यह पूछे जाने पर कि आप तो निगूढ़ शास्त्रों के जानकार नहीं और तदनुकूल ऊँची शिक्षा से रहित हैं तब आपसे ऐसी रचनाएँ कैसे हो रही हैं, तो वे उत्तर देते हैं कि मुझसे किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा कहलवाया-लिखवाया जा रहा है। स्यात् इन अधिकांश सूक्ति-सूत्रों में ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा की देवोत्तम महिमा की स्तुतिपरक व्याख्या ही नमन के रूप में हैं। इष्टदेव ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा के अवतारी रूप के साथ-साथ विष्णु, महेश तथा हनुमान के रूपों का स्तवन भी इनमें है जो उनके मुख से श्रवण करने पर हृदय को भाव-विभोर कर देता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि कोई गुप्त शक्ति युग-सन्धि के अन्धकार को दूर करने के लिए इनके हृदयाकाश में उदित-प्रकाशित हो रही है। जिस तरह हनुमान जी की कृपा के कारण संत तुलसीदास श्रीरामचरित मानस की रचना कर गये, श्री गोविन्दपाद की शक्ति ने आचार्य शंकर को जाग्रत किया, स्वामी रामकृष्ण परमहंस की दिव्य चेतना ने विवेकानन्द को आलोक दिया, और सूक्ष्मकायाधारी श्री सर्वेश्वरानन्द (तिब्बत) ने श्रीराम शर्मा आचार्य जी को दिव्य-ज्ञान का उपहार दिया, संभव है उसी प्रकार श्री देवराहा बाबा जी महाराज भी अपने निर्दिष्ट शिष्य संत हंसदास को अपने दिव्य-ज्ञान से ही कृतार्थ कर रहे हों!

* ॐ नमो भगवते देवराहाय *



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', अगस्त १९९२]

महात्मा हंसदासजी का 'ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा अध्यात्म तत्त्वदर्शन'

प्रस्तुति : प्रो० माधव अनन्त फड़के

[" विगत चैत रामनवमी के समय योगिराज देवराहा बाबा जी के आश्रम मड़ुआरी कलाँ, विन्ध्याचल जाने का सौभाग्य मुझे हुआ था। दो दिन आश्रम पर ठहरे तथा इस बीच श्री हंसदासजी महाराज का दर्शन मंच पर हुआ। उन दिनों भक्तों का कोई विशेष आवागमन नहीं था, जिस कारण महाराजजी के उपदेश तथा 'ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा अध्यात्म तत्त्वदर्शन' सुनने का सौभाग्य हुआ। महाराजजी ने हमलोगों को ५० श्लोक दिये थे, और उनका साधारण हिन्दी व बंगला में भावार्थ लिख कर हिन्दी का सम्पादक, 'पावन प्रसाद' को भेजने का आदेश था और बंगला का कलकत्ते के किसी पते पर। श्री हंसदास जी महाराज के आदेशानुसार हम श्लोकों का गोरखपुर सेंट एन्ड्रूज कॉलेज के संस्कृत विभागाध्यक्ष श्री माधव अनन्त फड़के जी से हिन्दी भावानुवाद करवा कर भेज रहे हैं—'पावन प्रसाद' मासिक के लिए।"

— डा० सन्तोष कुमार सेन गुप्ता, अलीनगर, गोरखपुर]

प्रस्तोता का आत्म-निवेदन

प्रस्तुत श्लोक समूह 'ब्रह्मर्षि श्री योगिराज देवराहा बाबा अध्यात्म तत्त्वदर्शन' से आकलित किये गये हैं। ये श्लोक अथवा पंक्तियाँ संस्कृत भाषा में निबद्ध हैं एवं पूर्णतया अध्यात्मतत्त्व से अनुस्यूत हैं—अतः स्वतः आलोकित हैं। ये पंक्तियाँ आर्ष हैं, अतः संस्कृत भाषा या व्याकरण के नियमों से अनियंत्रित हैं। परिणामतः मैंने संस्कृत मूल पाठ को यथास्थिति कायम रखा है, उसमें व्याकरण की दृष्टि से कोई संशोधन नहीं किया है। इन पंक्तियों को हिन्दी अथवा अन्य किसी भाषा में रूपान्तरित करना दुष्कर कार्य है, क्योंकि उनका भावार्थ या गूढ़ार्थ समझना भी सरल नहीं है। मेरी बुद्धि अल्पविषयग्राही है अतः मेरा प्रयत्न वैसा ही है जैसा महाकवि कालिदास ने लिखा है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः, क्व चाल्पविषयामतिः।
तितीर्षुः दुस्तरं मोहाद् उडुपेनास्मि सागरम्॥

—रघुवंश/२

प्रस्तुत संकलन की पंक्तियाँ गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों से संपुटित एवं भक्तिरस से अभिसिञ्चित हैं। श्लोक की प्रत्येक पंक्ति, 'सर्वम् प्रियम् नारायणः' इन शब्दों में पर्यवसित होती है, अर्थात् जो कुछ भी दृश्य या अदृश्य है वह सब नारायण ही है। वेदान्त दर्शन के सुप्रसिद्ध वाक्य 'सर्वम् खलु इदं ब्रह्म' का सर्वत्र स्वगान होता है।

ये पंक्तियाँ शुद्ध भाव से पठित होने पर तल्लीन अवस्था में मानव की हृत्तंत्री को पूर्णतया झंकृत करने में सर्वतोभावेन सक्षम हैं। मेरी अल्प बुद्धि ने जो किंचित् भाव ग्रहण किया है उसी को लिपिबद्ध करने का मैंने यहाँ प्रयास किया है। सुज्ञ पाठक ही इसका निर्णय करेंगे कि मेरा प्रयास कितना सार्थक है। मेरी प्रबल इच्छा होने के बावजूद मैं परमहंस श्री देवराहा बाबा जी के पार्थिव शरीर का दर्शन न कर सका, किन्तु यह मेरा सौभाग्य है कि मैं उनके अध्यात्म-प्रधान गूढ़ भावों को भाषा में लिपिबद्ध कर सका।

बाबा के परम भक्त एवं गोरखपुर जनपद के वयोवृद्ध चिकित्सक डॉ० एस० के० सेनगुप्ता जी ने मुझसे आग्रह किया कि मैं यह कार्य करूँ। उनके असीम स्नेह एवं अहैतुकी कृपा से ही मैंने इस कार्य को करने का दुःसाहस किया है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि परम पिता परमेश्वर मेरी त्रुटियों को क्षमा करेंगे एवं पूज्य बाबाजी का शुभ आशीर्वाद मुझे प्राप्त होगा।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः॥

इति शम्। —माधव अनन्त फड़के

'ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबा अध्यात्म-तत्त्वदर्शन'

उपदेष्टा : श्री देवराहा हंस बाबाजी महाराज

(१) ज्ञानम् प्रेमस्य नामम् पूर्ण बृत्तान्ते नामम् एकम् ज्ञानम् अनुस्बन्ते सर्वत्र रूपम् नामम् एकम् नारायणः।

प्रेम का ही नाम ज्ञान है; पूर्णज्ञ होने पर एक ही ज्ञान रह जाता है जो सभी रूपों में अथवा पदार्थों में अनुस्यूत है (भरा हुआ है); वह एक नारायण है अर्थात् ईश्वर का ही रूप है।

(२) साधनम् प्रेमस्य रूपम् अनुप्रियन्ते सतत् ज्ञानम् एकं रूपम् सत्य ज्ञानं प्रिय रूपम् नारायणः।

प्रेम के रूप का साधन जो प्रिय होता है वह अखण्ड ज्ञान है, सत्य ज्ञान है, प्रिय रूप है—वह नारायण है।

(३) अभ्युदयन्ते सर्वत्र ज्ञानम् नामम् प्रेमस्य नामम् प्रिय ज्ञानम् नारायणः।

वह ज्ञान सर्वत्र स्थिरत्व को प्रदान करता है, वही प्रेम (भगवत् विषय में तल्लीनता) प्रिय ज्ञान का नाम है; वही नारायण है।

(४) सत्यम् ज्ञानम् एकम् प्रियरूपम् प्रिदयन्ते सर्वत्र रूपम् नारायणः।

ज्ञान सत्य है—वही एक प्रिय रूप की प्रेरणा देता है—वही सर्वत्र नारायण का ही रूप है।

(५) एकम् रूपम् प्रेमस्य ज्ञानम् अनुपादयन्ते सर्वत्र ज्ञानम् अनुकम्पया दीर्घस्यन्ते ज्ञानम् प्रियएकम् नारायणः।

प्रेम का ज्ञान ही एक रूप है; ईश्वर की कृपा से उसी का ज्ञान अनुत्पादित होता है, विस्तृत होता है। ज्ञान प्रिय है, एक रूप है—वही नारायण है।

(६) अनुश्रियम् ज्ञानम् अनुपादयन्ते ज्ञानम् प्रेमस्य ज्ञानम् नान् शोचयन्ते दिव्य रूपम् ज्ञानम् एकम् नारायणः।

वह ज्ञान आध्यात्मिक ऐश्वर्य का अनुगामी है। वही दिव्य ज्ञान प्रेम का स्वरूप है। उसी से संपूर्ण ज्ञान उत्पादित होता है। वह ज्ञान एक एवं दिव्य रूप है जो नारायण है।

(७) अनुज्ञेय शास्त्रोक्त ज्ञानम् अनुप्रियम् प्रेमस्य नामम् पूर्णं तस्य ज्ञानम् अनुपाद्यम् शास्त्र-ज्ञानम् प्रिय एकं नारायणः।

शास्त्रोक्त ज्ञान पश्चात् ज्ञेय है—अर्थात् पूर्व ज्ञेय है ईश्वर या ब्रह्म ज्ञान, उसी का ज्ञान पूर्ण है, प्रिय है, शास्त्र ज्ञान अनुत्पाद्य है, वह सब एक नारायण ही है।

(८) नान्यो रूपम् प्रेमस्य ज्ञानम् अनुप्रियम् सत्यम् ज्ञानम् अनन्यो प्रेमस्य रूपम् ज्ञानम् प्रियो ज्ञानम् प्रेमस्य रूपम् नामम् नारायणः।

प्रेम ज्ञान का अन्य रूप नहीं है, सत्य ज्ञान बाद में प्रिय होता है। प्रेम का रूप ही ज्ञान है जो अन्य नहीं है, वह नारायण है।

(९) नाम्यो वेदोक्त ज्ञानम् अनुप्रेमस्य रूपम् विपलस्य नामम् एकम् प्रिय नारायणः।

वेदोक्त ज्ञान अलग या दूसरा नहीं है। विचार करने पर स्पष्ट है कि वह प्रेम का ही रूप है, वह प्रेम एवं विशुद्ध ब्रह्म का हो रूप है, जो मात्र नारायण ही है।

(१०) अनुवेष्टव्यव् ज्ञानम् प्रेमस्य नामम् प्रियनामम् एकम् प्रिय नारायणः।

प्रेम के नाम के ज्ञान का, प्रिय नाम का अन्वेषण करना चाहिए — वही एक प्रिय नारायण है।

(११) सन्तुष्म् ज्ञानम् एकम् अनन्यो गत्वा प्रेमस्य ज्ञानम् अन्योरूपम् एकम ज्ञानम नारायणः।

वही एक ज्ञान संतुष्ट है अर्थात् संतोष देनेवाला है। उसी के पास जाकर प्रेम का ज्ञान (स्वरूप बोध) संभव है। वही एकमेव रूप और ज्ञान है, जो नारायण है।

(१२) अन्तर्गत्वा प्रेमस्य ज्ञानम् अनुपाद्धन्ते नामन् सर्वत्र रूपम् एकम् ज्ञानम् आनन्दरूपम प्रेमस्य रूपम् नारायणः।

आत्मस्थ या स्थितप्रज्ञ होकर प्रेम का ज्ञान अनूपादित है, वही एक ज्ञान है जिसका रूप सर्वत्र है, आनन्द रूप एवं प्रेम-स्वरूप है जो नारायण है।

(१३) अन्तर्वेष्टि ज्ञेयम् नामम ज्ञानम् प्रेमस्य क्रिच्यते सर्वत्र विद्धते अनुपाद्धन्ते प्रेमस्य नामम् एकम् प्रिय नारायणः।

अन्तर्दृष्टि से अथवा अन्तर्मुख होने पर वही ज्ञान प्रेम-स्वरूप है, वही सर्वत्र विद्यमान है, वही अनुत्पादित होता है, वही प्रेम का नाम है, वही एक प्रिय नारायण है।

(१४) अनुशीलस्य ज्ञानम अनुबिक्तम् प्रोक्तस्याम् ध्यानम् अन्तर्गत्वा प्रेमस्य ज्ञानम नारायणः।

अनुशीलन करने वाले का ज्ञान अर्थात् साधक का ज्ञान अनूक्त होता है (अनुभवैक गम्य है)। वक्ता को आत्मस्थ होने पर ध्यान की अवस्था में प्रेम ज्ञान होता है—वह नारायण है।

(१५) अनुपृष्टियम् ध्यानम् प्रेमस्य अनुरक्तम सान्निध्यम् एकम दृष्टा नारायणः।

साधक को ध्यान में प्रविष्ट होना चाहिए। अनुरक्त होकर प्रेम का सान्निध्य लाभ करना चाहिए। उस ज्ञान का द्रष्टा नारायण है।

(१६) सकोचस्य प्रियवक्ता ज्ञानम प्रिय ज्ञानम एकम प्रिय ज्ञानम् एवम् अनुशोचस्य ज्ञानम् एकम् प्रिय नारायणः।

चित्तवृत्तियों का संकोच होने पर जिस एक प्रिय ज्ञान की अनुभूति होती है, उसका प्रिम वक्ता भी ईश्वर ही है। पश्चाताप करने वाले का ज्ञान एक प्रिय नारायण है।

(१७) ध्यानम् अनुवेज्ञम् साधनम् प्रिय मियन्ते सर्वत्र ज्ञानम् अनुपाद्यन्ते सर्वत्र रूपम् एकम् ज्ञानम् नारायणः।

साधन के पश्चात् ज्ञान वेद्य है। प्रिय एवं प्रिय के अन्त में सर्वत्र ज्ञान ही प्रतिपादित होता है, सर्वत्र ज्ञान का ही एक रूप है—वह है नारायण।

(१८) साधनम् ज्ञानम् अनुप्रेस्यम वाक्यम् सम्पुधष्य ज्ञानम् अनुवेयम् साधनमू एकं प्रिय नारायणः।

ज्ञान साधन है, प्रम के पश्चात् का वाक्य ज्ञान से सम्पुटित है। साधन बाद में जानना है --वह एक प्रिय नारायण ही है।

(१९) अनुपृस्यन्ते ज्ञानम् रूपम् प्रियन्ते सर्वत्र ज्ञानम् एकम् प्रिय नारायणः।

ज्ञान का एक प्रिय रूप है जिसे पूछा जाता है। सर्वत्र ज्ञान नारायण का ही एक प्रिय रूप है।

(२०) एकम् अनुपाद्यन्ते साधनम् प्रेमस्य रूपम् ज्ञानम् रूपम् अनुवेदस्य ज्ञानम् प्रिय वक्ता नान्यम् साधनम् एकम् प्रिय नारायणः।

एक ही साधन को उपपादित किया जाता है। प्रेम का रूप ज्ञान का ही रूप है; पश्चात् होने वाले ज्ञान का प्रिय वक्ता प्रिय नारायण है—अन्य साधन नहीं है।

(२१) आनन्दस्य दृष्टवा किम् किम् रूपम् ज्ञानम् अनुसोंचस्य ज्ञानम् एकम् प्रिय नारायणः।

आनन्द को देखकर जो कुछ भी रूप है वह प्रेम का रूप है। पश्चात्ताप करने वाले का ज्ञान भी एक प्रिय नारायण है।

(२२) अनन्यो गत्वा प्रेमस्य वाक्यम् प्रिय ज्ञानम् एकम् प्रिय नारायणः।

किसी अन्य के पास न जाकर प्रेम का वाक्य प्रिय ज्ञान है, प्रेम के पश्चात् होने वाला ज्ञान भी नारायण है।

(२३) अनुरुद्धम् साधनम् ज्ञानम् एकम् प्रिय रूपम् नानय् अनन्यो वेदस्य

साधन अनुरुद्ध हो जाता है, एक प्रिय रूप का ज्ञान होता है। वेद का ज्ञान अन्य नहीं है। वह एक नारायण है।

(२४) साधनम् अनुज्ञेय विज्ञम् रूपम अन्तर्भूत्वा अप्रियदेयन्ते ज्ञानम् एकम् प्रिय नारायणः।

विज्ञ रूप का साधन अनुज्ञेय है—अन्तर्भूत होकर ज्ञान तिरोभूत होता है, वही एक प्रिय नारायण है।

(२५) सान्द्रस्य ज्ञानम् प्रेमस्य नामम् अनुप्रियम् सर्वत्र रूपम् एकम् प्रिय नारायणः।

सान्द्र का रूप प्रेम का ज्ञान है, पश्चात् सर्वत्र एक रूप प्रिय होता है। वह एक नारायण है।

(२६) अनुप्रियदेयन्ते ज्ञानम् अनन्यविज्ञम् साधनम् प्रियवक्ता स्वतन्त्र ज्ञानम् एकम् प्रिय नारायणः।

पश्चात् ज्ञान छूट जाता है, साधन दूसरे के द्वारा जानने योग्य नहीं है, ज्ञान स्वतंत्र है—उसका एक प्रिय वक्ता नारायण है।

(२७) अनुक्रिडन्ते साधनम् प्रिय नामम् एकम् ज्ञानम् रूपम् ज्ञानम् अनुविज्ञम् रूपम् ज्ञानम् अनुदेयम् रूपम् एकम् प्रिय नारायणः।

प्रिय नाम ही साधन है, उसके लिए प्रयास होता है। ज्ञान एक है, वही ज्ञान का रूप है। ज्ञान रूप को जानना चाहिए, उसी को बतलाना या देना चाहिए और वही एक प्रिय नारायण है।

(२८) अनुसंशये ज्ञानम् विद्यते सततः रूपम् अनुपाद्यम् अनुश्रोत्वा ध्यानम् अनु-विद्यते सतत रूपम् एकम् प्रिय नारायणः।

संशय होने के पश्चात् जो ज्ञान है, वह उस सतत रूप का ज्ञान है, वह अनुपाद्य ज्ञान है। ध्यान को सुनकर या समझकर वही निरन्तर एक प्रिय नारायण का रूप वर्तमान रहता है।

(२९) साधनम् विद्यते सतत रूपम् ज्ञानम् अनुपाद्यन्ते शास्त्र ज्ञानम् एकं प्रिय नारायणः।

सतत रूप का ज्ञान ही साधन है, शास्त्र ज्ञान उसी का प्रतिपादन करता है। वह एक प्रिय नारायण ही है।

(३०) आनन्द ज्ञानम् अनुप्रिय रूपम् शास्त्रोक्त ज्ञानम् प्रिय रूपं पूर्वोक्त ज्ञानं अनुसाधनं प्रियवक्ता एकम् प्रिय नारायणः।

वही प्रिय रूप आनन्द का ज्ञान कराता है, शास्त्रोक्त ज्ञान उसी प्रिय रूप का ज्ञान है, पूर्वोक्त ज्ञान उसका साधन है, उसका प्रिय वक्ता एक नारायण ही है।

(३१) अनुश्रुतियन्ते साधनम् प्रिय द्रष्टा ज्ञानम् प्रियरूपम् नामद् ज्ञानम् अनुवेज्ञम् साधनम् एकम् प्रिय नारायणः।

उस साधना का पश्चात् श्रवण होता है, उस प्रिय ज्ञान प्रिय रूप नाम, एवं ज्ञान का प्रिय द्रष्टा वही है। साधक तो बाद में जान जाता है कि वह एक प्रिय नारायण ही है।

(३२) आनन्द ज्ञानम् अनुप्रियम् एकम् रूपम् प्रेमस्थ सदर्थे तथस्य ज्ञानम् प्रिय नारायणः।

आनन्द का ज्ञान उसी एक प्रियरूप का ज्ञान है उसका ज्ञान प्रेम के तदर्थ में हैं, अनुमान हो चाहे अन्य कोई प्रमाण हो उसी एक प्रिय नारायण का ही ज्ञान होता है।

(३३) अन्तर्गत्वा प्रेमस्य ज्ञानम् अनुप्रिय शास्त्र वेदोक्त ज्ञानं अनुपाचयन्ते सर्वत्र रूपम् एकम् प्रिय नारायण।

अन्तर्मुख होने पर जिस ज्ञान को अनुभूति होती है वह प्रेम का ही ज्ञान है; वेदशास्त्र का ज्ञान भी उसी का अनुसरण करता है। सर्वत्र उसी रूप का अनुपादन होता है और वह एक प्रिय नारायण ही है।

(३४) आनन्द रूपम् गच्छते सर्वत्र ज्ञानम् प्रिय वदनो शास्त्र ज्ञानम् एकं प्रिय नारायण।

परमात्मा के आनन्द-स्वरूप को प्राप्त कर सर्वत्र उस प्रिय के ज्ञान को ही बतलाया जाता है, जो शास्त्र ज्ञान है और वही एक प्रिय नारायण है।

(३५) अनुरुधम् शास्त्रज्ञानम् प्रिय वक्ता संतुष्ट ज्ञानम् अनुवेज्ञम् राकम् प्रिय नारायण ।

शास्त्र ज्ञान अवरोध रहित है, साधक बाद में यह समझता है। संतोष देने वाले ज्ञान का प्रिय वक्ता वही एक प्रिय नारायण है।

(३६) आनन्दरूपम् सर्वो ज्ञाने रूपम् गच्छे सर्वत्र रूपम ज्ञानम् एकम् प्रिय नारायणः ।

सभी नामों का रूप आनन्द है, उस रूप को प्राप्त करना है। सर्वत्र उसी रूप का ज्ञान होता है—वह एक प्रिय नारायण है।

(३७) आनन्द प्रेमस्य ज्ञानम् अऽपाद्यन्ते साधनम् एकम् प्रेमस्य नामम प्रिय नारायणः ।

प्रेम का ज्ञान आनन्द है, साधन उसी को प्रतिपादित करते हैं। प्रेम का नाम एक है और वह प्रिय नारायण है।

(३८) आनन्द रूपम् प्रेमम् सत्यम् नामम् एकम् ज्ञनम् प्रियरूपम नामम् ज्ञानम् नारायणः ।

आनन्द का रूप प्रेम है, नाम सत्य है, प्रिय रूप का ज्ञान ही एक-मात्र ज्ञान है और वह ज्ञान ही नारायण है।

(३९) आनन्द ज्ञानम् पूर्ण सत्य ज्ञानम् एकम् प्रेमम् नामम् पूर्ण सत्यं ज्ञानम् पूर्णरूपम् ज्ञानं सनुसाधनंम् ज्ञानम् एकम् रूपम् नारायणः ।

आनन्द का ज्ञान पूर्ण सत्य ज्ञान है, वही एक प्रेम का नाम है, वह सत्य ज्ञान है, पूर्ण रूप है, साधन के द्वारा वह ज्ञान होता है, वह एक ज्ञान रूप नारायण है।

(४०) सत्य नामम् पूर्णरूपम् ज्ञानम् प्रेमस्य ज्ञानम् रूपम् प्रेमस्य ज्ञानं नारायणः ।

पूर्ण रूप का ज्ञान ही सत्य ज्ञान है और प्रेम का ज्ञान ही नारायण है।



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', अगस्त और सितम्बर, १९९२]

पूज्य बाबा के विंध्याचल स्वर्गाश्रम की दिव्य अनुभूतियाँ

श्री सुरेश प्रसाद

मै गत ६ मई (१९९२) को सपरिवार परम पूज्य गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी महाराज के विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम पर गया था। वहाँ श्री गुरु महाराज के दिव्य विशाल मंच पर आसीन पूज्य संत श्री हंसदास जी महाराज का पावन दर्शन प्राप्त हुआ। उसके पूर्व १९९१ की गुरु पूर्णिमा के अवसर पर वृंदावन आश्रम से वापस लौटते वक्त मैंने हंसदास जी महाराज का प्रथम दर्शन किया था। दर्शन पाकर मैं तो अभिभूत-सा हो गया था। प्रथम दर्शन में ही मुझे ऐसी अनुभूति हुई कि संत हंसदास जी परमगुरु योगिराज महाराज की ही प्रति-मूर्ति हैं--इनकी रूप-रेखा, भाव-भंगिमा गुरु महाराजजी जैसी ही है। भक्तों के प्रति उनके वरद हाथ उसी प्रकार उठते हैं एवं उनके मुख से आशीर्वचनों के शब्द भी ध्वनि में निकलते हैं। मैं मंच के नीचे उनके सान्निध्य में जितनी देर तक बैठा रहा, मुझे उनमें सद्गुरु महराज ही नजर आते रहे। मुझे यह भी बहुधा लगा कि मंच के समीप विराजमान भगवान कृष्ण एवं राधाजी तथा हनुमानजी की मूर्तियों से वे साक्षात् वार्त्तालाप करते रहते हैं। कभी-कभी वे बड़े महाराजजी से भी साक्षात् बात करते प्रतीत हुए। बड़े महाराज जी के महाप्रयाण के बाद अपना शरीर त्यागने हेतु हिमालय की गंगोत्री की आपने जो यात्रा की थी उसे जानकर तो मैं अवाक् रह गया था।

इस बार दर्शन के करीब १५ दिन पहले मैं एकाएक असाध्य पैंक्रिटाइटिस रोग से ग्रसित हो गया। मेरे प्राण संकट में पड़ गए। महाराजजी की असीम दया से मेरे प्राण लौटे। लेकिन मैं बहुत कमजोर पड़ गया था। उस स्थिति में मुझे स्वर्गाश्रम के इन महाराज जी याद आयी तथा मैं विन्ध्याचल पहुँच गया। और उसी संकट की दशा में ठीक दोपहर की चिलचिलाती तीखी धूप में मैं महात्मा हंसदासजी की सन्निधि में भी हाजिर हो गया। कुछ मिनटों बाद महाराज जी का दर्शन हुआ। और तब से मैं घंटों वहीं बैठा रहा। इस बीच उन्होंने कुछ उपदेश दिये और फिर कागज-कलम हाथ में देकर अपने मुखारविन्द

से संस्कृत और हिन्दी के कुछ स्तोत्र लिखवाने लगे। उस वक्त मेरे शरीर में एक अलौकिक शक्ति का संचार हो रहा था। उस वेला मुझे न तो अपनी बीमारी का बोध रहा, न ही अपनी शक्तिहीनता का। एक दिव्य शक्ति मेरे शरीर में काम कर रही थी, जो अवर्णनीय है। बड़े महाराजजी की तरह ही इनकी अलौकिक लीला थी।

साथ-साथ विन्ध्याचल आश्रम की गोरक्षिणी के प्रभारी संत श्री स्वामी जगन्नाथदास जी की भी बड़ी कृपा मुझ पर रही। उन्होंने भी महात्मा हंसदासजी द्वारा लिखवाए स्तोत्रों का संकलन मुझे दिया।

महात्मा हंसदास महाराज के मुखारविन्द से निकले संस्कृत के कुछ स्तोत्र निम्नांकित है। हिन्दी के पद भी हम अलग से देने की चेष्टा करेंगे।

ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा अमृतोपदेश निदर्शन सूत्र
(श्री बाबा हंसदास जी महाराज के यथाश्रुत-यथागृहीत २५ सूत्र)

१. प्रेमस्य ज्ञान पूर्ण रूप अनुविद्यते सर्वत्र ज्ञानं एकं ध्यानं नारायणम्।

२. एकं प्रेमस्य रूपं अनुतुष्टये सर्वत्र रूपं प्रेमस्य वाक्यं नारायणम्।

३. एकं ज्ञानं अनुतुष्टये सर्वत्र रूपं प्रेमस्य ज्ञानं प्रिय नारायणम्।

४. प्रेमस्य रूपं प्रियं तस्य ज्ञानं एकं ध्यानं पूर्णरूपं अनुध्यन्ते ध्यानं एकं प्रेमं नारायणम्।

५. आनन्द रूपं ज्ञामं सर्वं रूपं एकं नारायणम्।

६. पूर्णं विद्यते नामं प्रिय ज्ञानं अनुध्यन्ते ध्यानं पूर्णं रूपं अनुक्त्यिन्ते सर्वत्र एकं नारायणम्।

७. आनन्द ज्ञानं प्रेमस्य रूपं सर्वत्र प्रेमस्य ध्यानं प्रेमस्य एकं पूर्णं विद्यते नारायणम्।

८. आनन्द ज्ञानं सर्वं रूपं अनुतुष्टये सर्वं प्रेमस्य रूपं अनुप्रियन्ते सर्वत्र नामं एकं नामं नारायणम्।

९. पूर्णं ज्ञानं अनुतुष्टये एकं ज्ञानं प्रिय वक्ता संशोधनस्य पूर्णं ज्ञानं अनुप्रियं एकं ध्यानं नारायणम्।

१०. आनन्द प्रेमस्य वाक्यं पूर्णं रूपं एकं अनुवेदस्य अति ज्ञानं पूर्णं एकं नारायणम्।

११. प्रेमस्य ज्ञानं अनुपुष्टये सर्वत्र रूपं एकं ज्ञानं पूर्णरूपं ध्यानं प्रिय नारायणम् ।

१२. सर्वत्र रूपं ज्ञानं पूर्णं रूपं ज्ञानं अनुद्ययन्ते ध्यानं पूर्णं विद्यते सतत रूपं नारायणम् ।

१३. एकं प्रिय साधनं सर्वोच्च ज्ञानं प्रेमं रूपं नामं प्रिय एकं नारायणम् ।

१४. आनन्द ज्ञानं सर्वरूपं अनुक्रियन्ते ज्ञानं प्रेमं रूपं अनुपाद्यं एकं रूपं पूर्णं नारायणम् ।

१५. ध्यानं पूर्णं वर्तते सतत रूपं अनुध्यन्ते एकं प्रेमं रूपं ज्ञानं सर्वं प्रेमं ज्ञानं प्रियं नारायणम् ।

१६. एकं प्रेमं पूर्णं रूपं तिष्ठते सर्वत्र रूपं ज्ञानं अनुचेष्टस्य ज्ञानं पूर्णं विद्यते एकं रूपं नारायणम् ।

१७. सत्यं ध्यानं पूर्णं अनुक्रियन्ते पूर्णं प्रेमस्य रूपं अनुपम प्रेमं एकं रूपं नारायणम् ।

१८. पूर्णं ज्ञानं पूर्णं रूपं अनुध्यन्ते प्रेमं रूपं अनुतुष्टये एकं रूपं सर्वत्र प्रेमं नारायणम् ।

१९ एकं ध्यानं पूर्णं संतुष्टस्य ज्ञानं अनुप्रियं वाक्यं सर्वत्र ध्यानं प्रिय रूपं नारायणम् ।

२०. आनन्द ज्ञानं प्रेमस्य वाक्यं पूर्णं तुष्टये एकं रूपं अनुध्यन्ते सर्वत्र ज्ञानं नारायणम् ।

२१. आनन्द रूपं अनुतुष्टये वाक्यं पूर्णं रूपं ज्ञानं एकं प्रेमं रूपं नामं प्रिय ध्यानं नारायणम् ।

२२. सर्वत्र प्रेमं पूर्णं एकं प्रेमस्य ज्ञानं अनुक्रियन्ते सर्वत्र रूपं विद्यते एकं ज्ञानं नारायणम् ।

२३. पूर्णं रूपं नामं प्रिय वाक्यं संतुष्टं ध्यानं प्रिय नामं नारायणम् ।

२४. एकं ध्यानं अनुचेष्टस्य ज्ञानं प्रिय रूपं नामं सत्य ज्ञानं प्रिय रूपं नारायणम् ।

२५. अनुप्रियं सत्यं साधनं प्रिय रूपं प्रेमस्य नामं सर्वं तिष्ठते एकं नामं नारायणम् ।

ॐ ॐ ॐ

['पावन प्रसाद', जुलाई विशेषांक, १९९२]

विंध्याचल के महात्मा हंसदासजी : 'श्री राधाकृष्ण लीलामृतम्'

श्री शशि शेखर

विश्वास जागा है, सम्मान जागा है, शब्द जागा है, भाव जागा है
पर चेतना हुई है लुप्त कहकर प्रियवर जागा है, मेरा प्रियतम जागा है।

इस वर्ष गुरु पूर्णिमा के अवसर पर श्री हंसदासजी महाराज के आश्रम पर मैं विंध्याचल गया था। उपदेश क्रम में महाराज हंसबाबाजी द्वारा उपदिष्ट रासलीला वर्णन इतना स्पष्ट और इतना मनोरम था कि मैं उन लीलाओं का श्रवण-पान कर मुग्ध हो गया। पूज्य बाबा ने बताया कि यह तो सिर्फ संक्षिप्त वर्णन है और यह भी उनके द्वारा रचित "श्री राधा-कृष्ण लीलामृतम्" के लगभग ५०० से ज्यादा सूत्रों से उद्भूत है। जब संक्षिप्त वर्णन इतना सारगर्भित है तो विस्तार कितना रुचिर और व्यापक होगा! मैंने भाव-प्लावित हो उन्हें ही कृष्ण मान लिया। उन्होंने मुझे 'श्री राधाकृष्ण लीलामृतम्' को एक कॉपी भी देकर मुझे कृतार्थ किया। पर उनका सूत्र-सृजन अभी भी चल रहा है। मैं आश्वस्त हूँ कि यह भारत के भक्ति-भावित आराधकों के लिए शुभ सिद्ध होगा। उनके द्वारा कहे गये कुछ सूत्र और उनकी व्याख्या प्रस्तुत हैं। मेरी भावना है कि सारे सूत्रों को समग्र रूप में समझा जाय तभी इस लीलामृत का रसास्वादन सही अर्थ में किया जा सकता है। और यही स्वाभाविक भी है। तथापि जो प्रस्तुत है वह भी भक्तों को प्रचुर अनुरंजन देगा, ऐसी मेरी धारणा है।

सूत्र (१)

फिर तेरे तेरे में नहीं कोई तेरा है। एक तेरा तेरा ही सदा मेरा मेरा है।

व्याख्या :

कितनी आवाज दोगे मेरा है मेरा है, एक तो आवाज दो तेरा है तेरा है।
आवाज तुम देते हो कहते हो समझते नहीं, प्रस्तुत तुम हो नहीं, प्रेम है स्थिर वहीं।

सूत्र (२)

नहीं आया नहीं आया जब जब आया आया
एक एक आया आया, ऐसा आया आया ॥

व्याख्या :

बार-बार आकर भी कुछ न मिलेगा हाथ को
एक बार ऐसा आओ फिर ना लौटो साथ को ।।

सूत्र (३)

बना बनाया नहीं नहीं, आया आया नहीं नहीं ।
ऐसा-ऐसा नहीं नहीं, कभी-कभी नहीं नहीं ।

व्याख्या :

बन जाऊँ तेरे हाथ से ऐसा ।
अपना भाग्य वहाँ बन जाये खुद मैं चलूँ जहाँ
फिर चमकूँ बन बिजली वहाँ ।
ऐसे तो यह आना-आना लगा रहेगा बारंबार,
होना है फिर क्षुब्ध नहीं गर
छोड़ हो दूँ यह बारंबार !

सूत्र (४)

फिर फिर फेरे फेरे में एक तेरा फेरा है,
ऐसा ऐसा फेरा है फिर ना कोई फेरा है ।।

व्याख्या :

झमेले खत्म गर होते नहीं, आना - जाना लगा अगर
एक बार प्रिय आकर मुझको ले जाना उस नगर मगर ।।

सूत्र (५)

बार-बार एक बार, नहीं नहीं बार-बार
ऐसा बार-बार सदा, सदा-सदा एक बार ।

व्याख्या :

आकर मुझ-को दर्शन देना एक बार केवल इक बार ।
क्षण प्रवाह को रोक सकूँगा वहीं सदा फिर बारम्बार ।।

सूत्र (६)

तेरा तेरा आया आया, नहीं नहीं आया आया
जब जब आया आया, तेरा एक आया आया ।।

व्याख्या :

सासें चलती नहीं, धड़कन घटती नहीं
कब आएगी मेरी बारी, सासें तो बस अटकीं कहीं।

सूत्र (७)

बोल बोल बुलाया नहीं नहीं आया, जब जब आया एक ही आया ॥

प्रतिक्रिया :

क्या कहते हो मुझसे तुम, छोड़ दूँ क्यों यह आना,
मुझपर हो क्यों दोष लगाते कि मैं ही नहीं आया,
तुमने कहाँ बुलाया, लेकिन जब भी बुलाया आया,
आया-आया निश्चय आया जहाँ बुलाया आया।

सूत्र (८)

बोला नहीं बोला नहीं जब जब बोला बोला नहीं ।
एक तेरा बोला नहीं; फिर फिर तो बोला नहीं ॥

प्रतिक्रिया :

रुष्ट न होना हे प्रिय मुझसे मैं आया हूँ करुणा रखना।
आ न सकूँ तो बुला भी लेना मुझ पर दया सदा रखना ॥

सूत्र (९)

तर तर तराया एक, नहीं नहीं तराया एक
जब जब तराया एक, एक एक तराया एक ॥

व्याख्या :

विश्वास है मुझे इसका मुक्ति तुम दोगे प्रभु !
विश्वास है मुझे, मेरे बंधन टूटेंगे प्रभु !

सूत्र (१०)

रोया रोया नहीं नहीं जब जब नहीं नहीं
फिर फिर नहीं नहीं ऐसा ऐसा नहीं नहीं ॥

सूत्र (११)

एक एक है नहीं, फिर तेरे तेरे में
एक तेरा तेरा है, नहीं तेरा तेरा वह, वह मेरा मेरा है ॥

सूत्र (१२)

तेरा तेरा एक एक ऐसा तेरा तेरा है ।
वह तेरा तेरा जो एक मेरा मेरा है ॥

व्याख्या :

आस लगी है एक लगन की, रोया मै इन्कार नहीं,
किन्तु न भाया तुमको यह सब इससे भी इन्कार नहीं,
तुमने पाया मेरे रोने में मेरा एक सपना
बना गया बस कृपा द्वार हरदम ही सपना अपना ।

सूत्र (१३)

एक प्रेम प्रेम तेरा ऐसा प्रेम प्रेम है ।
वहीं प्रेम प्रेम में एक मेरा प्रेम है ॥

व्याख्या :

प्रेम के प्रवाह में डूबा मेरा पूरा तन मन
निकली एक बूंद ही मगर हो गया परिपूर्ण मन ।

सूत्र (१४)

फिर नहीं फिर नहीं, नहीं नहीं फिर नहीं ।
जब जब नहीं नहीं एक एक नहीं नहीं ॥

व्याख्या :

बूंद-बूंद संभाल रखियो कभी ना भुलैयो
और ठोर नाहीं जाके, जिंदगी संभाल लैयो ॥



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', जुलाई १९९२ विशेषांक]

श्री विंध्याचल स्वर्गाश्रम दिव्य दर्शन

श्री वी० पी० 'योगेश'

करुणासागर सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा की कृपा मात्र से श्रीचरणों में ध्यान लाने वाले प्राणियों को चारों फलों की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। मैं कोई वेद-शास्त्रों का जानने वाला नहीं हूँ कि उनकी स्तुति में कुछ लिख सकूँ। वे तो सदाशिव औढर दानी थे क्योंकि वे अपने भक्तों के लिए उनका कष्ट स्वयं झेलते थे। यही मेरी आत्मानुभूति है। उनकी कृपा के जो चमत्कार मैंने देखे हैं, वे अकथनीय हैं। शायद मेरे तमाम गुरुभाइयों ने भी ऐसा ही अनुभव किया होगा; इसलिए आपकी कृपा का वर्णन करने के लिए न मेरी जिह्वा में शक्ति है और न लेखनी में क्षमता। आज भी आपका वरदहस्त आपके तमाम शिष्यों के सर पर है। वही मुद्रा, वही तेज और वही मुस्कान—भक्तों को आज भी हमेशा उनका दर्शन होता है। यही मेरी अपनी अनुभूति है।

अब मैं एक वृत्तांत दे रहा हूँ—स्वर्गाश्रम विंध्याचल का। सर्वश्री यमुना प्र० राम, वंशीलाल राम, रघुवंश प्र० 'व्यास', राजकिशोर विद्यार्थी, रमेश कुमार, ऋषि कुमार राम, रामबाबू राम तथा कुमारी पिंकी (मेरी पुत्री) २९-५-९२ को सोनपुर (सारण्य जनपद, बिहार) से संध्या को चलकर इलाहाबाद वाली ट्रेन से बनारस सिटी दूसरे दिन पहुँचे। और वहाँ से बस द्वारा हम विंध्याचल आये और फिर वहाँ से टेम्पो द्वारा पूज्य बाबा के भागदेवर स्थित स्वर्गाश्रम आये। आश्रम पर उपस्थित संतों ने बड़ी कृपा दिखायी जिससे हमें अतिथि-सत्कार की शिक्षा मिली। तब हमलोग उस दिव्य धाम को आये जहाँ बड़े गुरु महाराजजी के समय का मंच है। मचान तक जाने के रास्ते में गौ मातागण के दर्शन हुए। उनकी संख्या काफी थी। मेरी बच्ची पिंकी प्रभु हंस बाबाजी के दर्शन के लिए उतावली हो रही थी, क्योंकि उसकी बहन सोनी मेरी माताजी के संग बड़े सरकार का दर्शन १९८८ में ही करके दीक्षा प्राप्त कर चुकी है। हम जब पूज्य बाबा के मंच धाम तक पहुँचे, उस समय श्री हंस बाबा सरकार स्नान कर रहे थे।

हमलोगों ने जाकर सद्गुरु का जयजयकार किया। उसके बाद हम तमाम भक्त नाम-धुन का कीर्तन करने लगे। उसी समय मेरी दृष्टि साक्षात् श्रीबाबा-वपु संत महाराजजी पर पड़ी और थोड़ी देर के लिए मैं तो भ्रमित-स्तम्भित हुआ कि आज बड़े सरकार ही शरीर बदलकर आविर्भूत हुए हैं। तब मैं अपनी चेतना

में लौटा और साष्टांग दण्डवत् किया। तथा साथ के तमाम भक्तों ने भी दण्डवत्-प्रणाम किया। श्री प्रभु ने सभी लोगों से परिचय पूछा तथा हमलोगों ने बारी-बारी से अपना परिचय दिया। तब बाबा फिर बोले—बच्चा, कुछ पाया है? हमलोगों ने उत्तर दिया—जी सरकार। बाबा ने तब रुकने को कहा और अन्दर जाकर वहाँ से एक बतासा-भरा पोलीथीन दिया और ठंडा जल पीकर आने को कहा। ठीक उसी समय मिर्जापुर के जिलाधीश अपने पूरे दल के साथ आ पहुँचे। वे करबद्ध खड़े थे और बाबा उन लोगों को कुछ उपदेश सुना रहे थे। उसी समय हम लोग जल पीकर मंच के पास आए। मैंने अवकाश पाकर महाराजजी से आग्रह किया कि हे प्रभु, कुछ भक्त सरकार के श्रीमुख से दीक्षा-ज्ञान लेने हेतु आये हैं; देने की कृपा की जाय। उसी समय एक अद्भुत चमत्कार हुआ। श्री महाराजजी थोड़ी देर के लिए समाधिस्थ हुए और कुछ दिव्य शब्द सुनाई पड़े। लगता था कि सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा पास ही कहीं बैठकर बोल रहे हैं।

उसके बाद श्री हंसदासजी बोले कि ठीक है बच्चा, मैं दीक्षा-ज्ञान देता तो नहीं हूँ, पर मुझे विशेष आदेश अभी-अभी मिला है। उसके बाद उन्होंने कहा कि बच्चा लिखो, मैं कुछ ज्ञान की बातें लिखा रहा हूँ।

महाराजजी तब पूछते हैं कि बच्चा, कागज है तुम्हारे पास? हमलोगों ने जवाब नहीं में दिया। बाबा कुटी में गए और बहुत-सा कागज लेकर मेरे हाथों में देते हुए कहा—बच्चा, लिख रखना और ध्यान करना, यह मेरी वाणी नहीं है, परा-वाणी है। जल्दी-जल्दी लिखना और दुबारा मत पूछना। तब कागज और कलम लेकर यमुना बाबू, राजकिशोर तथा रमेशजी लिखने लगे, लेकिन क्या मजाल कि वे लोग उतनी जल्दी लिख सकते। बार-बार श्री बाबाजी राजकिशोर जी को ही लिखने को कहते और लगता जैसे विशेष कृपा है।

लिखते-लिखते शाम हो आयी और टेम्पो-चालक जिसे हमलोग रिजर्व करके ले गये थे, वह भी मंच के पास आ गया। तब बाबा बोले कि बच्चा, इस समय जाओ, फिर आते रहना।

मैंने पुनः आग्रह किया कि बाबा, इन लोगों की झोली नाम-सुमिरन देकर भरने की कृपा कर दी जाय। श्री बाबा ने ड्राइवर को प्रसाद देकर कहा कि जाओ बच्चा अपनी गाड़ी के पास—भक्त लोग भी जा ही रहे हैं। उन्होंने तमाम इच्छुकों को नाम-सुमिरन के सूत्र दिये जिस प्रकार श्री प्रभु देवाधिदेव गुरुदेव बड़े सरकार दिया करते थे। वहाँ के मनमोहक दृश्य, माता राधिका तथा श्याम

सुन्दर की मोहक छवि तथा साक्षात् सरकार का स्वरूप देखकर मन वहाँ से हटना नहीं चाहता था।

पूज्य हंस बाबाजी ने एक संतजी को हमें शर्बत पिलाने का आदेश दिया और उन्होंने तुरन्त बेल का शर्बत बनाकर हमलोगों को परितृप्त किया। उस गर्मी में वैसा सुशीतल मधुर पेय शायद ही अन्यत्र उपलब्ध हो सकता। यह भी एक चमत्कार सदृश ही हमें प्रतीत हुआ। बाबा जी ने कहा—कहो विन्देश्वर, और क्या चाहते हो। मैंने कहा—सरकार, हमलोग गुरु पूर्णिमा की पुण्य बेला में यज्ञ-भण्डारा करते हैं। इस वर्ष भी भण्डारा का आयोजन है। मैं चाहता हूँ प्रभु की स्वीकृति एवं पदार्पण। तब सरकार मुस्कराते हुए बोले—विन्देश्वर, भण्डारा करो, मैं हूँ; और बोलो, क्या चाहते हो? मैंने कहा—प्रभु, बस आपकी कृपा, और सरकार का चरण भी हमें मिल जाय। इस पर फिर उन्होंने पूर्ववत् समाधि ली तथा बड़े सरकार से आदेश लेकर हम लोगों को कहा कि लो, चरण लो। हम लोगों ने श्री महाराजजी का चरण अपने माथे पर रखा और कृतार्थ हुए। फिर अश्रु भरी आँखों से उन्हें बार-बार प्रणाम करते हुए हमलोगों ने वहाँ से प्रस्थान किया।

श्री हंस बाबाजी की 'संत-वाणी' और 'परा-वाणी'*

संत वाणी

(१) प्रेम-प्रेम-प्रेम में एक प्रेम आया, वाही-वाही प्रेम में एक प्रेम पाया।

(२) ज्ञान-ज्ञान-ज्ञान में एक ही ज्ञान है, वाही-वाही ज्ञान में एक तेरा ज्ञान है।

(३) पाया नहीं एक में आया नहीं एक में, जब-जब आया आया, आया एक-एक में।

(४) तोर-तोर-तोर में एक तोर आया, नहीं-नहीं आया एक तोर आया।

---

* लेखक श्री बी० पी० 'योगेश' ने श्री हंस बाबा द्वारा लिखाये गये 'संत-वाणी' के ३६ तथा 'अटपट' (परा-वाणी) के ६५ सूत्र प्रकाशनार्थ भेजे थे। इन दोनों वाणियों से मात्र आरम्भिक १२-१२ सूत्र विषय-प्रवेश के बतौर यहाँ फिलहाल दिये गये हैं। —सम्पादक

(५) प्रेम नहीं आया एक नहीं आया, ऐसा नहीं आया एक तेरा आया।

(६) तेरे में तेरे में एक तेरा पाया, वाही तेरे-तेरे में एक तेरा आया।

(७) अब-अब-अब में एक अब आया है, वाही अब-अब में एक तेरा आया है।

(८) साथ नहीं पाया, साथ नहीं आया, जब-जब पाया है एक ही पाया है।

(९) तेरे मेरे पाने में नहीं-नहीं पाया है, जब-जब पाया है एक ही पाया है।

(१०) आता है, आता है एक ही आता है, जब-जब पाया है एक ही पाया है।

(११) तेरे मेरे एक में एक तेरा-तेरा है, वाही तेरे-तेरे में नहीं एक मेंरा है।

(१२) पाया-पाया एक आया आया एक, वह आया मैं आया आया एक एक।

परा वाणी (अटपट)

(१) तेरे मेरे अन्तर में एक-एक आया, वाही-वाही अन्तरों में एक-एक पाया।

(२) सर से सराया एक-एक पाया, वाही सर सराने में एक-एक पाया।

(३) फिर-फिर आने में नहीं फिर आया, ऐसा-ऐसा आया एक फिर आया।

(४) रोया-रोया एक-एक एक-एक रोया, वाही रोने-रोने में एक-एक रोया।

(५) ऐसा-ऐसा आया आया एक आया, वाही आने-आने में एक तेरा आया।

(६) आना-पाना नहीं-नहीं एक-एक पाना, वाही पाने-पाने में एक-एक पाना।

(७) फिर नहीं आया, एक फिर आया, तेरे-मेरे पाने में एक-एक पाया।

(८) प्रेम से आया नहीं प्रेम से पाया नहीं, जब-जब आया नहीं प्रेम-प्रेम पाया नहीं।

(९) नहीं-नहीं तेरे में जब तेरा-तेरा आया, वाही नहीं तेरे में तेरा नहीं पाया।

(१०) फिर-फिर रूप में एक रूप आया, वाही-वाही रूप में एक रूप पाया।

(११) तेरे मेरे रोने में एक रोना आया है, वाही रोने-रोने में एक रोना पाया है।

(१२) फिर नहीं पाया फिर नहीं आया, जब जब आया एक फिर आया।



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', नवम्बर १९९२]

श्री हंस बाबाजी महाराज द्वारा वेदान्त निदर्शन

श्री श्याम मुरारी पाठक

दिनांक १३-६-'६२ को लगभग नौ बजे प्रात: हमलोग पूज्यपाद स्वामी श्री हंसदास जी महराज के मंच के नीचे पहुँचे। मंच पहले पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज हेतु तैयार हुआ था और अपने विंध्याचल अवस्थान के समय वे इस पर समासीन होते थे। उनके अदेही होने के पश्चात् उनके ही आदेशाधीन पूज्य श्री हंसदास जी महराज कुछ समय से इस पर विराजते हैं। वे उस समय मंच पर नहीं थे। हमलोग छै जने थे। मैं तथा मेरी धर्मपत्नी, मेरी बड़ी बहन, मेरा पोता (भानजे का पुत्र), मेरे मकान मालिक और उनकी धर्मपत्नी। वहीं पर आश्रम से स्वामी श्री जगन्नाथ दासजी भी हमलोगों के साथ दर्शन कराने हेतु चल दिये थे। मंच पर जाने के लिये जो सीढ़ी लगी थी उसके ऊपरी छोर पर पूज्यश्री गुरुदेव महराज की एक बड़ी तस्वीर लगी थी। थोड़ी देर बाद श्री हंस दास जी महाराज पधारे। मंच पर वे पीछे के रास्ते से आये। उन्होंने हमलोगों से नाम-पता पूछा और आने का कोई विशेष प्रयोजन हो तो उसे जानना चाहा। उस समय तक मेरे मन में सिर्फ दर्शन की इच्छा थी सो मैंने कह दिया कि 'बस सरकार की दया चाहता हूँ।' उसके बाद उन्होंने पूछा कि कागज-कलम है? संयोगवश मेरे मकान मालिक श्री राजकिशोर जी के पास कागज और कलम दोनों मिल गये। पूज्य महात्मा जी का आदेश हुआ—'लिखो मैं बोलता हूं? मैं भी लिखता हूँ, तुम भी लिखो।' उन्होंने निम्नलिखित वाणी लिखवायी—

आके देखा एक में एक ही एक ही एक, एक ही एक, एक से देखा, देखा एक ही एक।
पाके पाया एक में तेरा एक ही एक, एक ही एक के एक से देखा एक ही एक।
प्रेम प्रेम में एक है तेरा एक ही प्रेम, एक ही प्रेम में एक से देखा तेरा प्रेम।
रोता सोता एक में एक ही के एक साथ, रोके रोया एक में तोके सोया साथ।....

आज जो देखा आज है कल जो देखा कल,
आज-काल के एक में तू ही आज और कल।
देख-देख के एक में देखा एक ही एक,
जो जो देखा एक में, है एकहि में एक।

पड़ा पड़ा जो एक में पड़ा है एक ही एक।

एक ही एक के एक से पड़ गया एक ही एक।

एक ही ज्ञान के ज्ञान से आया तेरा ज्ञान, ज्ञान पाय के एक में आया तेरा ध्यान।
जाना आना एक में तेरे ही एक साथ, जो जो आया साथ में तेरे ही एक साथ।
तेरी वाणी एक है प्रेम की वाणी एक। एक ही के एक एक में तेरी वाणी एक।
जब देखा एक एक से रहा एक ही एक। देख-देख के एक से तेरा देखा एक।
पाय पाय के एक में पाया तेरा एक। जो जो पाया एक में तेरा पाके एक।
बरसा-बरसा एक में तेरा बरसा एक। जो बरसा है एक में तेरा हो के एक।
नहा नहाया एक में तेरे ही एक साथ, साथ-साथ में एक से नहा नहाया साथ।
सोता सोता सो गया तेरे में ही एक, जो सोया है एक में तेरा होके एक।

× × × ×

भानु प्रताप सरस मंह देखा, रूप प्रेम एक एक विसेखा।
आवत एक निरन्तर प्रेमा, रूप एक मंह एक ही क्षेमा।
सात पहइ एकहि एक संगा। देखि देखि कर प्रेम प्रसंगा।
रूप विमल तव एकही एका। नाम प्रताप विराज अनेका।...
प्रेम निरन्तर सत्य बतावहिं। ज्ञान-ध्यान एक-एक सराहहिं।
देखहिं सत्य, प्रेम सत द्वारा। रूप ध्यान एक एक पसारा।

× × × ×

पाय पाय के एक में तेरा पाया एक। रूप बनाया एक में तेरा होके एक।
रूप प्रेम को माधुरी, तेरो ही है एक।

एक एक के एक से भई माधुरी एक।...

जाय जाय के एक में तूने जनाया एक।

जानि जानि के एक में एकहि जाना एक।

× × × ×

जब देखा तब एक एक देखा, एक एक में तुमको देखा।
पाना तेरा आना तेरा, एक एक में है तेरा तेरा।

पात पतुरिया पातुरी, पतरी पतरी एक।
एक ही एक के एक में तू पतुरी है एक।
प्रेम पुछाड़ा प्रेम का पड़ि पड़ि आयो एक।
जो पड़यो है एक में, एक ही एक ही एक।

अमर उजाला प्रेम का तेरा पाया एक। एक एक को पाय के तुमको पाया एक।
तरते तरते एक से सभी तरे हैं एक। एक ही एक के एक से तारे गये अनेक।
उँच-नीच एक-एक में तू ही है एक-एक। एक एक को देख के तुझको देखा एक।
श्याममुरारी आय पुकारी, गहि गहि दरस सुखारी।
तड़प तड़प कर ए मँह देख्यो, रूप प्रेम सन जाइ न लेख्यो।
एक ही ध्यान में प्रेम दिखायो। वाही एक में एक बतायो।
रूप ज्ञान में एक ही धारा, वाही एक में सब निस्तारा।*

इतना लिखवा कर पूज्य महात्मा जी ने बताया कि यही वेदान्त दर्शन है।

इस दर्शन से यही पूर्णतः स्पष्ट होता है कि जीव, जगत् और सत् एक ही तत्त्व हैं। जगत् का जो मिथ्यात्व है वह भी भेद-बुद्धि से ही है।

तदनंतर श्री हंस बाबा जी ने यह भी बताया कि उपर्युक्त काव्य दिव्य वाणी है। लौकिक वाणी कंठ से निकलती है, उपर्युक्त वाणी का प्रादुर्भाव सहस्रार से हुआ है। उन्होंने कहा था—इसे मैं भी लिखता हूँ और तुम भी लिखो। सो उन्होंने भी साथ-साथ लिखा। पूज्य बाबा के अदेही होने के बाद सुना गया था कि १०-१५ वर्षों के बाद वे पुन. प्रकट होंगे, लेकिन प्रतीत होता है कि सूक्ष्म दिव्य शरीरधारी पूज्य बाबा सहस्रार में ही आकर आदेश कह देते हैं।

श्री हंस बाबा ने बताया कि योग-साधना में कठिन तपस्या द्वारा मन को स्थिर करना होता है, लेकिन भगवान प्रेम से भी प्रसन्न होकर दर्शन देते हैं। जो भगवान के प्रेम में एकाग्र हो जाता है वह भगवान को पा लेता है और तब उसमें एक-एक कर भगवान के सभी गुण प्रकट होने लगते हैं। यह सुनकर मुझे पूज्य गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबाजी महाराज द्वारा बार-बार कही जाने वाली कुछ पंक्तियों की याद आने लगी—

"रामहिं केवल पेम पियारा, जानि लेहु जो जाननिहारा।
मन तें सकल बासना भागी, केवल रामचरण लौ लागी॥"

---

*प्राप्त वाणी में अधिक पंक्तियाँ थीं किन्तु तत्काल उनमें केवल आधी ही प्रकाशित की जा सकी हैं। —सम्पादक

लेकिन मैं कुछ बोला नहीं।

पूज्य हंस बाबा ने उस स्थान (स्वर्गाश्रम) के माहात्म्य की चर्चा करते हुए कहा कि पूज्य गुरुदेव महाराज के अदेही होने के बाद भंडारे के लिए जब विंध्याचल स्थान का चयन होने लगा तो उन्होंने पूज्य गुरुदेव हेतु निर्मित मंच के बगल वाले स्थान का ही सुझाव दिया तथा भंडारा हुआ भी वहीं। अब पहला निमन्त्रण किसे दिया जाय, यह प्रश्न खड़ा हुआ। इस पर इन्होंने श्री कृष्ण भगवान को ही पहला निमन्त्रण देना निश्चित किया और उन्हें ही पहला न्योता दिया भी गया। तत्पश्चात् श्री लीला-विहारी ने स्वप्न में कहा कि मैं तो गोशाले में हूँ, पहले मुझे यहाँ से तो ले चलो। तब स्वप्न में ही पूज्य हंस बाबा ने कृष्ण भगवान से पूछा कि आपको कहाँ प्रतिष्ठापित करूँ। भगवान ने बताया कि मुझे मंच के पास ही रखो। तत्पश्चात् श्री राधा-कृष्ण जी की मूर्ति को उन्होंने पूज्य गुरुदेव हेतु निर्मित मंच के निकट में ही स्थापित करा दिया।

और उसके उपरान्त तीसरी रात से ही श्री लीला विहारी जी की लीला उस क्षेत्र में प्रारम्भ हो गयी—श्री युगल सरकार की लीला। दिन में भी वे बालरूप में श्री महात्मा जी के साथ ही मंच पर रहने लगे। वे कहते हैं—"मैं भी तेरे साथ ही खाऊँगा—मैं भी तेरे साथ ही सोऊँगा।"

एक दिन रात्रि में जोरों की वर्षा हो रही थी। श्री राधाजी ने श्री कृष्ण कन्हैया से कहा—"लीला तो होनी ही चाहिए।

श्री कृष्ण भगवान बोले—'चलो।'

पुनः श्री राधा जी ने कहा—' लीला कैसो करोगो, वर्षा हो रिह्यो है ?'

तब श्री कृष्ण भगवान ने हाथ ऊपर उठाकर गाकर कहा—' ऐ कारि कारि बदरिया, ऐ वर्षा, तू ऊपर ही ऊपर रहियो, जबतक मैं न बुलाऊँ तू नीचे मत अइयो।' बादल घिरे रहे पर बर्षा नहीं हुई और श्री लीला विहारी जी ने श्री राधा जी के साथ मिलकर लीला पूर्ण की।

पूज्य महात्मा श्री हंसदास जी ने कहा—'मेरे भगवान सूक्ष्म रूप से सदा मेरे साथ ही रहते हैं।'

पूज्य बाबा श्री हंसदास जी प्रसाद लाने मंच पर बनी फूस की कोठरी में दो बार गये। वे जब भी अन्दर गये मैंने दो व्यक्तियों की बात-चीत की आवाज

सुनी। मैंने स्वामी जगन्नाथ दास जी से पूछा था कि यहाँ और कोई रहता है क्या? उन्होंने उत्तर दिया था—'नहीं, श्री हंसदास बाबा अकेले ही रहते हैं।' रास्ते में मेरे पूछने पर मेरी दीदी, भानु (मेरा पोता) तथा शशि ने भी बताया कि उनलोगों ने भी अन्दर में दो व्यक्तियों की आवाज सुनी थी। हमलोग आपस में अनुमान लगा रहे थे कि वह दूसरी आवाज या तो साक्षात् भगवान श्री कृष्ण की होगी या सूक्ष्म शरीरधारी स्वयं पूज्यपाद श्री गुरुदेव की।

जिस दिन भंडारा होना था उस दिन भीषण वर्षा की भी संभावना थी। पहले से वर्षा के कारण पूरा स्थान जलमग्न था। भक्तों ने बाबा हंसदास जी से चिन्ता व्यक्त की। किन्तु उन्होंने कहा—सब ठीक हो जायेगा। भंडारा के दो दिन पहले इतनी प्रचण्ड धूप हो गयी कि सारा स्थान अनुकूल हो गया तथा भंडारा स्थल छोटी-छोटी गाड़ियों के भी पहुँचने योग्य हो गया। और गाड़ियाँ पहुँचीं भी।

दूसरी बार भंडारा के समय काफी प्रचण्ड धूप थी। भक्तों ने पुनः चिन्ता व्यक्त की। आश्वासन मिला—सब ठीक हो जायेगा। और पूरे समय काले बादल छाये रहे! अगल-बगल के इलाके में वर्षा भी होती रही पर इस स्थान पर सिर्फ काले बादलों का आच्छादन रहा और ठंढ़ी हवा चलती रही।

स्वामी जगन्नाथ दास जी ने बताया कि कुछ भक्त आस-पास से आये और निवेदन किया कि खेत सूख रहे हैं, फसल मारी जा रही है। उसके कुछ ही बाद वृष्टि शुरू हुई और जब तक भक्तों ने आकर यह नहीं कहा कि अब अधिक वर्षा से नुकसान हो जायेगा, वर्षा होती रही। उन्होंने कहा कि स्थान की महिमा के वर्णन में बहुत समय लगेगा।

दिन के लगभग बारह बज रहे थे। हमलोगों ने विंध्याचल से १० बजे टेम्पो मँगवाया था पर अभी वह आया नहीं था। इसी समय अचानक महात्मा हंसदास जी महाराज ने कहा—अब तुम्हारा समय खत्म हो गया; वर्षा का समय है—छुट्टी कर देता हूँ।

छुट्टी करने के समय पूर्वोक्त वेदान्त दर्शन से संबंधित पद्यात्मक उपदेशों को लक्ष्य कर पूज्य महात्मा हंसदास जी का आदेश प्राप्त हुआ कि उसे 'पावन प्रसाद' को भेज दूँ और एक प्रति इलाहाबाद के श्री चन्द्रकुमार शर्मा जी को भी।

मुख्य आश्रम स्थल और मन्दिर से श्री बाबा के मंच तक जाने के लिए रास्ता बना हुआ है। दूरी लगभग एक किलोमीटर है। सवारियाँ चली जाती हैं।

लगभग नौ बजे सुबह जब हमलोग पूज्य श्री हंसबाबा जी के दर्शन हेतु मन्दिर के प्रांगण से निकल रहे थे तब चारों ओर वर्षा हो रही थी। किंतु ज्योंही हमलोग सड़क पर आये वर्षा रुक गयी। लगभग १२ बजे तक—जबतक हमलोग दर्शन करके लौट नहीं आये—बादल छाये रहे और ठंढ़ी हवा चलती रही, लेकिन वर्षा नहीं हुई। हमलोग भींगने से बच गये। भयवश छाता हमलोगों ने ले लिया था परन्तु उसकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। मंच से छुट्टी पाकर हमलोग मन्दिर प्रांगण में पहुँचे ही थे कि मेरे पोते भानु ने कहा—'देखिए, टेम्पो भी आ रहा है।' ऐसा लगा मानो विन्ध्याचल से टेम्पो के चलने के वक्त ही पूज्य महात्मा जी ने उसे देख लिया हो और इसी कारण हमलोगों से उन्होंने कहा—अब तुम्हारा समय खत्म हो गया। ऐसा भी अनुभव हुआ कि पूज्य महात्मा जी की ही कृपा से हमलोग तीन घंटे तक वर्षा में भींगने से बचे रहे क्योंकि टेम्पो पर बैठते ही पुनः वर्षा शुरू हो गयी।

सिर्फ एक ही विचार मन-प्राण और समग्र चिन्तन के अन्दर-बाहर सघन बलाहक की भाँति छाया था—

मन ते सकल वासना भागी, केवल राम चरण लव लागी!

सारा कुछ ऐसा प्रीतिकार और परम पावन लगने लगा था मानो प्रेमानन्द के समुद्र में हमलोग गोते लगा रहे हों!

हे गुरुदेव, जीवन में ऐसा संयोग बार-बार आता रहे और इस दिव्य नैसर्गिक आनन्द में जीवन के सारे क्लेश और कल्मष सदा के लिए विलीन हो जायँ!

बोलिए—श्री गुरुदेव भगवान की जय!
श्री हंस बाबा जी की जय!

—(प्रभारी ए० पी० पी०, बक्सर)



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', अक्टूबर १९९२]

योगिराज ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा का पुनः अवतरण

श्री स्वामी रामविरागी दास जी (श्री वैरागी बाबा)

युग-संधि के समय ऋषि सत्ताओं का दायित्व पूर्व की अपेक्षा अधिक बढ़ जाता है। सृजन के बाद मानव-संघ में पारस्परिक उत्पीड़न, शोषण, हिंसा-भाव और नर-पशु वृत्ति का निरंकुश विकास जब अधिक हो जाता है और जब धर्म भी शोषण का रूप ले लेता है, तब जन-मन उत्पीड़न और दुःख-दारिद्र्य तथा कलह के आपसी प्रहारों से अधमरा हो जाता है। ऐसे में सामूहिक प्रतारणा के अग्निकुंड में जलने के सिवा कोई चारा नहीं रह जाता। दैव की ओर से मिली पावन प्रकृति के धरोहर के मानव द्वारा तहस-नहस किये जाने के चलते सृष्टि के लिए संहारक रूप धारण करना अनिवार्य हो जाता है। चिरंतन सत्ता का यह विधान आदि से अंत तक अबाध चलता रहता है और यह व्यवधान-रहित है।

युग-संधि का समय नजदीक आ रहा है। भविष्य-पुराण की कृतयुग की घोषणा से तथा स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, योगिराज ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा, पं० श्रीराम शर्मा आचार्य आदि ऋषियों की वाणी से इस कथन की पूरी पुष्टि हो जाती है। नये युग के आगमन में असुर सत्ता का संहार होना है और सुर सत्ता का सर्वतोभाव उत्थान। यह सब घटना ईश्वर की इच्छा से होती है। संहार के इस महाप्रवाह को संसार की कोई शक्ति नहीं जो रोक सके अथवा टाल सके। इस महाकाल के रोषमय तांडव में आगत अशुभ और अशौच का विनाश निश्चित है। विज्ञान युग की बड़ी से बड़ी अंध शक्ति भी इस प्रबंड दावानल में भस्म हो जाएगी। स्थूल की असुर शक्ति को सूक्ष्म की एक मामूली गति भी पराजित कर सकती है। इसलिए सूक्ष्म सत्ता का जब विक्षोभ शुरू होगा तब विध्वंसक शक्तियाँ आपस में ही टकराकर चूर-चूर हो जायेंगी। समय की संहार-स्थिति जैसी बन चुकी है या बनती जा रही है, वह नये युग के आगमन की ही प्रच्छन्न घोषणा है।

अध्यात्म प्रसंग में यह जाना जाता है कि युग-परिवर्तन का संचालन तथा नियमन ईश्वर की ओर से ही होता है, पर वे स्वयं उस प्रकार क्रिया रूप में सर्वदा नहीं उतरते जैसे श्रीराम और श्रीकृष्ण का अवतरण हुआ था। बहुधा ऐसे युग-परिवर्त्तन के समय वे ऐसे ऋषियों का नियोजन करते हैं, जो नये युग की संरचना के दायित्व को पूरी तरह सँभालें तथा विकास के सनातन प्रवाह को शाश्वतता को अक्षुण्ण रख सकें। ये जिम्मेवारियाँ उन संतों की होती हैं जो ईश्वरीय प्रभाव के समान ही शक्ति-सम्पन्न और सक्षम होते हैं।

ऋषि सत्ताओं का लोक

ऋषि सत्ताओं का भी एक लोक है जिसे शास्त्रों में सूक्ष्म लोक की संज्ञा दी जाती है। यह लोक विभु सत्ता-सम्पन्न योगियों का देश है। यहाँ के अधिवासी शक्ति-पद के अनुसार विनाश और सृजन के अधिकारी होते हैं। पुराणों के अनुसार इस समग्र भूमंडल के जीवधारियों की देखभाल तथा उनके सामूहिक विकास की योजनाओं का पूरा संचालन हिमालय-गर्भ में स्थित कलापग्राम से ही होता है जिसको ज्ञानगंज या ज्ञान-धाम के नाम से भी कहा गया है। भविष्य-पुराण में इस स्थान का विलक्षण रहस्यमय वर्णन मिलता है।

ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा के स्थूल भौतिक आवरण का विसर्जन अभी हाल में हुआ है। काया-त्यागने के पूर्व उन्होंने जो भविष्यवाणी कीं थी वैसी वाणी भारत के बहुत कम ऋषियों के मुख से अब तक सुनी गयी है। चौदह वर्ष के अन्तराल से उन्होंने भारत में प्रत्यावर्त्तन की बात कही है। चौदह वर्ष की अवधि का आश्वासन किस हेतु मिला है और किस तरह पूरा किया जायेगा इसका पूरा मन्तव्य मुझे खुल नहीं पाता, पर सन् दो हजार के आसपास या बाद में जब कि युग-संधि का कार्य हो रहा होगा, उस समय नये युग के जन-जीवन को धर्म के नव्य साँचे में ढालने के लिए ब्रह्मर्षि का अवतरण निश्चय ही सर्वथा सार्थक सिद्ध होगा। चौदह वर्ष की अवधि में वे सूक्ष्म-सत्ता की समन्वित शक्ति से युग के परिवर्तनीय उपकरणों का शोधन और मार्जन करेंगे। इस कार्य का संचालन किस पराविद्या के अधीन किया जायेगा वह गुप्त तथा सार्वभौम योग-धारणा का विषय है। युग-निर्माण की लीला जो योगिराज के महिमामय मंच से की जा रही थी, उसे हम और आप देख तो रहे थे पर उस

लीला-प्रसंग में भावी युग के आगमन की जो बात उनके मौन संकेतों से प्रतिभासित हो रही थी उसे नहीं समझ रहे थे।

वस्तुतः ब्रह्मर्षि की वह लीला तो उस आने वाले परिवर्तन की, प्रतीक्षित और अपेक्षित नये धर्म-युग की भूमिका थीं। हमें उनकी घोषणा की गहराई में जाना होगा और पूर्व में हुए युग-बदलाव के उन कारणों में भी उतरना होगा, जिनके चलते इन आध्यात्मिक सत्ताओं का अवतरण होता है। चौदह वर्ष की अवधि से साधारण तात्पर्य तो यहीं हो सकता है कि घोषित काल की सीमा में प्रतीक्षित नव युग की हर समस्या का हल साधने के लिए प्रचण्ड दैवी शक्तियाँ अपने को अन्य माध्यमों से सन्नद्ध और सक्रिय रखेंगी। समय के गर्भ में वास करती हुई ऋषि सताएँ अपनी सूक्ष्म परा शक्ति के योजना-बद्ध रूप की गति को इस बीच निश्चय ही तीव्र करेंगी। परमात्मा का सूक्ष्म जगत् बड़ा विशाल तथा अथाह है। पृथ्वी की सम्पूर्ण मानवता में अधम की जगह धर्म, अनीति की जगह नीति तथा असत्य की जगह सत्य का पूर्ण आरोपण होना है और उस प्रक्रिया को गति और सत्वरता प्रदान करने के लिए ही ब्रह्मर्षि अकाय हुए हैं।

ऐसा आमूल-चूल परिवर्तन मात्र भौतिक शक्ति के आधार पर कभी नहीं होता। समग्र युग की आस्था, उसकी सांस्कृतिक मेखला तथा अन्तःकरण को पूर्व से बिलकुल भिन्न रूप देने के लिए आध्यात्मिक ऊर्जाओं का अवतरण पृथ्वी पर सनातन काल से होता रहा है। मनुष्यता को नष्ट कर रही भौतिक समस्याओं के उन्मूलन के लिए वर्तमान में बहुतेरे संसाधनों को अपनाया गया, परन्तु विश्व या राष्ट्र के अथवा यों कहें कि मानव के मनोमय जगत् की विषाक्त कुचेष्टाओं के समाधान का सूत्र नहीं मिल पाया। हिंसा-प्रतिहिंसा के विशाल कगार से युग की विज्ञान शक्ति कुछ विमुख भले ही हुई हो किन्तु अब भी नये युग के अवतरण में अलंघ्य व्यवधान मौजूद हैं।

ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा वेद के साकार रूप थे। उनके अकाय होने की घटना युग-परिवर्तन के लक्ष्य से हुई है। ऊपर हिमालय के गर्भ में स्थित उस सूक्ष्म लोक की चर्चा हुई है, जहाँ सतयुग, त्रेता आदि की ऋषि-सत्ताएँ अपने दिव्य रूप में विराजमान रहती हैं। वहाँ उनके अतिरिक्त वे योगी संत भी निवसित है जिनके भौतिक शरीर का साधनांत

हो चुका है, किन्तु जिन्होंने सूक्ष्म आर्ष सत्ताओं की अर्हता प्राप्त कर ली है। स्रष्टा के निर्देशानुसार वे सृष्टि-संचालन के विशेष तात्कालिक प्रयोजनवश वहाँ के निवासी बने हैं।

योगिराज श्री बाबा की घोषणाएँ

ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा ने उस चमत्कारिक क्षेत्र की तथा वहाँ के दिव्य-वपु ऋषियों की चर्चा—जब वे गोचर पार्थिव अवस्था में थे—तब की थी। उन्होंने कहा था—

"बच्चा, हिमालय के मध्य भाग में एक दिव्य क्षेत्र है जो ब्रह्म स्वरूप तपोधन योगियों का निवास स्थल है। लोक-कल्याणार्थ यदा-कदा उनका अवतरण पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भाग में हुआ करता है। समयानुसार वे पुनः यथास्थान लौट जाते हैं।..... मेरे अनेक योगी शिष्य भी वहाँ साधना-रत रहकर ब्रह्मानंद का लाभ ले रहे हैं।"—('योगिराज देवराहा बाबा : उपदेशामृत और बोधकथाएँ' खण्ड-४)

यह सुविदित है कि पूज्य बाबा ने अकाय होने के कुछ पूर्व घोषित किया था—"मैं अपने क्षेत्र हिमालय (तिब्बत) जा रहा हूँ। वहाँ संतों की टोलियाँ हैं। वहाँ मेरी आवश्यकता है, उस टोली का मैं सरदार हूँ।" महाप्रयाण का यह प्रसंग सामान्य दृष्टि से आश्चर्यमय लगता है। हिमालय स्थित इस क्षेत्र विशेष (कलाप ग्राम, ज्ञानधाम) को स्वर्गलोक कहा गया है और इसकी प्रामाणिकता पुराणों में मौजूद है। स्थूल रूप से वहाँ जाना सर्वथा असंभव है। पुराणों में कलाप ग्राम की चर्चा प्रायः विशेष रूप से आयी है। कलाप ग्राम के ये सिद्ध महापुरुष समय-समय पर अनेक साधकों को दर्शन देते रहे हैं। कलि के अंत में जब सतयुग का प्रारंभ होगा तब कलाप ग्राम के तपस्वियों से सृष्टि का विस्तार होगा तथा उनके द्वारा ही वैदिक धर्म तथा साधन परंपरा के विधान भी प्रचारित होंगे—('योगिराज देवराहा बाबा : उपदेशामृत और बोधकथाएं'—खंड-४)।

"हिमालय के मध्य में अवस्थित आध्यात्मिक ध्रुव केन्द्रों की भूमिका अतीव विलक्षण है। वे ब्रह्माण्ड व्यापी दिव्य चेतना का मानवोपयोगी अंश आकर्षित करते हैं.......। इस केन्द्र को धरती का स्वर्ग कहा गया है। पुरातन काल से लेकर अद्यावधि यह सिद्ध पुरुषों की क्रीड़ाभूमि रही है। देवसत्ता का प्रतिनिधित्व करनेवाली आत्माएँ इसी क्षेत्र में सूक्ष्म-शरीर से रहती हैं..." —आचार्य श्रीराम शर्मा

अब यह लगभग निर्विवाद है कि हिमालय के उक्त आध्यात्मिक स्थलों को स्वर्ग की गरिमा और शक्ति प्राप्त है और वहाँ के परम सिद्ध संतों के द्वारा ही इस भूखंड पर आनेवाले नये युगों की रचना प्रक्रिया का संचालन किया जाता है। संभवत: व्यास, शुकदेव, भीष्म पितामह के अतिरिक्त सतयुग के अति दीर्घ आयुष्य के महात्मा भी यहीं वास करते हैं और जब कभी नये युग का आगमन होनेवाला होता है, वे भी सक्रिय हो जाते हैं।

पूज्यचरण योगिराज श्री देवराहा बाबा के पुन: अवतरण की घटना एक आध्यात्मिक तथ्य है जिसका निगूढ़ तात्पर्य जानना कठिन है। पृथ्वी पर बड़े-से-बड़े तपोधन सन्त आये और गये। अपने समय के मुताबिक जन-कल्याण के संदर्भ में भावी समय चक्र की दिशा में वे भविष्य सम्बन्धी अद्भुत घोषणायें करते गये पर शरीर विसर्जन के समय पुन: आने की ऐसी प्रत्यक्ष घोषणा अबतक सुनने-देखने में नहीं आयी। इस प्रसंग में इतना ही कहा जा सकता है कि जिस काल में ब्रह्मर्षि का शरीर छोड़ना सम्पन्न हुआ उसके अति सन्निकट ही युग-संधि का समय आनेवाला था; इसलिए इस संकल्प-घोषणा को युग-संरचना की सांकेतिक उद्घोषणा के रूप में ही एक तथ्य समझ कर ग्रहण किया जा सकता है।

बाबा के पुनरपि आगमन की ईश्वरीय वाणी

पूज्य बाबा के पुनरपि आगमन के प्रसंग पर सोचने से यह भी प्रतीत होता है कि यह उनकी वाणी ईश्वर की वाणी थी। वे जब सकाय थे तब भक्तों के बीच यह बार-बार दुहराया करते थे कि— "बच्चा, मैं न नर हूँ, न नाग हूँ, न देव हूँ न किन्नर, न गन्धर्व—तो मैं क्या हूँ? बच्चा, मैं ईश्वर का बोध-स्वरूप हूँ।" उनकी यह उद्घोषणा परम विभु की ही वाणी मानकर यदि उनके प्रत्यावर्तन की बात पर विचार किया जाय तो सभी शंकाओं का निवारण निश्चित रूप से स्वत: हो जाता है। संभवत: यह निज की घोषणा नहीं थी, बल्कि तिब्बत (हिमालय) के सूक्ष्म सत्ताधारी ऋषियों के द्वारा युग की सद्य: संरचना के लिए निर्णीत प्रक्रिया की सूचना मात्र थी। निर्णीत युग-परिवर्तन के अग्रगण्य देव श्री बाबा ही संभवत: बनाये गए हैं और इस कारण ही

उन्होंने लोक-लोक को सांत्वना के लिए अपनी वाणी द्वारा यह आश्वासन दिया।

पूज्य बाबा ही वर्तमान में सूक्ष्म ऋषि-सत्ता समूह के अध्यक्ष हैं—यानी पूर्ण अधिकारी हैं। जब वे सकाय थे तभी अकाय भी हो जाते थे और अपनी सूक्ष्म सत्ता की बैठकों में भाग भी लिया करते थे। परन्तु उन महासिद्ध योगिराज की इस विलक्षण स्थिति की झलक तक उनके भक्तजनों को नहीं थी।

भगवत्स्वरूप परम पूज्य योगिराज के पुनरागमन का यह अंतरिम काल भी नवयुग के संक्रमण का ही काल है। इस बीच हिमालय निवसित दिव्य शक्तियाँ अपनी निर्दिष्ट लोला की तैयारी में है। ये नर-स्वरूप धारण कर भी प्रकट हो सकती हैं अथवा किसी अन्य सिद्ध काया को अपनी शक्ति का माध्यम बनाकर भी यह निर्माण का कार्य कर या करा सकती हैं। कुछ ऐसी ही योजनाएँ अदृष्ट-काय ऋषि-सत्ताओं की ओर से बनायी जा रही हैं जिनके कार्यान्वयन में चौदह वर्षों का समय लग सकता है। श्री राम ने राम-राज्य की स्थापना के पूर्व इतना ही समय राक्षसों के संहार में लगाया था और स्मर्तव्य है कि पूज्य बाबा भक्तों को श्री राम का मंत्र देकर ही उनका कल्याण साधते थे—'रां रामाय नमः।'

यह भी संभव है कि—प्रतीक्षित युग-परिवर्तन का यह संक्रमण काल ही हो जिसके अंत में ब्रह्मवपु बाबा उसी प्रकार प्रकट होंगे जैसे कालिय नाग के मस्तक पर श्रीकृष्ण प्रकटे थे।

योगी श्री अरविन्द की व्याख्या

युग-संधि के समय मानवेतर कार्य करने की क्षमता रखने वाले महात्माओं में एकमात्र सर्व-समर्थ और सर्वोच्च तो केवल पूज्य देवराहा बाबा को ही माना जा सकता है। इसके लिए कई पूर्व के प्रमाण लभ्य हैं। ब्रह्मर्षि बाबा के अवतरण का संकेत अंतरिक्ष के सूक्ष्म वितान में बहुत पहले से प्रकाशित हो चुका था। उस सूक्ष्म संवाद की जानकारी योगी अरविंद को थी। उन्होंने भावी घटनाक्रम का जिक्र संकेत के रूप में अपनी पुस्तक 'ह्यूमन साइकिल' में इस तरह किया है—

'दक्षिणेश्वर में जो काम शुरू हुआ था, उसका पूरा होना अभी कोसों दूर है। विवेकानन्द ने जो कुछ प्राप्त किया और जिसे अभिवर्द्धित करने का प्रयत्न किया वह अभी तक मूर्त नहीं हुआ···अब अधिक उन्मुक्त ईश्वरीय प्रकाश की तैयारी हो रही है, अधिक ठोस शक्ति प्रकट होने वाली है, परन्तु यह सब कहाँ-कब होगा, यह कोई नहीं जानता... स्वामी रामकृष्ण परमहंस के बाद भारत में परिवर्तन की प्रक्रिया इतनी तीव्रगति से बढ़ी है, उच्च योगी-स्तर की आत्माएँ इतनी अधिक प्रकट हुई हैं कि वह समय सन् २०२० तक सुनिश्चित रूप से आने जा रहा है जब सारे विश्व का नेतृत्व भारत के हाथों में होगा तथा भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति बन चुकी होगी।'

श्री अरविन्द द्वारा घोषित ऐसी विशिष्ट शक्ति कहाँ पर प्रकट होगी, कब होगी, इसका स्पष्टीकरण नहीं हुआ है परन्तु स्वामी विवेकानन्द इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—'उपयुक्त समय पर एक आश्चर्यजनक व्यक्ति आएगा और तब सभी साहसी बन जायेंगे'—(विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खंड, पृष्ठ २९६)।

स्वामी जो बताते है कि सामान्य नर-समुदाय में ही असाधारण सत्ता समक्ष होगी, और उसके द्वारा असंभव भी पूरा होते दीख पड़ेगा। असाधारण व्यक्ति से स्वामीजी का तात्पर्य है चेतना का अवतार—एक ऐसी सत्ता जो महाकाल का प्रतिनिधि बनकर आएगी और जिसके पदचिह्नों पर सारी मानव जाति चलेगी।

अस्तु, महायोगी ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा सांस्कृतिक चेतना के तब भी स्वरूप थे और आनेवाले युग के आविर्भाव का भी नेतृत्व करेंगे—यह सुनिश्चित है और यही ईश्वरीय विधान है। यह अलग प्रश्न है कि यह विपुल वर्चस् का महत्तम कार्य वे स्वयं सकाय होकर करेंगे अथवा किसी को अपना योग्य माध्यम बनाकर। बन्धुगण धैर्य रखें शनैः शनैः सब स्वतः प्रकट हो रहेगा!

सद्गुरु-चूड़ामणि योगिपुंगव ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा के श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमन!

['पावन प्रसाद', अक्तूबर १९९२]

महिमामय योगियों का देश ज्ञानगंज

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज

[अमर योगी-गुरु श्री देवराहा बाबाजी महाराज के सहसा तिरोधान प्रसंग में नगाधिराज हिमालय के क्रोड में अवस्थित महामहिमामय योगियों की पुण्य भूमि ज्ञानधाम या ज्ञानगंज की चर्चा बार-बार होती रही है। पूज्य महाराज जी ने कहा था—'बच्चा, मैं योगियों की टोली का सरदार हूँ और मेरा अभी ही जाना आवश्यक है।' वे उक्त तिब्बत क्षेत्रीय हिमालय के ज्ञानगंज का एक योगी भी अपने को बताते थे। इस संदर्भ में 'योगिराज देवराहा बाबा : उपदेशामृत और बोधकथाएँ' खण्ड ४ के पृ० ११ पर प्रकाशित सम्पादकीय निवेदन द्रष्टव्य है। आशा है, इस प्रसंग में महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज का 'सिद्धभूमि ज्ञानगंज' शीर्षक से 'कादम्बिनी' के एक विशेषांक में प्रकाशित यह अभिलेख भी पाठको को प्रचुर अनुरंजन देगा। यह कहना कठिन है कि पूज्यपाद ब्रह्मर्षि देवराहा बाबाजी अशरीरी हो जाने के पश्चात् उसी ज्ञानगंज में पधारे जिसकी चर्चा कविराजजी के प्रस्तुत लेख में है या वह पुण्यधाम हिमालय के तिब्बत क्षेत्र का कोई अन्य अनन्य लोक है। —सम्पादक]

ज्ञानगंज की स्थिति पर प्रकाश डालने के पूर्व यह बताना आवश्यक है कि वास्तविक ज्ञानगंज में सब कुछ की संरचना प्रकाश रूप से परिलक्षित होती है—अर्थात् वहाँ भूमि (पृथ्वी-तत्त्व) का अस्तित्व हीं नहीं है। पृथ्वी-तत्त्व का यह प्राकृतिक रूप वहाँ दृष्टिगोचर नहीं होता। एक स्वच्छ-स्निग्ध प्रकाश ही वहाँ की आधारभूत सत्ता है। और यही चैतन्य पृथ्वी तत्त्व है, जिसे यथार्थ धरित्री कह सकते हैं। इस जगत का पृथ्वी-तत्त्व जड़ रूप है, परंतु ज्ञानगंज की आधारभूता पृथ्वी चैतन्य से ओत-प्रोत होने के कारण जड़ पृथ्वी नहीं है। वह पृथ्वी रूप जड़ पदार्थ का आधार चैतन्यमय-सत्तारूप है, जिसे पृथ्वीदेवी (पृथ्वी का अतराभिमानी देवतातत्त्व) ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार वहाँ पंचमहाभूत जड़ रूप में कदापि विराजित नहीं है। वह शून्य से परे महाशून्य के अंतराल में प्रकाशित चैतन्याधिनिष्ठित अत्यंत रहस्यमय जगत है—

सत्स्थानं कोटिब्रह्माण्ड-महाशून्यम् विलक्षणम्
स्थानं तस्यापि किमपि विद्यते नैव शाम्भवी

तत्र भूमिः स्वप्रकाशामाकाशस्य तथा विधम्
जलं तथाविधं विद्धि तेजश्चैव तथा विधम्।

ज्ञानगंज के भी स्तर भेद हैं। जो व्यावहारिक ज्ञानगंज है, वह सिद्धपुरुषों का स्थान है। पारमार्थिक ज्ञानगंज की यथार्थ उपलब्धि इस जगत में महायोगी विशुद्धानंद परमहंसदेव प्राप्त कर सके थे। यह कहा जा सकता है कि सुदूरवर्ती तिब्बत में, उस पार जो ज्ञानगंज स्थित है, वहाँ भी जाना सबके लिए संभव नहीं है। जो साधक आश्रमवासियों की कृपा प्राप्त कर सके हैं, केवल वे ही उस सिद्धभूमि में जा सकते हैं।

तिब्बत में ज्ञानमठ का भी अस्तित्व है। यह ज्ञानगंज के एक बाह्य स्तर-सा है। यह मठ भी हिमालय सीमा में स्थित कहा जाता है। इस मठ में जैसा ज्ञान प्राप्त होता है उसकी तुलना में अन्य कोई स्थान नहीं है। यह किंवदंती है कि राजा विक्रमादित्य के राजकाल में सिद्धपुरी, ओमपुरी तथा ज्ञानपुरी नामक तीन पर्यटक ब्रह्मदेश तक अवस्थान करने के बाद इस गुप्त स्थान में आकर स्थायी रूप से वास करने लगे थे। यहाँ योग तथा अमृतसिद्धि विषयक तत्त्व के सम्बन्ध में ज्ञानार्जन किया जाता था।

सिद्ध भूमियों की विशिष्टता

जिस प्रकार से महायोगी विशुद्धानंद ने ज्ञानगंज का वर्णन किया है, उसी प्रकार का वर्णन रामठाकुरजी ने कौशिकी आश्रम के बारे में किया है। सिद्ध भूमियाँ अनंत हैं, जिनके बारे में कतिपय सिद्ध पुरुषों ने प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किये हैं। यह कहा जाता है कि ज्ञानगंज हमारी पृथ्वी से सम्बन्धित एक स्थान विशेष है, जो विशिष्ट शक्ति का विकास होने पर तथा यहाँ के अधिष्ठाता की अनुज्ञा प्राप्त होने पर ही दृष्टि-गोचर हो सकता है। सिद्धभूमियों की यही विशिष्टता है।

भौम ज्ञानगंज कैलाश के पार उर्ध्व में स्थित है। ज्ञानगंज, राजराजेश्वरी मठ तथा परमगुरुदेव का श्री मंदिर स्तर-विन्यास क्रम के अनुरूप विभिन्न स्तरों में स्थित हैं। ज्ञानगंज सबसे निम्नस्तर को कहते हैं। राजराजेश्वरी मठ मध्य स्तर है। परमगुरु महातपा का स्थान सर्वोच्च है। यह स्थान त्रय योगी द्वारा निर्मित है। ज्ञानगंज आदि का उन्मेष योगी की तीव्रतम योग-साधना द्वारा हो सका है, जिसका उद्देश्य है विश्वकल्याण के महालक्ष्य को पूर्ण करना।

प्रथम को गुरुधाम (गुरुराज्य) कहा जाता है, द्वितीय को ज्ञानगंज और तृतीय का कोई नाम निर्देश नहीं है। वह अव्यक्त से व्यक्तावस्था में

नहीं आ सका है। प्रथम योगभूमि रूप है। इसे आगम-शास्त्रों ने विशुद्ध अध्वा कहा है। ज्ञानगंज की सत्ता वास्तव में गुरुराज्य से अतीत है। तथ्य तो यह है कि ज्ञानगंज से लेकर ज्ञानगंज के लक्ष्य स्थल परमाप्रकृति पर्यंत जो विशाल राज्य स्थित है, वह मात्र ज्योति-रूप था। राज्य रूपेण परिणत नहीं था। वह महाखण्ड योगी के कर्म के प्रभाव से राज्यरूप में परिणत हो गया।

'ब्रह्मांड नो भेद' नामक एक ग्रंथ गुजराती भाषा में सन् १९६२ में प्रकाशित हुआ था जिसमें तिब्बत स्थित सत्य ज्ञानाश्रम अथवा ज्ञान-मठ नामक गुप्त मठ का विवरण है। इसी मठ में विक्रमादित्य के समय में तीन साधक यहाँ आये थे जो यहीं स्थायी रूप से रहने लगे। अब तक मात्र बारह साधक ही यहाँ पहुँच सके हैं। रोम देश के एक यात्री ने भी इसका नाम 'ज्ञानमठ' कहा है। एक ग्रीक पर्यटक ने भी यहाँ का वृत्तांत लिखा है। चीन देश के इतिहासकार फेंगलियान का कथन है कि दुर्गम पर्वत में यह गुप्त मठ है; यहाँ योगक्रिया की चर्चा होती रहती है। ज्ञात होता है कि कभी इस जगत का कल्याण इसी मठ द्वारा होगा। यहाँ के योगी गण जो इच्छा हो, वही करने में समर्थ हैं। एक अन्य इतिहासकार का कथन है कि यहाँ के योगियों ने वायुमंडल में एक अदृश्य दुर्ग की रचना करके इस मठ को रक्षित किया हुआ है। 'देव-दर्शन' ग्रन्थ के अनुसार अनन्त योगी नामक महाराष्ट्र के एक साधक भगवान दत्तात्रेय के आदेशानुसार योग शिक्षार्थ ज्ञानगंज गये थे।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापक जीवनशंकर याज्ञिक ने विश्वविद्यालय के ग्रंथालय में अनेक मानचित्रों में ज्ञानगंज खोजने का बहुत प्रयत्न किया था, पर उन्हें ज्ञानगंज उस मानचित्रों में नहीं मिला। कारण यह भी हो सकता है कि ज्ञानगंज संस्कृत शब्द है। तिब्बती लोग मानस सरोवर को संस्कृत नाम से नहीं जानते। वे मानस सरोवर को त्सोयवांग अथवा त्सो माफाम् कहते हैं, रावणकुंड को लांगाक्तसो और कैलाश को डेमछोक। ज्ञानगंज का जो कुछ भी तिब्बती नाम हो, वह ज्ञात नहीं है।

स्वामी विशुद्धानन्दजी द्वारा प्रदत्त विवरण

स्वामी विशुद्धानन्द कहा करते थे कि स्थूल रूप से ज्ञानगंज जाने के लिए जलंधर से गोगा तक वाहन है। उसके पश्चात् पैदल का दो माह का रास्ता है। स्थान-स्थान पर रुकने के स्थान हैं, जहाँ भोजन के रूप

में दही तथा चिवड़ा मिल जाता है। रास्ते में बरफ है—कहीं इतनी नरम कि पैर भी धँस जाते हैं। अत: वहाँ बरफ पर चलने के लिए एक प्रकार का जूता बिकता है। ज्ञानगंज में अनेक ब्रह्मचारी, संन्यासी, तीर्थस्वामी, भैरवी, परमहंस, ब्रह्मचारिणी तथा कुमारी समूह दिखायी देते हैं। वहाँ किसी बाहरी व्यक्ति को नहीं रहने देते हैं। वहाँ अनेक प्रकार से नानाविध विज्ञानों का प्रशिक्षण दिया जाता है। स्वामी विशुद्धानन्द के पैर की अंगुली बचपन में कट गयी थी। ज्ञानगंज में एक यंत्र द्वारा उस अंगुली को पुन: ठीक कर दिया गया। विशुद्धानंदजी ने एक मारवाड़ी को उसकी कन्या के साथ ज्ञानगंज भेजा था। कन्या वयस्का थी, परन्तु उसके यौवन चिह्न नहीं उभरे थे। ज्ञानगंज की यांत्रिक तथा औषधि प्रक्रिया द्वारा उसे अत्यंत रूपवती युवती बना दिया गया। जब विशुद्धानंदजी ज्ञानगंज में थे, तब वहाँ महर्षि महातपा की तेरह सौ जयंती मनायी गयी। उनकी गुरु-माता उनसे भी अधिक आयु की हैं। उन्हें लोग क्षेपा माँ कहते हैं। क्षेपा माँ मनोहर तीर्थ नामक एक स्वतंत्र स्थान में रहती हैं। इतनी अधिक आयु होने पर भी क्षेपा चिरयौवना हैं। उनके बाल काले और इतने बड़े हैं, कि उनसे ही उनके सभी अंग ढंके रहते हैं। महर्षि महातपा दैहिक दृष्टि से अत्यंत स्थूल होने पर भी तीव्रगति से चलते हैं। उनके ही समवयस्क हैं उनके गुरुभाई भवदेव गोस्वामी जो तिब्बत में ही किसी गुप्त स्थान में रहते हैं।

महर्षि महातपा के शिष्यों में सर्वाधिक शक्ति-संपन्न हैं—भृगुरामदेव। उनकी आयु ५०० वर्ष से भी अधिक है। वे योगशिक्षा देते हैं। ज्ञानगंज में विज्ञान शिक्षा परमहंस श्यामानन्द देते हैं। ज्ञानगंज में विज्ञान निर्मित आकाशयान है। वह रात्रि में चंद्रमा के समान आलोकित रहता है। ज्ञानगंज में स्वामी अभयानन्द का निवास है; वह कभी-कभी लोकालय में भी आते हैं। ये साक्षात् महेश्वर के समान हैं। इनका चित्र मेरे पास अनुरक्षित है। कभी-कभी स्वामी नित्यानन्द व उमानन्दजी भी ज्ञानगंज से भारत आते हैं। नित्यानन्द ने ही विशुद्धानन्दजी को बाल्यकाल में दर्शन देकर स्वस्थ किया था। ज्ञानगंज में एक और परमहंस ज्ञानानन्द निवास करते हैं। इन्हें कुतूपानन्द भी कहा जाता है। इनको थियोसाफिस्ट लोग कुथुमी बाबा के नाम से जानते हैं। कुथुमी बाबा मैडम ब्लैवेस्टको के गुरु थे। इनकी आयु भी ५०० वर्ष से अधिक है।

[आकलन सूत्र : 'पावन प्रसाद', नवम्बर १९९२]

विंध्याचल स्वर्गाश्रम और महात्मा हंसबाबा जी महाराज

श्री नरेश अनुरागी

परम पूज्य गुरुदेव श्री देवराहा बाबा के अशरीरी होने की सूचना आकाशवाणी से सुनकर जिस रिक्तता का अनुभव हुआ था, श्री वैरागी बाबा वर्णित प्रत्यावर्त्तन-प्रसंग पढ़कर उसे बहुत कुछ भूल गया और श्री हंस बाबा का दर्शन करने के लिए मन विकल हो उठा। करुणावरुणालय श्री बाबा की कृपा से गत जून माह में विंध्याचल स्थित स्वर्गाश्रम जाने की योजना भी बन गयी और गाँव के ही एक भक्त श्री मंढारेश्वर मंडल के साथ रविवार २८ जून (१९९१) को वहाँ के लिए हम रवाना हो गये।

हम दोनों दूसरे दिन सवेरे विन्ध्याचल स्टेशन पर थे। वहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य वृन्दावन से कम नहीं था। वृन्दावन अगर भगवान श्रीकृष्ण की लीला भूमि है तो विन्ध्याचल भगवती योग-माया का विहार स्थल। देवी के तीन मुख्य मंदिरों में हमने विंध्यवासिनी देवी मंदिर, काली खोह और अष्टभुजा मंदिर के दर्शन क्रमशः किये। पहाड़ पर अवस्थित अष्टभुजा मंदिर के बाहर लिखा था—

"नन्द गोप गृहे जाता यशोदा गर्भ संभवा।"

ऋषियों की तपोभूमि विंध्यपर्वत की श्रृंखला अभी भी तपस्वियों का साधनास्थल बनी हुई है। अष्टभुजा मंदिर के पास अनेक साधकों को हमने साधनारत पाया। वहाँ से लौटकर हम दोनों अमरावती मोड़ पर आ गये और वाहन की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ मिनटों में ही मोड़ पर एक ट्रैक्टर आकर खड़ा हुआ। ट्रैक्टर-चालक हमें ले जाने को तैयार हो गया और भाड़ा कुछ भी नहीं लिया। स्वर्गाश्रम तक जानेवाली सड़क पर वाहन-चालकों की परोपकार वृत्ति देखकर हमें नतमस्तक होना पड़ता है। उस ऋण से मुक्त होने का एक ही उपाय सूझा कि हम

भी वक्त पर नर-नारायण की निःस्वार्थ भाव से सेवा करें। इस प्रकार हमें पूज्य बाबा के उपदेशों को आचरण में उतारने का प्रत्यक्ष उदाहरण वहाँ देखने को मिला।

ट्रैक्टर को पहाड़ी की ओर मुड़ना था इसलिए लगभग एक किलोमीटर इधर ही हम दोनों उतर गये। चालक के इशारे पर हम दोनों आश्रम की ओर चल पड़े। दोपहर की प्रचंड धूप की परवाह किये बगैर हम स्वर्गाश्रम पहुँचे। वहाँ के संतों का अपनापन हम भूल नहीं सकते। यात्रा के कारण थक गये थे, इसलिए भोजन पा कर विश्राम किया।

संध्या समय हम दोनों मंच की ओर चल पड़े। रास्ता बिल्कुल अपरिचित था। गोशाला होकर कच्ची सड़क गयी है। आगे एक पोखर है जिसमें पर्याप्त जल था। उसके उपरान्त एक उपवन मिला जिसमें एक पक्का मकान भी था, किन्तु उसकी छावनी फूस की थी। हमने अनुमान किया कि इसी में श्री हंस बाबाजी रहते होंगे। फाटक बन्द था परन्तु खिड़की खुली थी। खिड़की की ओर से पुकारने पर एक अधपकी केशराशि वाले संत का दर्शन हुआ। वे बोले—मंच के पास चलो, हम आ रहे हैं।

मंच के ऊपर बड़े महराजजी श्री देवराहा बाबाजी का बघछाला पहने अशीर्वाद की मुद्रा का एक चित्र है। नीचे ठीक सामने श्री हनुमान जी की एक प्रस्तर प्रतिमा है। तथा उत्तर की ओर श्री राधा-कृष्ण की मनोहारी मूर्तियाँ हैं। कुछ देर में श्री हंस बाबा आये और सीढ़ी से ऊपर जाने लगे। हम दोनों ने चरण-स्पर्श करना चाहा परन्तु आदेश नहीं मिला। क्षणभर में बाबा मचान पर थे। परिचय के बाद बाबा बोले—छुट्टी कब लोगे ? मैंने बुधवार तक लौटने की इच्छा प्रकट की। बाबा बोले—कागज-कलम लाये हो ? हम वहाँ कुछ नहीं ले गये थे। तब बाबा ने कागज-कलम बढ़ाकर लिखने का आदेश दिया। एक पद लिखना नहीं होता था कि दूसरा पद बोलने के लिए बाबा तैयार हो जाते थे। इस प्रकार बाबा बोलते गये और मैं लिखता गया। पदों का सौंदर्य अद्भुत था। मन आह्लादित हो रहा था। बीच-बीच में बाबा पूछते—'क्यों, कैसा लगा ?' हमारे आनन्द की सीमा नहीं थी। काफी संध्या हो गयी तब विश्राम करने का आदेश मिला।

दूसरे दिन भी बाबा लिखते रहे। लिखने-लिखाने का यह क्रम देखकर मेरे साथी श्री मंडल ऊबने लगे थे और दोपहर के समय उसी दिन जाने की अनुमति माँगने लगे। तब बाबा बोले—'बच्चा! अपनी वाणी से जो एक बार बोल चुके उसका पालन करना चाहिए। अगर उसी दिन बोलता कि मंगलवार को जाना है तो छुट्टी मिल जाती। बाबा के इस कथन में कितना सुन्दर जीवनोपयोगी उपदेश था कि बिना सोचे-समझे वाणी नहीं निकालनी चाहिए और जो वचन निकल जाय उसका पालन करना चाहिए। उसी समय मैंने कहा कि श्री मंडल की मनोकामना पूरी नहीं हो रही है इसलिए ये ऊब रहे हैं। बाबा बोले—क्या चाहते हो? मैंने कहा—कुछ साधना सम्बन्धी जानकारी लेनी है। बाबा से आश्वासन मिलने पर हम दोनों आश्रम लौट आये।

संध्या समय जब बाबा के दर्शन में निकले तो अनेक शुभ शकुन हुए। गोशाला के आगे बाहर में कुछ गायें चर रही थीं और एक गाय बछड़े को दूध पिला रही थी। सरोवर के आगे बढ़ने पर बाँये नीलकंठ पक्षी का दर्शन हुआ। और मचान की ओर मुड़ रहे थे कि बाबा की झोपड़ी के बाहर एक मयूर को देखा। मुझे निश्चय हो गया कि आज हमारी मनोकामना अवश्य पूरी होगी।

बाबा बोले—क्या पूछना है? तो श्री मंडल ने जिज्ञासा-पूर्ण निवेदन किया—साधना कैसे करेंगे? बाबा ने सिद्धासन में बैठकर मंत्र जाप करते हुए बड़े महाराज जी का ध्यान त्रिकुटी में करने को कहा। मैंने पूछा कि मंत्र तो राम का मिला है परन्तु आसक्ति कृष्ण के प्रति है, सो क्या करें? बाबा बोले कि एक देवानन्द भक्त आया था, उसकी भी यही समस्या थी। इसका समाधान यही है कि विधिवत्, आसन लगाकर मंत्र-जाप करते समय गुरु की छवि का ध्यान किया जाय क्योंकि वे श्रीकृष्ण-स्वरूप को प्राप्त हुए हैं। शेष समय में नाम-जप करना विधेय है।

श्री बाबा बोले कि उन्हें यह नाम-मंत्र स्वयं श्री कृष्ण ने दिया है। इसे अनवरत जपने से सहज ही सिद्धि प्राप्त हो जायेगी। श्री मंडल बोले कि उन्हें मंत्र बड़े महाराज जी से नहीं श्री वैरागी बाबा से मिला है, इसलिए फिर से श्रीमुख से मंत्र दिया जाय।

बाबा—वैरागी में और मुझमें कोई अंतर नहीं है।

मैं—बाबा, कुछ योग साधना बताइये।

बाबा—गृहस्थाश्रम वाले को हठयोग के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। उसके लिए भक्तिमार्ग ही सुगम है। अनवरत भगवान की प्रिय छवि का ध्यान और मन से उनके नाम का जाप करते रहने से सहज ही सिद्धि मिल जाती है।

मैं—बड़े महाराज जी ने समाधि लगाकर ब्रह्म-रंध्र का भेदन करते हुए शरीर का त्याग किया; हठयोग की क्रियाओं के जानकार वे थे तभी ऐसा कर सके।

बाबा—वे तो साक्षात् ईश्वर के अवतार थे। योग के परम ज्ञानी होकर भी वे भक्ति का ही उपदेश देते थे।

मैं—बाबा, हिमालय-यात्रा के बारे में कुछ जानकारी दीजिए।

बाबा—बैरागी ने जो 'पावन प्रसाद' में प्रकाशित कराया है वह सत्य है।

मैं—अच्छा बाबा, 'अखंड ज्योति' स्मृति विशेषांक में बड़े महाराज जी का कथन छपा है कि हिमालय पर्वत पर ऋषियों की एक टोली है जिसकी योजना युग-परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार करने की है। उन्हीं में से बड़े महाराज जी भी एक हैं। इस सम्बन्ध में कुछ कहिए।

बाबा—और यह नहीं सुना है कि इसी मंच से दिव्य ज्ञान का प्रसार होगा—ऐसा बाबा बोल चुके हैं? भारत के अध्यात्म-ज्ञान की रक्षा और उत्कर्ष के लिए वे १५ वर्ष के अन्दर फिर आयेंगे।

मैं—बाबा, 'पावन प्रसाद' में आपकी उक्ति छपी है कि 'बच्चा, बीज पड़ गया है चौदह वर्ष में तैयार हो जायेगा, इसका क्या अर्थ हुआ।

बाबा—बच्चा, ऐसा समझो कि इस घट में प्रवेश हो चुका है। चौदह वर्ष में यह स्पष्ट लक्षित होने लगेगा। उसी क्रम में बाबा के आदेश से मंच पर मुझे देख रहे हो।

श्री राधा-कृष्ण की लीलाएँ

वार्त्ता के क्रम में पता चला कि यहाँ राधा-कृष्ण की लीला होती रहती है। जब भक्त आते हैं और काफी धूप रहती है तो श्रीकृष्ण छतरी लगवा देते हैं। एक बार कुछ भक्त आये हुए थे। काफी गर्मी थी। तो राधा कृष्णजी से पूछने लगीं कि छतरी कब लगेगी? कृष्ण ने कहा कि आश्रम से प्रसाद पाकर आते-आते लग जायेगी—और वही हुआ। जब वे लोग पुनः उपस्थित हुए तो आकाश में काली घटा छा गयी। भक्तों ने अपूर्व शांति महसूस की।

आश्रम के मन्दिर से माखन लाकर भगवान कृष्ण का यहाँ भोग लगता है।

एक बार श्री राधा की चुनरी काँटे में फँस गयी। राधा लगीं चुनरी छुड़ाने। उधर से श्याम सुन्दर आये और बोले कि चुनरी छुड़ा देते हैं। इसपर राधा बोलीं कि देखिए, एक खरहा दौड़ा आ रहा है—आगे गड्ढा है, वह कहीं गिर न जाय। श्याम ने खरहे को गड्ढे में गिरने से बचा लिया और स्वयं गड्ढे में कूद गये। इस प्रकार भगवान स्वयं खतरा मोल लेकर जीवों की भलाई करते हैं।

ऐसी लीलाओं का वर्णन बाबा इस स्फूर्ति से ब्रजभाषा में करते हैं कि लगता है जैसे सामने में घटना घट रही हो।

बातें करते काफी अंधकार छा गया और हम आश्रम लौट आये। फिर रात में बाबा मन्दिर की छत पर दिखाई पड़े और पुकारकर बोले—यहाँ जिनकी इच्छा से आये हो उनका काम पूरा करके ही लौटना। मुझे वैरागी बाबा द्वारा लिपिबद्ध श्री राधाकृष्ण लीलामृत की कॉपी नकल करने को मिली थी। मैंने अपना निश्चय सुना दिया कि जबतक नकल करने का काम पूरा नहीं हो जायेगा हम नहीं लौटेंगे।

बुधवार को सबेरे स्नान कर हम मचान तक जाते कि बाबा स्वयं स्वर्गाश्रम आ चुके थे। पुकार कर बोले—'बच्चा, यहाँ सूक्ष्म सत्ता-धारी की इच्छा के बिना कुछ नहीं होता। देखो, श्री मनराखनलाल जी द्वारा प्रेषित टंकित पदों की डाक आयी है। अब सोचो तुम्हारे रहते यह क्यों आयी? जगन्नाथदास जी नकल कराने मिर्जापुर जा रहे हैं। उसकी एक प्रति लेकर ही घर जाना, ताकि घर से टीका करके भेज सको।'

बाबा चल दिये। हम दोनों प्रदत्त कार्य में जुट गये। लिखते-लिखते मेरी आँखें दुख गयी थीं; इसलिए दूध की इच्छा हो रही थी—और उस दिन दोपहर को बाबा से कुछ शङ्का-समाधान हेतु गये तो प्रसाद में लड्डू और दूध मिला! आत्म-तरंग के संप्रेषण-भाव की अनुभूति कर मैं दंग हो रहा था। फिर कार्य कुछ ऐसी गति से हुआ कि पूरी कॉपी देखते-ही-देखते समाप्त हो गयी। प्रतिज्ञा पूरी होने से मैं खुश था। दोपहर को नवीन फुटकर कागज भी नकल करने को मिले थे। परन्तु यह अतिरिक्त कार्य सम्पन्न करके इसे घर से भेजने का निश्चय कर लिया था। मैंने इसकी सूचना भी बाबा को दे दी थी।

संध्या समय हम दोनों पुन: बाबा का दर्शन करने गये। वहाँ पटना से एक अविनाश भक्त आये थे जो आई० ए० एस० की परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिए आशीर्वाद चाहते थे। उन्होंने चरण-स्पर्श की चाह प्रकट की और बाबा ने जब एतदर्थ मंच से चरण बढ़ाया तो वह छवि अभी तक विस्मृत नहीं हुई है। बड़े महाराजजी की ही अनुभूति उस छवि में हुई।

मैं स्वयं इसलिए भी जल्दी छुट्टी चाहता था क्योंकि लालसा वहाँ से काशी होकर बाबा विश्वनाथ का दर्शन करते हुए ही लौटने की थी। बाबा ने एक दिन तो कहा था कि बाबा विश्वनाथ का दर्शन हृदय में करो। श्री मंडल ने भी हामी भर दी थी, परन्तु मुझे तो शिव जी के त्रिशूल पर स्थित काशी की गरिमा देखनी थी जिस ललक को वृन्दावन यात्रा से लौटते वक्त मैं पूर्ण नहीं कर सका था। बाबा ने काशी जाने की अनुमति दे दी और घर के लिए पर्याप्त मात्रा में पावन प्रसाद भी प्रदान किया। उन्होंने काशी स्थित श्री देवराहा बाबा आश्रम का पता भी बता दिया था।

श्री द्वारकाधीश मन्दिर, काशी

लगभग ८ बजे रात को विंध्याचल से काशी के लिए हमने प्रस्थान किया। कई व्यक्तियों ने कहा कि रास्ता खराब है, अंधेरी रात है इसलिए नहीं जायँ, कोई अप्रिय घटना घट सकती है, परन्तु हमें बाबा के आशीर्वाद का भरोसा था। पुजारी जी ने हिम्मत दी कि यदि काशी जाना है तो सबेरे देर हो जायेगी। अत: हम सबसे

विदा माँगकर चल पड़े। सड़क पर एक भी वाहन नहीं मिलता था। दो ट्रक पार हुए परन्तु कोई नहीं रुका। एक बार तो हम दोनों हारकर आश्रम की ओर ही लौटने लगे; परन्तु इस बार जो ट्रक आया वह हाथ देने पर रुक गया—और उससे हम दोनों सकुशल विंध्याचल अमरावती मोड़ पर आ गये। वहाँ से हम बिड़ला धर्मशाला गये जहाँ श्री जगन्नाथ दास जी ठहरे हुए थे। सबेरे उनसे लीलामृत के पदों को फोटो कॉपी लेकर काशी के लिए हमने यान पकड़ा। ११ बजे के लगभग काशी पहुँचकर भागीरथी में हमने स्नान किया और बाबा विश्वनाथ का दर्शन कर फिर अस्सी घाट अवस्थित द्वारकाधीश मन्दिर पहुँचे। वहाँ प्रसाद पाकर श्री रामबालक दास ब्रह्मचारी जी का सान्निध्य लाभ किया और फिर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित नवनिर्मित विश्वनाथ मन्दिर, संकटमोचन आदि का दर्शन कर घर (अंग क्षेत्र, बिहार) के लिए प्रस्थान किया।

इस पावन तीर्थ यात्रा से हमारे समक्ष यही तथ्य प्रकाश में आया कि विंध्याचल का स्वर्गाश्रम अगर सिद्धों की भूमि है तो काशी के महायोगी श्री देवराहा बाबा से सम्बन्धित द्वारकाधीश मंदिरादि स्थान साधकों के पुण्य क्षेत्र हैं। विंध्याचल स्वर्गाश्रम पर गोसेवा हेतु पारिश्रमिक पर मजदूर रखे गये हैं। वहाँ वैसे साधक संन्यासियों का अभाव है जो साधना के साथ-साथ गो-सेवा तथा आश्रम के रख-रखाव के कार्य भी सम्भाल देते। इधर काशी में मन्दिर तथा आश्रम की सफाई, स्वच्छता एवं सुव्यवस्था देखकर परम तोष के साथ विस्मय भी होता है। यहाँ संध्या समय भगवत्कथा वाचन होता है तथा इसी क्रम में एक युवा संन्यासी द्वारा भगवान की वंशी-लीला पर व्याख्यान सुनकर मैं भाव-विभोर हो गया। परन्तु वे तो 'कागद की लेखी' पंक्ति का विश्लेषण कर रहे थे जबकि विंध्याचल के श्री हंस बाबा—'आँखिन देखी' लीलाएँ सुनाते हैं।

विंध्याचल आश्रम की अमित संभावनाएँ : श्री देवराहा बाबा योगाध्यात्म महाविद्याल

काशी के आश्रम के पास भूमि कम है जबकि विंध्याचल आश्रम के पास भूमि बहुत है। इसका विकास वृन्दावन के समान किया जा सकता है। वहाँ गायें हैं ही, वन-उपवन का विस्तार और भी किया

विंध्याचल का स्वर्गाश्रम स्वर्गलोक है

श्री मनिक राज सिंह, अध्यापक, पनदाहा, लालगंज, जनपद आजमगढ़ से उनका निम्नलिखित अनुभव प्रकाशनार्थ प्राप्त हुआ है।

(१) विन्ध्य-स्थित आश्रम स्वर्गलोक है।

(२) विन्ध्य-स्थित बाबा हंसदास जी महाराज ही साक्षात् ब्रह्मर्षि योगिराज देवराहा बाबा हैं।

(३) उनके लिए संबोधन 'श्री देवराहा माधव' मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है।

(४) आगे बढ़ने पर फाटक (गेट) ब्रह्मा का लोक है।

(५) मचान बाबा का परम धाम है।

अपने परम पूज्य गुरु भाइयों से मेरा निवेदन है कि वे अपने कल्याण हेतु बाबा के मचान तक अवश्य जायें। साथ ही अनुरोध है कि उन्हें विन्ध्य-स्थित आश्रम की गायों की कुछ सेवा यदा-कदा अवश्य करनी चाहिए।

अकाय बने परम पूज्य ब्रह्मर्षि बाबा के विन्ध्य पर्वत स्थित स्वर्गाश्रम को बार-बार नमन। ['पावन प्रसाद', नवम्बर १९९२]

विंध्याचल स्वर्गाश्रम और महात्मा हंसबाबाजी (गत पृ० का शेषांश)

जा सकता है। संभव हो तो विंध्याचल आश्रम में "श्री देवराहा बाबा योगाध्यात्म विश्वविद्यालय" भी चलाया जा सकता है तथा देश में बाबा से सम्बद्ध जितने आश्रम हैं वहाँ 'श्री देवराहा बाबा योगाध्यात्म महाविद्यालय" खोलकर उन्हें विन्ध्याचल से सम्बद्ध किया जा सकता है। इससे लोक-मंगल की साधना होगी और युग-निर्माण कार्य को आधार मिलेगा। भक्ति-मार्ग में भी योग की कतिपय क्रियाएँ आवश्यक हैं। योग से ही चंचल मन को स्थिर किया जा सकता है एवं दैहिक-दैविक-भौतिक तापों से भी मुक्त हुआ जा सकता है। कलि-युग के तिरोधान और सतयुग के आविर्भाव की क्रिया को सहज रूप देने के लिए योग का प्रसार जन सामान्य तक होना ही चाहिए।

सद्गुरु-चूड़ामणि श्री देवराहा बाबा जी महाराज की जय !

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये !



[सूत्र ; 'पावन प्रसाद', नवम्बर १९९२]

ऋषि परम्परा के संत श्री हंसबाबा जी

श्री रामविरागी दास जी (श्री वैरागी बाबा)

प्राचीन ऋषियों की जीवन-संहिता का अध्ययन करने से लगता है कि उनके भू-लोक में अवतीर्ण होने का एकमात्र कारण था जीव की समग्र उन्नति के लिए समर्पित भाव से कर्म करते हुए ब्रह्म-परायण बने रहना। उनके जन्म लेने का एकमात्र प्रसंग होता था—परोपकार करना। गुरुकुल में ही उनको विरक्त जीवन मिल जाता था। शरीर और आत्मा के आधारगत भेद उनको स्वाध्याय काल में ही स्पष्ट हो जाते थे जिस कारण संसार उन्हें भ्रान्त नहीं कर सकता था।

ऋषि-कुल के जीवन का मुख्य लक्ष्य धर्म का प्रचार होता था। धर्म के बिना यह मानव जीवन क्या है, इसका उद्देश्य क्या है, सो जाना नहीं जा सकता। जीवन के इसी सत्य का हमारे प्राचीन ऋषि-कुल विशेष धर्मसंघ बनाकर अनुसंधान करते और उन प्रसंगों के निष्कर्ष को अपने व्यवहार में लाने के बाद लोक में प्रयुक्त कराते थे। ऋषि-कुल की वाणी थी—धर्मंचर, सत्यंवद।

धर्म के अपनाने से अंतःकरण शुद्ध होता है। सत्य बोलने से असत्य का निराकरण होता है और सदाचार की शुद्ध वृत्ति अपने में पैदा होती है। यदि जीवन में ये दोनों शिक्षाएँ ठीक रीति से उतर गयीं तो आदमी अपना भला तो कर ही सकता है, स्वस्थ समाज की रचना के साथ-साथ राष्ट्र की सभी समस्याओं का हल भी प्राप्त कर ले सकता है।

बीसवीं सदी के वेद-स्वरूप ऋषि श्री देवराहा बाबा जी ने इस पुरातन आर्ष व्यवस्था को अपने में उतारा था और संसार में ऋषि-सिद्ध योग विभूता के निदर्शन के हेतु भी उन्होंने अपने को माध्यम बनाया था। बुद्धि-जीवियों को ऋषिवर ने दिखाया था कि किस प्रकार पूर्ण संनातन सत्य अपने में प्रकट किया जा सकता है।

प्रकृति की शक्ति से परे एक परमेश्वर की शक्ति होती है, जिसे दैवी शक्ति कहते हैं। यह शक्ति जिस महापुरुष में उत्पन्न होगी, वही धर्म का और मानव समाज का नेतृत्व कर सकता है। ब्रह्मर्षि देवराहा

बाबा के परम कृपापात्र एवं उनके ही शब्दों में 'सिद्ध योगी' श्री हंसबाबा प्राचीन ऋषि-परम्परा को अक्षुण्ण रखने के सत्कार्य में आज के लोक जीवन में विशेष रूप से चर्चित हो रहे हैं। ब्रह्मर्षि बाबा के अकाय होने के बाद श्री हंसबाबा जी ही अब उनकी सिद्ध परम्परा में प्रतिष्ठित माने जा रहे हैं। ये बड़े महाराज जी की प्रतिमूर्ति के रूप में काया और ज्ञान दोनों दृष्टियों से व्यक्त हो रहे हैं।

ब्रह्मर्षि बाबा जिस अतीत की ऋषि परम्परा की वैदिक थाती को अपने में समेटे लिए आ रहे थे, उनकी ऐहिक लीला के विराम के बाद उसकी परिणति क्या होगी—यह सोचा नहीं जा सकता था—आध्यात्मिक सम्प्रेषण किंकर्तव्यविमूढ जैसा लगता था। वेदों के गायक उन दिगम्बर ऋषि के गुरु-गम्भीर स्वर भारत-भू पर फिर उतर सकेंगे या नहीं—इसी तर्क-वितर्क के कुहासा भरे पथ पर हम थके हुए से चलने लगे थे। उसी समय मानस लोक के क्षितिज पर अर्द्ध-दिगम्बर जटा-जूटधारी, हू-ब-हू ब्रह्मर्षि के रूप से मिलते रूप में, एक ऋषि अपने दिव्य ज्ञान की रश्मियाँ लुटाते हुए सम्मुख हुए। दीर्घ एवं कठोर तप के प्रभाव से इस ऋषि की काया भी सिद्धि से जगमगा रही थी। इनके अनासक्त-विरक्त भाव को देखकर यह स्पष्ट लक्षित होता था कि पूर्वेतर जन्मों की तपस्या तथा अपने महागुरु से प्राप्त कृपा-पुंज दोनों के योग ने ही इस दिव्य वपु तपस्वी को उस महान ऋषि का रूप प्रदान किया है।

श्री हंसबाबा जी महाराज में ऋषिवत् शक्ति तथा आध्यात्मिक तेज का दर्शन पिछले साल-दो-साल के भीतर से ही होने लगा है। पहले इन्हें देखकर एक सामान्य तपस्वी महात्मा समझा जा सकता था। परन्तु ब्रह्मर्षि के अकाय होने के बाद इनमें विलक्षण अलौकिक दिव्य-ज्ञान का उदय एक चमत्कार के रूप में शुरू हुआ। यह पराज्ञान की बात लोकोत्तर होने की वजह से सर्वसाधारण की सामान्य पहुँच में कुछ आश्चर्य और शंका की बात बनी रही, परन्तु इनके भीतर से आत्म-ज्ञान के गूढ़ अनुभव तथा गीता और रामायण की तरह के तत्त्वज्ञान भी मिलने लगे। इस अनहोनी घटना को दैवी शक्ति के दान के सिवा और कहा ही क्या जा सकता है? शनैः-शनैः इनकी ज्ञानावस्था का विकास अपने-आप में होता गया और कुछ ही दिनों में इन्होंने बड़ी-संख्या में अध्यात्म तथा तत्त्व-ज्ञान की व्याख्या के रूप में संस्कृत तथा हिन्दी में अध्यात्म प्रेरणा देने वाली बहुमूल्य सूक्तियों की रचना आरंभ की। यह प्रतिभा आत्मा

की प्रतिभा है और आत्मा की रश्मि को जगमगाने वाला गुरु होता है। गुरु अपनी दिव्य शक्ति के माध्यम से शिष्य के भीतर की योग्यता को जब निरख-परख लेता है, तब गुरु उस गुरुमुख शिष्य को ईश्वर का अनन्त ज्ञान-भंडार देकर उसे अपने तुल्य बना देता है। संत कबीरदास का कथन है—

गुरु समान दाता नहीं याचक शिष्य समान।
तीन लोक की संपदा सो गुरु दीन्ही दान॥

ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा जी ने श्री हंस बाबा में अपने को देखा। हंस बाबा की काया में एक दिव्य चेतना जगमगा रही थी—यदि गुरु थोड़ी-सी कृपा की वर्षा कर दें, तो उस काया के भीतर ईश्वर की दिव्य शक्ति का अवतरण हो सकता है। और दानी महागुरु ने इस तपःपूत शिष्य को अपनी अमोघ योग विभूति प्रदान की।

सद्गुरु देव की शक्ति अजेय हुआ करती है। जड़-चेतन को प्राण देनेवाली उस गुरु-शक्ति के चैतन्य-प्रवाह में बहते हुए श्री हंसबाबा जी अपने सद्गुरु देव की अगम-अपार महिमा को अपने अनुभवों को लेखनी से इस प्रकार लिपिबद्ध कर रहे हैं—

राम कृष्ण दो रूपहैं, एकहिं ब्रह्म समान।
या में वा में भेद नहिं, एकहिं ज्ञान प्रदान॥

प्रेम प्रेम के रूप में, राम कृष्ण का रूप।
सब रूपन में एक से देखिय एकहि रूप॥

गुरु ही ब्रह्म-स्वरूप हैं, कण-कण में हैं एक।
याही को सत मानि के तुम होइ जइयो एक॥

श्री हंस बाबा का उपासना मार्ग

अध्यात्म जगत के ज्ञान का कहीं अन्त नहीं है। इस गुप्तज्ञान तथा तत्त्वज्ञान के निरूपण के अवसर पर विद्याभ्यास के कारण प्रायः सदा से तर्क-वितर्क था वाद-विवाद चलता आ रहा है। यद्यपि कि विद्या से और अध्यात्म से कोई तुलना नहीं है, परन्तु साधारण ज्ञान होने की वजह से अधिक लोग प्रतिपाद्य विषयों के ज्ञान को छोड़कर अपने मतों की पुष्टि में ही जुट जाते हैं और उल्टा-सीधा प्रमाण देकर जो सत्य यथार्थ है उस पर पर्दा डाल देते हैं। ऐसी परम्परा चल पड़ने के कारण

सत्य धर्म तथा अध्यात्म को ठीक तरह से समझने में भयंकर कठिनाई हो गयी है। मत मतान्तर के भ्रान्त सिद्धान्तों से वास्तविकता छिप गयी है।

भारतीय उपासना पद्धति में राम और कृष्ण के रूप में परमेश्वर के सगुण रूप की उपासना विशेष रूप से प्रचलित है। इस प्रकार परमेश्वर से अपने आप को जोड़ने के लिए तीन ही इष्ट देवों का चुनाव लोग सगुण रूप में करने के अभ्यासी है—प्रथमतः राम और कृष्ण तथा उन्हीं के साथ-साथ सद्गुरु। बल्कि शास्त्र सम्मत सिद्धान्त यही है कि अध्यात्म जगत् में राम और कृष्ण से भी बढ़कर गुरु का स्थान है। स्वयं राम और कृष्ण ने भी आत्म-ज्ञान तथा ईश्वर-ज्ञान की प्राप्ति के लिए गुरु को ही अधिकारी माना है तथा अपने से ऊँचा स्थान दिया है।

ऋषि हंस बाबाजी तीनों इष्ट देवों से—अर्थात् राम, कृष्ण तथा गुरु से—एक रूप हैं। वे अपने रचित पदों में इस सत्य का उद्घाटन करते हुए कहते हैं—

गुरु ही ब्रह्मस्वरूप हैं कण कण में हैं एक।
वाही एक को मानि के, तुम हो जइयो एक ॥
गुरु के ही इक ज्ञान में, सर्वस ज्ञान है एक।
याही एक को जानिके, देखो एक में एक ॥
धन्य धन्य वे शिष्य हैं, गुरु भेंट्यो इक पूर्ण।
एकहिं एक के पूर्ण से, वोऊ हो गये पूर्ण ॥

श्री हंस बाबा ब्रह्म सम्बन्धित द्वैत मत की शंकाओं का समाधान कर साधकों के लिए गुरु-उपासना को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। जब तक राम-कृष्ण की अलग अर्चना होगी तब तक उनमें तथा गुरु में भेदमूलक रेखा बनी रहेगी; लेकिन जब मन इन्द्रियों की पकड़ से तटस्थ हो जायेगा उस अवस्था में राम-कृष्ण तथा गुरु ही नहीं यह सर्व संसार ब्रह्म प्रतीत हो उठेगा—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म।" अतः राम-कृष्ण के वास्तविक ईश्वर रूप को अनुभव में हृदयंगम करना गुरु की कृपा रूपी प्रसाद के बिना असंभव है। किसी दिन श्री हंस बाबा भी सद्गुरु की कृपा के लिए प्राण ही देने को उद्यत हो उठे थे। परन्तु सनातन मत समर्थक ईश्वर ने इनके हठ को रोककर इन्हें श्री सद्गुरु के रूप में स्थित श्री देवराहा बाबाजी के पास भेजा।

सद्गुरु के चाहे बिना शिष्य के लिए कुछ भी कर पाना कठिन है। संसार के कर्म चाह करने से होते हैं परन्तु अध्यात्म जगत को छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी उपलब्धि गुरु की इच्छा के बिना, गुरु को प्रसन्न किये बिना कदापि संभव नहीं होती। चाहे शरीर का ज्ञान करना हो अथवा बुद्धि तथा आत्मा का, सबके बीच के द्वार गुरुदेव ही खोलते हैं।

ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा ने उस समय के हंसदासजी और आज के हंसबाबा से कहा था—'बच्चा हंस, तुम अभी हाकिम नहीं बन सकते तो चपरासी तो बन ही सकते हो! अभी विंध्याचल जाकर ठाकुर जी के लिए ईंट-पत्थर जोड़ो।"

गुरु-वाक्य ब्रह्म-वाक्य होता है। जो इन्द्रियों के वश में हैं उनके सामने यदि ब्रह्म भी रहें तो लोग उन्हें साधारण आदमी से अधिक महत्त्व नहीं देंगे। हंसबाबा ने अस्थि-चर्म में छिपे हुए ब्रह्म को पहचाना और उस वाणी को तूफान-आँधी के बीच रहकर, सेवक बनकर, शिष्यवत् निभाया। उस कठोर तपस्या और सर्व समर्पण का फल ही कहिए कि ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा को अपना विभु लोक छोड़कर हंसबाबा के मानस-लोक की धरती पर अजस्र ज्ञान-गंगा के साथ उतरना पड़ा। वे कहते हैं—

गुरु प्रताप से आप में रहा न कोई और।
औरन को हम क्या कहें, गुरु बतायो ठौर॥

श्री हंस बाबा साफ कहते हैं कि यह सिर्फ गुरुदेव के प्रताप के सिवा और कुछ नहीं है। उनके भीतर से ज्ञान-विज्ञान का अनन्त स्रोत जो प्रवाहित हो रहा है, और चंद दिनों के भीतर ही भक्तों के हृदय में उनके प्रति श्रद्धा की जो बाढ़ उमड़ उठी है, वह सब हंसबाबा की तपस्या का वरदान नहीं है वरन्—इन सभी संस्तुतियों में श्री बाबा ही परोक्ष से लीला कर रहे हैं। इनके रोम-रोम में सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा की आभा छायी हुई है।

सच्ची उपासना का फल

शास्त्र का यह कथन है कि भगवान भक्तों के वश में होते हैं। भक्त अपने प्रेम की डोर में भगवान को बाँधते आये हैं। संत तुकाराम

नरसी मेहता, रमा बाई, मीरा बाई आदि ने तो भगवान को बाँधा ही था। आज इस कलि के अंधकार में भी भक्त भगवान को प्रेम में बाँधकर अपने अधीन कर सकता है। श्री हंस बाबाजी महाराज उसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ब्रह्मर्षि बाबा ने दिव्य ब्रह्मज्ञान देकर हंसदासजी को हंसबाबा कैसे बनाया, यह इन्हीं की अपनी वाणी द्वारा सुनें—

पृथ्वी के संसार देख, बाबा ढंग देखायो है।
हंस रूप में आके अपनी कीरति जग फैलायो है॥
तेरी विनय सुनाय के दियो हैं नाम बताय।
चिंता सारी छाड़ि के, भजियो देवराहाय॥
देवराहा हैं आ गये, हंस रूप में एक।
वाही एक के एक में देखिय वाही एक॥

भगवान से नाता जोड़कर सब भगवान बन जायँ—ऐसी बात नहीं है। भगवान् की अहैतुकी कृपा जिस प्रकार हो जाती है उसको वे अपना पद तक दे डालते हैं। सुदामा को जिसने अपना राज दे दिया उनकी कृपा का क्या कहना। स्वामी रामतीर्थ ब्रह्मावस्था को प्राप्त होने पर जनसाधारण से अपने को राम बताते थे। उस अवस्था को सर्वातीत और सर्वव्यापक कहा जाता है। श्री हंस बाबा जन मानस की शंकाओं का निवारण कर श्री देवराहा बाबा के रूप का बोध अपने में कराते हुए कहते हैं—

हंस रूप में आयकर निज कीरति फैलाय ·· ।
देवराहा बाबा भये हंस रूप से एक।

अत: विन्ध्यमंच से अब हंस बाबा नहीं बोल रहे हैं बल्कि हंसबाबा के काया-मंदिर में देवाधिदेव श्री देवराहा बाबा ही अनेक आध्यात्मिक तथा धार्मिक और राष्ट्र तथा समाज के लिए हितकारी उपदेशों से कलियुग की घोर तमिस्रा में ज्ञान का प्रकाश प्रज्वलित कर रहे हैं।



[सूत्र: 'पावन प्रसाद', जनवरी १९९३]

विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम के श्री हंस बाबा जी महाराज

श्री मलय बी० दत्त

परमपूज्य श्री हंस बाबा के नाम का सर्वप्रथम परिचय मुझे जून १९९१ में मिला। परम पूज्य देवराहा बाबा जी के एक प्रिय भक्त ने मुझे लिखा कि श्री हंस बाबा एक परम सिद्ध पुरुष हैं जो विन्ध्याचल निकटस्थ स्वर्गाश्रम पर रहते हैं और उन्होंने मुझे उनके दर्शन की प्रेरणा दी। तथापि वहाँ जाने का अवसर मैं तत्काल नहीं जुटा पाया।

बाद को 'पावन प्रसाद' के जनवरी १९९२ के विशेषांक में 'योगिराज देवराहा बाबा प्रत्यावर्त्तन प्रसंग' शीर्षक लेख जब मैंने पढ़ा तो मेरे अन्तर्मन में श्री हंस बाबा जी के दर्शन की उत्कंठा और भी जगी तथा अन्ततः विगत ११ अप्रैल, १९९२ (राम नवमी) को मैं विंध्याचल आश्रम पर दोपहर के समय पहुँच गया। वहाँ स्वर्गाश्रम पर कुछ सुस्थिर हो कर जब पूज्य देवराहा बाबा जी वाले मंच के समक्ष मैं उपस्थित हुआ तब दो परिवार पहले ही से वहाँ श्री हंस बाबा के प्रवचन सुन रहे थे। कुछ ही समय में मैंने अपने को श्री बाबा के बहुत निकट अनुभव किया, मानो वे मुझे बहुत पहले से ही जानते हों। मैंने स्वयं को बड़ी शान्ति और आनन्द की दुनिया में पाया। श्री बाबा ने मुझे आश्रम पर ही ठहर जाने को कहा।

आश्रम पर तीन दिन बीतने का मुझे एहसास ही नहीं हुआ। उनके प्रवचन सुनना रहा और उनके द्वारा बोले गये सूत्रों का अनुवाद करता रहा।

श्री हंस बाबा भी पूज्य देवराहा बाबा जी की भाँति विषय तुरन्त बदल देते हैं। और कभी-कभी प्रासंगिक श्लोक बोल देते हैं जिनमें श्रोता को अपने प्रश्नों का उत्तर स्वतः मिल जाता है। ऐसा भी होता है कि कभी वे किसी दूसरे से बात करते होते हैं तथा उसमें ही प्रश्न-कर्ता को उत्तर मिल जाता है।

हंस बाबा जी से बातचीत के बीच जो तथ्य मैं जुटा पाया वे संक्षेप में इस प्रकार हैं। लगभग २८ वर्ष पूर्व श्री हंस बाबा को देवी सरस्वती के दर्शन हुए। तब वे स्वयं ईश्वर के दर्शनों के लिये आतुर हो गये। उन्हें स्वप्न में

ज्ञात हुआ कि पूज्य देवराहा बाबा ही उन्हें ईश्वरीय सत्ता का दर्शन करा सकते हैं। अतः वे तुरन्त वहाँ आ गये। घोर तपस्या आरम्भ हुई और अन्त में १९७५ की एक रात्रि को उनके जीवन में एक अद्भुत घटना घटी। पूज्य देवराहा बाबा जी वृन्दावन में थे तथा श्री हंस बाबा विन्ध्याचल में। उस अनोखी रात को देवराहा बाबा जी उनके समक्ष छाया रूप में प्रकट हुए और बाद में उनके ही शरीर में विलीन हो गये। पूज्य देवराहा बाबा की योगलीला की यह आश्चर्य-चकित करने वाली घटना केवल दो व्यक्तियों ने देखी—एक स्वयं श्री हंस बाबा ने तथा दूसरे एक संत ने जो अब पार्थिव शरीर छोड़ चुके हैं। श्री हंस बाबा को उनके गुरु मिल गये। वे कहते हैं—'गुरु को पाना ही ईश्वर को पाना है, दोनों में कोई अन्तर नहीं।' श्री हंस बाबा जी पूज्य देवराहा बाबा के पार्थिव शरीर के रहते हुए उनसे निरन्तर भौतिक और आध्यात्मिक सम्पर्क बनाये रखते थे।

पूज्य देवराहा बाबा जी कहा करते थे—'राम मेरे अन्दर हैं।' हमारे सभी आचार्यों और सन्तों का यही उपदेश है कि नाम और नामी, आत्म-साक्षात्कार की पराकाष्ठा पर, एक हो जाते हैं। सच्चा वैष्णव पूर्णता प्राप्त करने के पश्चात् विष्णु भगवान् से अभिन्न हो जाता है। श्री देवराहा बाबा भी उन्हीं में से एक थे तथा उनके वह शिष्य, जिनमें उनका प्रत्यावर्तन हुआ, वस्तुतः उनसे अभिन्न ही हैं। हंस बाबा ने भी स्वयं भगवान् को पा लिया है। उनकी बातें तथा उनके हाव-भाव यह प्रकट करते हैं कि वे सदैव देवराह बाबा की सन्निधि में ही रहते हैं। उनके कार्य तथा व्यवहार बहुत कुछ देवराहा बाबा जी से मिलते हैं। यह सब कुछ देखने और पाने का सुअवसर केवल मुझे ही प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि ऐसा ही अन्य कई भक्तों ने अनुभव किया। इस सम्बन्ध में एक विवरण कलकत्ता से प्रकाशित २१-५-९२ के 'सन्मार्ग' में भी छपा है।

भक्तजनों को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि हंस बाबा जी श्री हनुमान् तथा श्री राधा-कृष्ण की मूर्तियों से वार्त्तालाप कर लेते हैं। इस विषय में एक घटना है कि एक बार विन्ध्याचल में भण्डारा हुआ परन्तु किसी ने वह स्थान साफ नहीं किया। फलतः अन्तिम बार की भक्त पंक्ति के भोजन के उपरान्त काफी जोर की वर्षा आरम्भ हो गयी जो दो दिनों तक होती रही और सारा भण्डारा स्थल साफ हो गया। श्री हंसबाबा ने कहा—'मैं किसके मैदान साफ करने को कहता। कई दिनों की मेहनत से सब थक गये थे। अतएव वर्षा ही उपयुक्त चेष्टा थी।'

जब मैं विन्ध्याचल गया था तब श्री हंस बाबा पूज्य देवराहा बाबा पर आधारित कई पुस्तकों का निर्माण कर रहे थे। वे सदैव श्री देवराहा बाबा जी में ही प्रदत्त रहते हैं।

श्री हंस बाबा कोई भी पका खाना नहीं पाते और न ही मुझे आश्रम में कोई भी यह बता पाया कि भोजन-रूप में वे क्या ग्रहण करते हैं। मैंने उन्हें रात-रात भर मन्दिर की छत पर बैठ कर लिखाते पाया। जब मैंने उनसे इसके बारे में पूछा तो वे बोले—जिस दिन मैं निर्धारित एक हजार सूत्र नहीं लिख पाता तो अधूरा कार्य पूरा करने के लिये रात्रि में सुबह तक मुझे लिखना पड़ता है। भक्तगण आते हैं तो मुझे उनको भी समय देना हो पड़ता है—क्योंकि अन्ततः मुझे मानवतका की सेवा ही तो करनी है।'

वे बोले—"दत्त ! लिखना जारी रखो। ये श्लोक स्वतः आते हैं। अगर तुम इन्हें नहीं लिखोगे तो कुछ समय बाद मुझे भी याद नहीं रहेंगे और मैं इन्हें दोहरा नहीं पाऊंगा। यह परा विद्या है, परा वाणी है, जो दैविक शक्ति से उत्पन्न होती है।" मैंने सूत्रों को लिखा जिनमें कुछ संस्कृत में हैं, कुछ हिन्दी में। उन्हें बाबा जी के आदेशानुसार 'पावन प्रसाद' में प्रकाशन हेतु भेजा जा रहा है। मेरा विश्वास है कि इनके मनन से ज्ञानोदय होना निश्चित है।

मेरे अवस्थान के तीसरे दिन एक स्थानीय पंडित बाबा जी के दर्शन के लिये आये। बाबा जी ने उन्हें मेरे द्वारा लिखे गये श्लोकों को हिन्दी में अनुवाद करने को कहा। मुख्य श्लोक में पूज्य देवराहा बाबा जी का जिक्र नहीं था, वे केवल नारायण को समर्पित थे, परन्तु पंडित जी ने उन सबको पूज्य देवराहा बाबा से सम्बन्धित करके ही अनुवाद किया। श्री हंस बाबा जी बोले—"दत्त, अर्थों को ध्यानपूर्वक देखो।" मैंने अनुवादों को कुछ जोर से पढ़ा; वे सब ठीक थे। पंडित जी जरा जल्दी में थे अतः वे केवल १६ श्लोकों का अनुवाद कर चले गये। मैंने यह अनुभव किया की ये हंस बाबा जी ही थे जिन्होंने पंडित के माध्यम से अनुवाद कराया और उन्होंने नारायण तथा श्री हंस बाबा जी को एक ही माना। श्री हंस बाबा के सब विचार तथा कार्य-कलाप पूज्य देवराहा बाबा से ही सम्बंधित हैं। वे उनमें ही लिप्त रहते हैं। श्री हंस बाबा कहते हैं—"पावन प्रसाद पत्रिका पावन है" और पूज्य देवराहा बाबा के चित्र की ओर इंगित करते हुए वे बोले—"ये ही मेरे लिए परम पावनता के स्रोत हैं।"

मुझे विदित हुआ कि पर विद्या की व्याख्या में श्री हंस बाबा जी निम्न-लिखित पुस्तकें लिख रहें हैं—

(१) ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा अनन्त नामम् (सूत्र संख्या ५५११);
(२) ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा अनन्त महिमा (सूत्र संख्या ५५११);
(३) ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा विनय स्तोत्रम् (सूत्र संख्या ५५११);

(४) ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा तत्त्वज्ञान विवेचन (सूत्र संख्या ५५११) ;

(५) ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा अध्यात्म तत्त्व दर्शन (सूत्र संख्या १८००) ;

(६) राधा-कृष्ण विनय स्तोत्रम् (सूत्र संख्या ३१००) ; तथा

(७) ब्रज लीला (रचनाधीन) ।

श्री बाबा ने मुझे श्लोकों (सूत्रों) को 'पावन प्रसाद' में खंडों में प्रकाशन हेतु भेजने के लिए आदेश दिया । प्रति अंक में ब्रजसूत्र के १११ श्लोक और अध्यात्म तत्त्वदर्शन के ५१ श्लोक शामिल होंगे । इन श्लोकों के प्रकाशन से पाठकों के हृदय में ज्ञान की उत्पत्ति को आधार मिलेगा —ऐसा ही श्री-श्री बाबा जी का आशीर्वाद था ।... ॐ शान्तिः !

योगिराज ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबाजी का अध्यात्म तत्त्व-दर्शन

(१) ध्यानं एकं पूर्णं एकं नित्यं रूपं नारायणम् ।

ध्यान एक ही पूर्ण आत्म-तत्त्व के दर्शन को कहा जाता है । नारायण का रूप ही नित्य है और शेष जो कुछ है सब अनित्य है ।

(२) सत्यं ज्ञानं एकं रूपं नामं रूपं नारायणम् ।

सत्यरूपी ज्ञान ही नारायण रूपी ज्ञान है । श्री-श्रीं बाबा देवराहा और नारायण का स्वरूप एक ही है, दोनों में कोई अन्तर नहीं है ।

(३) एकं ज्ञानं पूर्ण ज्ञानं सत्यरूपं नारायणम् ।

पूर्ण ज्ञान और सत्यरूपी नारायण का ज्ञान दोनों में कोई अन्तर नहीं है । पूर्ण स्वरूप देवराहा बाबा को जानने का ज्ञान भी एक ही है ।

(४) ध्यानं सत्यं पूर्णं सत्यं नित्यं रूपं नारायणम् ।

श्री देवराहा बाबा जी की कृपा से ही नित्यता-रूप पूर्ण सत्य नारायण का ध्यान सम्भव होता है ।

(५) ज्ञानं एकं रूपं एकं नित्य ज्ञानं नारायणम् ।

श्री देवराहा बाबा का ज्ञान और नित्यतारूप नारायण का ज्ञान अभिन्न हैं । दोनों का ज्ञान, दोनों का रूप, एक ही है ।

(६) आनन्द ज्ञानं सत्यं एकं प्रेमरूपं नारायणम् ।

सत्यरूपी, प्रेमरूपी नारायण का ज्ञान आनन्द ही है ।

(७) एकं ज्ञानं सत्यं एकं पूर्णं ज्ञानं नारायणम् ।

नारायण का पूर्ण ज्ञान सत्यरूपी है और देवराहा बाबा जी का पूर्ण ज्ञान वही है । दोनों एक ही हैं ।

(८) आनन्द रूपं सत्यं रूपं एकं रूपं नारायणम् ।

श्री नारयण और श्री देवराहा बाबा के रूप भी एक हैं— आनन्दरूप और सत्य रूप ।

(९) सत्यं एकं पूर्णं एकं नित्यं नारायणम् ।

सत्य एक ही है, पूर्ण एक ही है , नित्य एक ही है, वे ही हैं श्री नारायण या श्री देवराहा बाबा जी ।

(१०) एकं प्रेमं नित्य रूपं ज्ञानं रूपं नारायणम् ।

नित्य रूपी, प्रेमरूपी नारायण का ज्ञान होता है तब जब श्री देवराहा बाबा की कृपा होती है ।

(११) ध्यानं सत्यं रूपं सत्यं नित्य रूपं नारायणम् ।

नारायण ही सत्य-रूप है ; नारायण ही नित्यरूप हैं । नित्य-सत्य रूपी नारायण के नित्य ध्यान का भाव एकमात्र श्री देवराहा बाबा जी की कृपा से ही संभव है ।

(१२) आनन्द ज्ञानं सत्यं रूपं एकं रूपं नारायणम् ।

सत्यरूपी आनन्द ज्ञान ही परिपक्व ज्ञान है जिसके प्राप्त होने पर पता चलता है कि जो नारायण हैं वही श्री देवराहा बाबा भी हैं ।

(१३) एकं ज्ञानं पूर्णं रूपं नित्य रूपं नारायणम् ।

पूर्ण-स्वरूप, नित्य-स्वरूप श्री देवराहा बाबा का ज्ञान और नारायण का ज्ञान एक ही हैं । अन्तर कोई नहीं हैं ।

(१४) ज्ञानं सत्यं रूपं नामं एकं प्रेमं नारायणम् ।

सत्य-रूपी नाम का ज्ञान एकमात्र श्री देवराहा बाबा की कृपा से ही सम्भव है ।

(१५) नित्यं रूपं प्रेमं रूपं सत्यं रूपं नारायणम् ।

नित्य-रूप, प्रेम-रूप, सत्य-रूप नारायण ही श्री देवराहा बाबा यही हैं। पूर्ण ज्ञान हैं।

(१६) ध्यानं एकं पूर्ण रूपं नारायणम् ।

एक ही पूर्ण नारायण-स्वरूप श्री देवराहा बाबा के ध्यान से पूर्ण ज्ञान सम्भव है। वही परब्रह्म का ध्यान है।

(१७) आनन्द ज्ञानं पूर्ण ध्यानं ध्यानं एकं नारायणम् ।

सच्चिदानन्द स्वरूप नारायण-रूपी देवराहा बाबा जी के पूर्ण ध्यान से ही पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होती है।

(१८) पूर्ण रूपं सत्यं रूपं ज्ञानं रूपं नारायणम् ।

सच्चिदानन्द-स्वरूप नारायण का रूप हो पूर्ण रूप है, वही सत्य रूप है, वही पूर्ण ज्ञान का रूप है।

(१९) सत्यं रूपं नामं रूपं नारायणम् ।

वे जो सात्य-रूप हैं वही नाम-रूप भी है— वही नाम जो गुरु-प्रदत्त महा-मन्त्र है। अर्थात् नाम और नाम का स्वरूप मूलतः एक ही है।

(२०) सत्यं प्रेमं रूपं प्रेमं प्रेमं रूपं नारायणम् ।

अर्थात्—वह जो नारायण का स्वरूप है, ब्रह्मवपु देवराहा बाबा जी का वही स्वरूप है—अनन्त-प्रेमी रूपी। वास्तव में नारायण रूपी देवराहा बाबा अनन्त प्रेम के स्वरूप ही थे।

(२१) ध्यानं प्रेमं सत्यं प्रेमं नारायणम् ।

नारायण के प्रेमपूर्वक ध्यान से ही सत्य और प्रेम में प्रतिष्ठित होना सम्भव है।

(२२) सत्यं एकं प्रेमं रूपं नारायणम् ।

सत्य और प्रेम में प्रतिष्ठित होते ही नारायण का साथ हो जाता है।

(२३) पूर्ण ज्ञानं सत्यं ज्ञानं पूर्ण रूपं नारायणम् ।

पूर्ण-रूप नारायण का पूर्ण ज्ञान ही सत्य का ज्ञान कहा जाता है।

(२४) नित्यं रूपं नामं रूपं प्रेमं एकं नारायणम् ।

सत्य का ज्ञान ही संसार में एकमात्र नित्य-रूप है। और वही नित्य-रूप गुरु-प्रदत्त महामन्त्र नाम का भी रूप है—जो अनन्त प्रेमरूपी नारायण का ही स्वरूप है।

(२५) आनन्दं एकं नित्यं एकं नामं एकं नारायणम् ।

जहाँ प्रेम है वहाँ ही आनन्द है—जो सच्चिदानन्द ही है। वही गुरु-प्रदत्त महामन्त्र नाम का भी स्वरूप है। वही नारायण या श्री देवराहा बाबा जी का स्वरूप है। अर्थात्—श्री देवराहा बाबा, उनके प्रदत्त महामन्त्र और नारायण तीनों ही मूलतः एक ही हैं। कोई अन्तर इनमें नहीं है।

(२६) रूपं ज्ञानं सत्य रूपं एकं रूपं नारायणम् ।

जब ज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी तब आत्म-स्वरूप का भी बोध हो जायेगा जो कि सत्य-रूप नारायण का ही स्वरूप है। साधना का वह अंतिम सोपान है जहाँ भक्त और भगवान एक हो जाते हैं।

(२७) ध्यानं ज्ञानं पूर्णं ज्ञानं पूर्णं रूपं नारायणम् ।

भक्त और भगवान जब एक हो जाते हैं तब पूरा ध्यान-ज्ञान पूर्ण-रूप नारायण में ही समर्पित हो जाता है।

(२८) एकं सत्यं पूर्णं सत्यं एकं नारायणम् ।

आत्म-समर्पण जब सम्पूर्ण हो जाता है तब प्रतीत होता है कि जगत के एकमात्र सत्य पूर्ण नारायण हैं। वे ही जगत में एकमात्र नित्य हैं बाकी सब अनित्य है।

(२९) नित्यं एकं प्रेमं पूर्णं एकं नारायणम् ।

नित्य-रूप एकमात्र नारायण ही प्रेम-रूप हैं—अनन्त प्रेमरूप। वे पूर्ण भी हैं।

(३०) ज्ञानं सत्यं रूपं प्रियं ज्ञानं एकं रूपं नारायणम् ।

नारायण की अद्वैत सत्ता को जिन्होंने पहचान लिया उनका ज्ञान पूर्ण सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है।

(३१) सत्यं ध्यानं प्रेमं रूपं एकं रूपं नारायणम् ।

ज्ञान के पूर्ण सत्य में प्रतिष्ठित हो जाते ही प्रेम-रूप नारायण में ध्यान लगा रहता है—सदा सर्वदा।

(३२) एकं प्रेमं नामं प्रेमं रूपं एकं प्रियं रूपं नारायणम् ।

तब चारों ओर नारायण ही दिखाई देते हैं। नाम और नामी इस अवस्था में एक ही एक हो रहते हैं।

(३३) ध्यानं पूर्णं रूपं एकं सत्यं प्रेमं नारायणम् ।

ध्यान तब पूर्ण कहा जाता है जब केवल नारायण का प्रेम ही प्रेम की अनुभूति में रहता है ।

(३४) आनन्द रूप सत्यं ज्ञानं एकं प्रियं नारायणम् ।

उसी प्रम में आनन्द का अनुभव होने लगता है जो कि सत्य और ज्ञान में प्रतिष्ठित होता है ।

(३५) ध्यानं सत्यं रूपं एकं प्रियं ध्यानं नारायणम् ।

उस सच्चिदानन्द सागर में ध्यान के माध्यम से जब मन लय हो रहता है तब उसको समाधि कहा जाता है ।

(३६) आनन्द रूपं प्रेमस्य ज्ञागं एकं ज्ञानं नारायणम् ।

समाधि की अवस्था का वर्णन तो कोई कर नहीं सकता, फिर भी शब्दों में उस अवस्था का वर्णन यही है कि मन तब अव्यय ज्ञानानन्द सागर में समा जाता है ।

(३७) सत्यं प्रेमं रूपं आनन्द एकम् प्रेमं नारायणम् ।

साधक को आज सत्य की प्राप्ति हो गयी है ; वह आज सत्य, प्रेम और आनन्दरूपी नारायण में समाहित हो गया है ।

(३८) ज्ञानं एकं रूपं नारायणम् ।

मन जब एक नारायण में समा गया तब उसे परिपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो गयी जो कि एक का ही ज्ञान है ।

(३९) नित्यं सत्यं पूर्ण सत्यं प्रेमं नारायणम् ।

इस एक का ज्ञान ही नित्य, सत्य और पूर्ण है ।

(४०) एकं ध्यानं पूर्ण ध्यानं प्रेमं ध्यानं रूपं ध्यानं नारायणम् ।

प्रेम-पूर्ण एक के ध्यान को ही पूर्ण ध्यान कहते हैं ।

(४१) सत्यं प्रेमं एकं रूपं नारारणम् ।

नारायणरूपी गुरु देवराहा बाबा में सूत्रकार लय हो गया । उसको चारों ओर नारायण ही नारायण दिखाई दे रहे हैं । साधना का स्वर निःशेष हो गया ।

(४२) ध्यानं प्रेमं रूपं प्रेमं नित्यं प्रेमं नारायणम् ।

साधना के इस स्तर पर पहुँचकरगुरु गुरुनाम और भक्त सब नित्य-प्रेम-रूपी नारायण में लय हो गये। किसी की कोई अलग सत्ता नहीं रही।

(४३) सत्यं ध्यानं प्रेमं ध्यानं नारायणम् ।

जब भक्त और भगवान एक हो जाते हैं तभी सत्य-प्रेम रूपी नारायण का पूर्ण ध्यान सम्भव होता है।

(४४) सत्यं रूपं नित्यं ज्ञानं पूर्णं एकं नारायणम् ।

यह समाधि अवस्था का वर्णन है। भक्त और भगवान एक होकर नित्य ज्ञान और सत्य-रूपी नारायण में समाहित हो गये।

(४५) ध्यानं सत्यं पूर्णं एकं प्रेमं एकं नारायणम् ।

जब नारायण में सब कुछ लय हो जाता है तब बाहर की कोई वस्तु दिखाई नहीं देती। सब एक ही एक हो रहता है।

(४६) सत्यं आनन्दं रूपं एकं प्रेमं एक नारायणंम् ।

जब सब एक हो जाता है तब प्रेमरूपी नारायण में ही सत्य और आनन्द की प्राप्ति सम्भव है—ऐसे ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

(४७) आनन्द रूपं नामं एकं सत्यं रूपं नारायणम् ।

नारायण सत्य के रूप हैं, आनन्द के रूप हैं, और गुरु-प्रदत्त नाम के भी अभिन्न रूप हैं।

(४८) नित्यं ज्ञानं पूर्णरूपं नामं एकं नारायणम् ।

वही ज्ञान नित्य है जो कि पूर्ण-रूप नारायण है।

(४९) पूर्णं ज्ञानं सत्यं रूपं नामं एकं नारायणम् ।

वही सत्य रूपी ज्ञान पूर्ण ज्ञान है जिसके होने पर और कुछ जानने की आवश्यकता नहीं रहती।

(५०) ध्यानं प्रेमं पूर्ण रूपं नामं प्रेमं नारायणम् ।

तब पता चल जाता है कि नाम का पूर्ण रूप ध्यान नारायण का ही ध्यान है।

ये ही हैं प्रथम किस्त के ५० श्लोक। इन सूत्रों का पाठ करने पर यह स्पष्ट होता है कि प्रति श्लोक के साथ पूर्वापर सम्बद्ध है और भक्त के नारायण में समाहित हो जाने का इनमें इंगित और उद्‌बोधन है। दूसरी बात यह है

कि श्री देवराहा बाबा अध्यात्म-तत्त्व-दर्शन में केवल नारायण के ही रूप का वर्णन है अन्य किसी का नहीं। ऐसा इसलिए है कि सूत्रकार श्री देवराहा बाबा को नारायण के रूप में ही जानते हैं। उनमें ही सूत्रकार स्वयं समाहित हो गये क्योंकि नारायण के आनन्द, प्रेम और सत्यरूपी ज्ञान के अलावा उनको और कोई वस्तु दिखाई नहीं देती।

(५१) एकं नामं पूर्णं रूपं नामं सत्यं नारायणम्।

एकमात्र नारायण का सत्य नाम ही पूर्ण होता है। यही है ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा का अध्यात्म तत्त्व दर्शन।

(५२) पूर्ण नामं पूर्णं ध्यानं पूर्णं एकं नारायणम्।

एकमात्र नारायण का नाम ही पूर्ण होता है। वही पूर्ण ज्ञान का स्वरूप है।

(५३) पूर्ण ध्यानं पूर्णं प्रेमं पूर्णं रूपं नारायणम्।

अत: इस स्वरूप को जानने के लिये नारायण का प्रेम से पूर्ण रूप का सम्यक् ध्यान आवश्यक है।

(५४) एकं नामं पूर्ण रूपं प्रेमं रूपं नारायणम्।

प्रेम रूपी नारायण के ही नाम का ध्यान करने से उनके पूर्ण स्वरूप में स्थित हुआ जा सकता है।

(५५) आनन्द ज्ञानं सत्यं रूपं नामं एकं नारायणम्।

नारायण का नाम ध्यान करके जब उनके स्वरूप में मन स्थित हो जाता है तभी सत्य रूप आनन्द और ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है।

(५६) शान्ति रूपं प्रेम रूपं ज्ञानं एकं नारायणम्।

ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति होने पर शान्ति मिलती है।

(५७) ज्ञानं सत्यं रूपं प्रेमं एकं नारायणम्।

इस सत्य की जानकारी एकमात्र प्रेमरूपी नारायण के नाम में ही है।

(५८) पूर्ण ज्ञानं एकं रूपं प्रेमं नारायणम्।

एकमात्र नारायण के रूप में ही पूर्ण ज्ञान और पूर्ण प्रेम है। वही है योगिराज देवराहा बाबा का प्रकृत स्वरूप।

(५९) सत्यं नामं प्रेमं रूपं नामं एकं नारायणम्।

प्रेम रूपी सत्नाम ही प्रकृत ज्ञान रूपी नारायण तक पहुँचा सकते हैं।

(६०) नित्यं प्रेमं रूपं ज्ञानं एकं नारायणम् ।

नित्य प्रेम और ज्ञान के ये ही आधार हैं ।

(६१) ध्यानं ज्ञानं पूर्ण रूपं नित्यं प्रेमं नारायणम् ।

इस नित्य प्रेम रूपी नारायण में ही अपना ध्यान-ज्ञान सब कुछ पूर्ण रूप से समर्पित करना चाहिये ।

(६२) आनन्द नामं सत्यं रूपं ज्ञानं प्रेमं नारायणम् ।

तब सत्य ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति निश्चित रूप से सम्भव होगी ।

(६३) पूर्ण रूपं नामं ज्ञानं सत्य नामं नारायणम् ।

इस स्थिति में साधक सत्य नाम और नारायण में अभिन्नता का दर्शन करता है और नारायण के पूर्ण रूप में प्रविष्ट हो जाता है ।

(६४) एकं प्रेमं नित्यं प्रियं रूपं प्रियं नारायणम् ।

तब प्रतिदिन प्रेम रूपी प्रिय प्रभु नारायण की शरण में भक्त आ जाता है ।

(६५) आनन्दं एकं पूर्णं एकं सत्यं एकं नारायणम् ।

नारायण स्वभावतः सदा सत्य और पूर्ण होते हैं । यही आनन्द का स्वरूप है ।

(६६) ध्यानं ज्ञानं पूर्ण नित्यं सत्यं रूपं नारायणम् ।

सत्य रूपी नारायण के ध्यान-ज्ञान पूर्ण और नित्य होते हैं ।

(६७) एकं नामं पूर्ण नामं सत्यं रूपं नारायणम् ।

सत्य रूपी चर्चित नारायण के यही नाम पूर्ण होते हैं ।

(६८) पूर्ण नामं एकं नारायणम् ।

एक नारायण के नाम ही पूर्ण नाम अर्थात् पूर्ण होते हैं ।

(६९) ध्यानं आनन्दं ज्ञानं रूपं सत्यं रूपं नारायणम् ।

आनन्द-रूपी, ज्ञान-रूपी, सत्य-रूपी नारायण का ध्यान ही पूर्ण ध्यान है ।

(७०) नित्यं प्रेमं रूपं प्रेमं एकं प्रेमं नारायणम् ।

यह है योगिराज देवराहा बाबा का अध्यात्म तत्त्व दर्शन—नित्य प्रेम रूपी नारायण के रूप का ध्यान ।

(७१) पूर्णं रूपं एकं रूपं सत्यं रूपं नारायणम् ।

सत्य और पूर्ण रूप नारायण के ध्यान में सूत्रकार प्रविष्ट हो गया । उसकी दृष्टि में और कुछ दिखाई नहीं देता ।

(७२) ध्यानं प्रेमं रूपं प्रेमं नित्यं प्रेमं नारायणम् ।

नारायण के सिवा सूत्रकार की दृष्टि में अन्य कुछ नहीं है ।

(७३) पूर्णं ज्ञानं रूपं एकं नारायणम् ।

इसीलिए साधक आज पूर्ण ज्ञान को प्राप्त है ।

(७४) प्रेमं ज्ञानं सत्यं रूपं नामं एकं नारायणम् ।

प्रेम, ज्ञान, सत्य आदि गुणावली एकमात्र नारायण में ही पूर्ण मात्रा में है ।

(७५) रूपं नामं प्रेमं रूपं एकं ज्ञानं नारायणम् ।

एकमात्र नारायण का सम्यक् ज्ञान होने पर साधक सब कुछ पा जाता है । लेकिन इस ज्ञान की प्राप्ति सम्भव है प्रेमाभक्ति से—उसके नाम-कीर्तन और रूप-चिन्तन से ।

(७६) ध्यानं सत्यं पूर्णं सत्यं रूपं सत्यं नारायणम् ।

जब पूर्ण मात्रा से नारायण का रूप ध्यान में होगा तब पूर्ण सत्य रुपी नारायण प्रकट होंगे ।

(७७) पूर्ण रूपं ज्ञानं एकं सत्यं एकं नारायणम् ।

पूर्ण सत्यरूपी नारायण पूर्ण ज्ञान के भी आधार हैं ।

(७८) पूर्णं प्रेमं नामं प्रेमं ज्ञानं प्रेमं नारायणम् ।

प्रेमा भक्ति से भक्त जब नारायण को प्राप्त होते हैं तब उस भक्ति को, उस प्रेम को पूर्ण प्रेम कहते हैं और इस प्रेम से पूर्ण ज्ञान का भी उदय हो जाता है ।

(७९) पूर्ण सत्यं नामं सत्यं ज्ञानं सत्यं नारायणम् ।

पूर्ण ज्ञान के उदय होते हीं साधक पूर्ण सत्य में प्रतिष्ठित हो जाते हैं ।

(८०) एकं नामं पूर्णं ज्ञानं प्रेमस्य रूपं नारायणम् ।

और जब पूर्ण ज्ञान में साधक प्रतिष्ठित हो जाते हैं, तब धारणा हो जाती है कि नारायण का स्वरूप ही प्रेम का स्वरूप है ।

(८१) नामं एकं पूर्णं नामं सत्यम् एकं नारायणम् ।

वही एकमात्र नाम है जो सत्य और पूर्ण है ।

(८२) एकं प्रेमं ज्ञानं प्रेमं रूपं प्रेमं नारायणम् ।

प्रेम के भाव उसके नाम से ही जागते हैं ।

(८३) ध्यानं सत्यं रूपं सत्यं नामं सत्यं नारायणम् ।

सूत्रकार कहते हैं कि ध्यान से, विग्रह-दर्शन से अथवा नाम-साधना से उसी एक नारायण की सत्यता प्रकट होती है।

(८४) एकं ज्ञानं सत्यं रूपं ध्यानं रूपं नारायणम् ।

एकमात्र नारायण के रूप के ध्यान से ही सत्यरूपी-ज्ञान की प्राप्ति होती है।

(८५) पूर्णं ज्ञानं एकं रूपं नामं रूपं नारायणम् ।

और वही ज्ञान पूर्ण ज्ञान है।

(८६) पूर्णं ज्ञानं एकं रूपं सत्यं रूपं नारायणम् ।

पूर्ण ज्ञान से ही सत्यरूपी नारायण का दर्शन होता है।

(८७) ध्यानं ज्ञानं एकम् रूपं सत्यं रूपं नारायणम् ।

सत्यरूपी नारायण के दर्शन के पश्चात् ध्यान-ज्ञान सब कुछ उसी एक रूप में समाहित हो जाता है।

(८८) एकं प्रेमं नामं प्रेमं एकं नामं नारायणम् ।

उस अवस्था में प्रेम होता है केवल उस एक ही नारायण के (नाम के) साथ।

(८९) सत्यं ध्यानं पूर्णं रूपं एकं प्रेमं नारायणम् ।

और उस नाम में स्थिर होकर पूरी तरह उस परम सत्य के ध्यान में मन लगा रहता है।

(९०) पूर्णं रूपं नामं रूपं सत्यं रूपं नारायणम् ।

साधक अब पूर्ण-रूप से नारायण के ध्यान में समाहित हो गया।

(९१) पूर्णं ज्ञानं एकम् रूपं नित्यं ध्यानं नारायणम् ।

और साधक उस नारायण का ही अब नित्य ध्यान करता है।

(९२) पूर्णं रूपं नामं रूपं ज्ञानं रूपं नारायणम् ।

नारायण तो पूर्णता के प्रतीक हैं। वे ज्ञान के स्वरूप भी हैं। उनका नाम ही उनका रूप है।

(९३) एकम् रूपं शान्ति रूपं प्रेमं रूपं नारायणम् ।

वही एक रूप शान्ति और प्रम का रूप है।

(९४) ध्यानं सत्यं रूपं नामं एकम् नामं नारायणम् ।

बार-बार बताया जा रहा है कि नारायण के रूप और नाम में कोई अन्तर नहीं है। वही सत्य है, उसी का ध्यान करना चाहिए ।

(९५) पूर्ण ध्यानं एकम् रूपं नामं एकम् नारायणम् ।

और ध्यान में जब गम्भीरता आ जायेगी तभी वह इच्छित पूर्णता प्राप्त होगी ।

(९६) ध्यानं पूर्ण रूपं एकं सत्य रूपं नारायणम् ।

सत्यरूपी नारायण का स्वरूप जानने के लिये यही एक रास्ता है ।

(९७) ज्ञानं एकं पूर्ण रूपं नामं रूपं नारायणम् ।

यही सच है कि एक का ज्ञान अगर प्राप्त हो जाय तो साधक पूर्ण ज्ञान का अधिकारी बन जाता है ।

(९८) एकम् ध्यानं प्रेम रूपं नाम रूपं नारायणम् ।

एक के ज्ञान के लिए एक का ध्यान आवश्यक है ।

(९९) ध्यानं सत्यं रूपं सत्यं रूपं नारायणम् ।

वह एक ब्रह्म ही सत्य का प्रतिरूप है ।

(१००) नामं प्रेमं रूपं प्रेमं प्रेमं ज्ञानं नारायणम् ।

उसका नाम केवल सत्य का ही प्रतिरूप नहीं है बल्कि प्रेम और ज्ञान का भी प्रतिरूप है ।

(१०१) सत्यं ध्यानं रूपं प्रेमं एकं ज्ञानं नारायणम् ।

इस सत्य ज्ञान और प्रेम-रूपी नारायण का सतत ध्यान करें ।

(१०२) एकं प्रेमं रूपं प्रेमं नारायणम् ।

नारायण प्रेम रूपी हैं। एक मात्र उनसे ही प्रेम करो ।

(१०३) नित्यं रूपं प्रेमं नित्यम् एकं नारायणम् ।

उनसे प्रेम करके ही उनके नित्य स्वरूप का बोध होगा ।

(१०४) ध्यानं ज्ञानं पूर्ण सत्यम् एकं रूपं नारायणम् ।

नारायण के प्रेम से ही उनका पूर्ण ध्यान होगा और ध्यान से प्राप्त होगा ज्ञान, जो कि पूर्ण सत्य का बोध-स्वरूप है ।

(१०५) प्रेम नारायणं एकं रूपं सत्यं रूपं नारायणम् ।

नारायण के प्रेम से ही सत्य का बोध होता है ।

(१०६) नित्यं प्रेमं रूपं प्रेमं एकं नारायणम् ।

इसलिए नित्य प्रेम से नारायण के रूप ध्यान का आवश्यक है ।

(१०७) ध्यानं सत्यं पूर्णं सत्यं रूपं ध्यानं नारायणम् ।

ध्यान जब सच्चा होता है तो वह पूर्ण सत्य में जाता है ।

(१०८) एकं सत्यं पूर्णं सत्यं रूपं ध्यानं नारायणम् ।

पूर्ण सत्य एकमात्र प्रेम रूपी ज्ञान है । वह ही नारायण की पहचान है ।

(१०९) पूर्ण नामं प्रेमस्य रूपं एकं रूपं नारायणम् ।

नारायण का रूप और उनका नाम ही एकमात्र पूर्ण होता है । वही प्रेम का रूप भी है ।

(११०) ज्ञानं ध्यानं पूर्णं एकं सत्यं रूपं नारायणम् ।

इसलिए पूरा ज्ञान-ध्यान सत्यरूपी नारायण को ही समर्पित करना चाहिए ।

(१११) नित्य प्रेमं आनन्द रूपं प्रेमं ज्ञानं नारायणम् ।

नारायण ही एकमात्र नित्य प्रेम और आनन्द के आधार हैं और पूर्ण ज्ञान के स्वरूप हैं ।

(११२) रूपं प्रेमं नामं प्रेमं एकं प्रेमं नारायणम् ।

हंस बाबा का कहना है कि श्री देवराहा बाबा ही नारायण के स्वरूप हैं और वही पूर्ण प्रेम के आधार भी हैं ।

(११३) नित्यं सत्यं पूर्ण सत्यं नामं सत्यं नारायणम् ।

वे नित्य और पूर्ण सत्य के स्वरूप हैं ।

(११४) प्रेमस्य ज्ञानं सत्यं नामं एकं नामं नारायणम् ।

अतः उनसे ही प्रेम का ज्ञान और सत्य का नाम परिपूर्ण रूपेण प्रकाशित हुआ है क्योंकि वह स्वयं नारायण हैं ।

(११५) पूर्ण रूपं नित्यं एकं प्रेमं एकं नारायणम् ।

नारायण का पूर्ण रूप एक अखण्ड सत्ता में नित्य विराजमान है जहाँ से अखण्ड प्रेम का नित्य उत्सारण होता है ।

(११६) पूर्ण रूपं नामं एकं सत्यं एकं नारायणम् ।

वह पूर्ण रूप हैं और उनका नाम एकमात्र सत्य में ही प्रतिष्ठित है ।

(११७) पूर्ण ज्ञानं ध्यानं एकं नामं एक नारायणम् ।

अखंड सत्ता में प्रतिष्ठित नारायण और उनके नाम पूर्ण ज्ञान के प्रतीक हैं—उनका स्मरण-ध्यान करो ।

(११८) पूर्ण सत्यं ध्यानं रूपं एक रूपं नारायणम् ।

उस ध्यान में साधक जब समाहित हो जाता है तब पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होती है ।

(११९) आनन्द रूपं सत्यं रूपं नामं प्रेमं नारायणम् ।

और पूर्ण ज्ञान-प्राप्ति के साथ-साथ ही प्रेम और आनन्द रूपी नारायण की प्राप्ति होगी ।

(१२०) ध्यानं प्रेमं रूपं प्रेमं पूर्ण प्रेमं नारायणम् ।

फलस्वरूप ध्यान से प्रेम होगा ; नारायण के रूप में प्रेम होगा ।

(१२१) पूर्ण ज्ञानं ध्यानं पूर्ण रूपम् एकं नारायणम् ।

ध्यान मे प्रेम होते ही उसी में पूर्णता आयेगी और ज्ञान की भी पूर्णता होगी ।

(१२२) सत्यं नामं प्रेमं ज्ञानम् एकं प्रेमं नारायणम् ।

तब प्रेम और ज्ञान रूपी सत्नाम में साधक स्थिर होंगे ।

(१२३) ध्यानं सत्यं रूपं प्रेमं रूपं नामं नारायणम् ।

उस स्थिति में नारायण के नाम और रूप में प्रेम होता है । उनका ध्यान ही सत्य हो जाता है ।

(१२४) एकं ध्यानं पूर्ण ध्यानं नित्यं रूपं नारायणम् ।

नित्यता-रूपी नारायण का ध्यान ही एकमात्र पूर्ण ध्यान है ।

(१२५) एकं प्रेमं रूप प्रेमं एकं रूपं नारायणम् ।

वही एकमात्र प्रेम है , प्रेम का रूप है ।

(१२६) आनन्द रूपं सत्य रूपं नामं रूपं नारायणम् ।

नारायण में साधक जब प्रतिष्ठित हो जाते हैं तब चारों दिशाओं में सत्य और आनन्द रूपी नारायण दिखाई देते हैं ।

(१२७) ज्ञानं सत्यं पूर्णं सत्यं एकं सत्यं नारायणम् ।

तब इस ज्ञान को ही एक मात्र सत्य, पूर्ण सत्य माना जाता है।

(१२८) ध्यानं ज्ञानं पूर्णं रूपं नामं एकं प्रेमं नारायणम् ।

नारायण में साधक जब प्रतिष्ठित हो जाते हैं तब उनका ध्यान-ज्ञान पूर्णतः नारायण में स्थित हो जाता है।

(१२९) पूर्णं रूपं नामं एकं प्रेमं एकं नारायणम् ।

सत्नाम का पूर्ण रूप प्रेम रूपी नारायण का ही एकमात्र रूप है।

(१३०) पूर्णं सत्यं नामं सत्यं ज्ञानम् एकं नारायणम् ।

वही सत् नाम एक मात्र पूर्ण सत्य है और वही ज्ञान रूपी नारायण का प्रतीक है।

(१३१) पूर्णं सत्यं ध्यानं सत्यम् एकं ध्यानं नारायणम् ।

नारायण ही पूर्ण सत्य है। एकमात्र उनका ही ध्यान करना चाहिये।

(१३२) पूर्णं रूपं नामं रूपं नामं ज्ञानं नारायणम् ।

लेकिन ध्यान करें कैसे ? श्री हंस बाबा जी कहते हैं कि ध्यान होना चाहिए नारायण के पूर्ण रूप का या उनके नाम रूपी जाप का या उस नाम के तत्त्व ज्ञान का।

(१३३) पूर्णं रूपं प्रेमस्य रूपं नारायणम् ।

प्रेम रूपी नारायण का वह ध्यान पूर्ण रूप से होना चाहिए।

(१३४) ध्यानं प्रेमं पूर्णं प्रेमं पूर्णं रूपं नारायणम् ।

पूर्ण-रूप नारायण का ध्यान होगा प्रेम के सहारे ही—पूर्ण प्रेम के सहारे।

(१३५) ध्यानं ज्ञानं पूर्णं रूपं एकं प्रेमं ज्ञानं नारायणम् ।

अन्तर में उस परिपूर्ण प्रेम का ज्ञान भी होना आवश्यक है। तब ध्यान मे ज्ञान की प्राप्ति होगी।

(१३६) पूर्णं सत्यं नित्यं रूपं एकं प्रेमं नारायणम् ।

तब सहज ही पता चलता है कि प्रेम रूपी नारायण ही एकमात्र पूर्ण सत्य हैं और नित्य हैं।

(१३७) पूर्ण ज्ञानं प्रेमस्य ज्ञानं नित्यं रूपं नारायणम् ।

पूर्ण ज्ञान प्रेम का ही ज्ञान है जो कि नित्य रूपी नारायण का स्वरूप है ।

(१३८) पूर्ण रूपं नामं एकं प्रेमस्य रूपं नाराराणम् ।

नारायण का नाम पूर्णता का स्वरूप है जो कि प्रेम-रूप नारायण का भी स्वरूप है ।

(१३९) पूर्ण ज्ञानं प्रेमस्य ज्ञानं नित्यं रूपं नारायणम् ।

प्रेम भावना के साथ पूर्ण ज्ञान होने पर नित्य-रूप नारायण के स्वरूप को जाना जाता है ।

(१४०) एकं नामं पूर्ण ज्ञानं पूर्ण रूपं नारायणम् ।

मन-प्राण से अगर कोई व्यक्ति नारायण का नाम ले तो उसे सम्यक् ज्ञान प्राप्त होगा ।

(१४१) एकं नामं पूर्ण रूपं सत्य रूपं नारायणम् ।

क्योंकि—नारायण का नाम ही एकमात्र पुर्ण सत्य का स्वरूप है ।

(१४२) पूर्णं नित्यं सत्यं रूपं एकं नामं नारायणम् ।

नारायण स्वयं और नारायण के नाम मूलतः अभिन्न हैं । वे सदा सत्य-स्वरूप हैं और नित्य पूर्ण हैं ।

(१४३) ज्ञानं ध्यानं पूर्ण रूपं एकं नामं नारायणम् ।

अतः समस्त ज्ञान-ध्यान पूर्ण रूप से एकमात्र नारायण में ही समर्पित होना चाहिए ।

(१४४) सत्यं रूपं प्रेमं रूपं ज्ञानं रूपं नारायणम् ।

क्योंकि नारायण ही सत्य, प्रेम और ज्ञान के स्वरूप है ।

(१४५) पूर्ण रूपं नामं एकं सत्य रूपं नारायणंम् ।

नारायण का नाम मन-प्राण से लेने से साधक सत्य में स्थित हो सकते हैं ।

(२४६) पूर्ण रूपं प्रेमस्य रूपं नामं एकं नारायणम् ।

श्री देवराहा बाबा जी का पूर्ण रूप एक मात्र नारायण का ही पूर्ण रूप है ; वे प्रेम के भी स्वरूप हैं ।

(१४७) पूर्ण ज्ञानं सप्यं रूपं नामं प्रेमं नारायणम् ।

सत्य रूपी पूर्ण ज्ञान प्रेम रूपी नारायण का ही ज्ञान हैं। और वही हैं श्री देवराहा बाबा का भी ज्ञान।

(१४८) ध्यानं एकं पूर्ण एकं नित्यं रूपं नारायणम् ।

उन नित्य-रूप नारायण श्री देवराहा बाबा का ध्यान करें, जो कि पूर्णता के एकमात्र प्रतीक हैं।

(१४९) सत्यं प्रेमं नामं रूपं एकं रूपं नारायणम् ।

वे पूर्णता के प्रतीक हैं इस कारण सत्य और प्रेम के साथ सम्बन्धित हैं। श्री नारायण या श्री देवराहा बाबा के स्वरूप की यही एकमात्र पहचान है।

(१५०) पूर्ण ज्ञानं एकं रूपं एकं नारायणम् ।

एकमात्र नारायण के नाम की साधना से ही पूर्ण ज्ञान प्राप्त होना सम्भव हैं।

[सद्‌गुरुदेव अनन्तश्री देवराहा बाबा कहते हैं—"बच्चा, नाम-साधना से ध्यान का अभ्यास स्वयं हो ही जाता है। क्योंकि नाम और नामी अभिन्न हैं, इसलिए नाम-साधना से नामी के स्वरूप पर ध्यान जमने लगता है,.. तब इच्छा और क्रिया का नियन्त्रण हो जाता है; साधक की सत्ता में केवल ज्ञान ही ज्ञान रह जाता है।" (द्रष्टव्य: श्री देवराहा बाबा सूक्ति मंजूषा—३, प्रस्तुति—श्रीमती कामना प्रसाद, 'पावन प्रसाद' दिसम्बर १९९२)]

(१५१) पूर्ण सत्यं नामं सत्यं नामं एकं नारायणम् ।

पूर्ण ज्ञान ले जाता है पूर्ण सत्य में। वह नारायण के नाम की साधना से सम्भव है; क्योंकि वह नाम भी पूर्ण सत्य का प्रतीक है।

(१५२) एकं ज्ञानं पूर्ण रूपं अनुक्रियस्ते सर्वत्र ज्ञानं नारायणम् ।

साधक परिपूर्ण रूप से एकमात्र नारायण को प्राप्त हो जाते हैं। तब 'हर जगह नारायण हैं'—इस ज्ञान का बोध उन्हें हो जाता है। वह ही चरम ज्ञान है। सर्वत्र जब नारायण ही एकमात्र दिखाई देने लगेंगे तब साधक अपनी साधना में सिद्धि लाभ कर जायेंगे। तत्पश्चात् उनके लिए अन्य किसी ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती।

यह है पूर्ण ज्ञान की अनुपम सूत्र गाथा। पाठक अगर ध्यान से देखेंगे तो उन्हें प्रतीत होने लगेगा कि अधिकतर सूत्रों में कुछ ही शब्दों को आगे-पीछे न्यस्त किया गया है। सूत्रकार श्री हंस बाबाजी महाराज भी यही कहते हैं कि "शब्दों को इधर-उधर किया गया है।" लेकिन सच बात तो यह है कि निर्वाचित शब्दों के इधर-उधर करते ही सूत्रों के गूढ़ार्थ में मौलिक आध्यात्मिक परिवर्तन घटित हो जाता है।...और प्रत्येक सूत्र नारायण रूपी श्री देवराहा बाबा जी महाराज को ही समर्पित है !

इस प्रकार श्री देवराहा बाबा और श्री नारायण में कोई अन्तर नहीं है, यह जानकारी तो हमें मिली ही। भक्तों के अनुभव से यह भी पता चलता है कि श्री देवराहा बाबा और हंस बाबा में भी कोई अन्तर नहीं है। प्रभु हमें सच्ची भक्ति और सत्य ज्ञान प्रदान करें ताकि हम उनके चरणों में समर्पित-प्राण होकर अपना स्वरूप जान सकें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !



[सूत्र : 'पावन प्रसाद' दिसम्बर १९९२ और जनवरी तथा फरवरी १९९३ के अंक]

श्री हंस बाबाजी महाराज का अमोघ दर्शन

श्री कृष्ण कुमार तिवारी

उज्जैन कुंभ से लौटने के क्रम में एकाएक रास्ते में ही ऐसा विचार हुआ कि पूज्य गुरुदेव श्री देवराहा बाबा के विन्याचल-स्थित स्वर्गाश्रम के श्री हंस बाबाजो महाराज का भो दर्शन करता चलूं। अतः विंध्याचल स्टेशन आने पर गाड़ी से उतर गया तथा माँ विन्ध्य-वासिनी के दर्शनोपरान्त स्वर्गाश्रम के लिए प्रस्थान किया। आश्रम (गौशाला) पहुँचकर अन्य संतों का दर्शन किया और श्रो हंस बाबा के दर्शन के लिए जंगल में स्थित मंच के समीप पहुँचा। महाराजश्री का दर्शन हुआ। कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् बहुत देर तक उनका प्रवचन चलता रहा जैसा कि सुयोग होने पर गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी महाराज का चलता था। भाव-भंगिमा आदि से मैंने महसूस किया कि पहले दर्शन से इस बार के दर्शन में बहुत ही अन्तर है। लगता था जैसे स्वयं ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा के सम्मुख मैं उपस्थित होऊँ। इसी आनन्दातिरेक में था कि प्रसाद देने के पश्चात् श्री हंस बाबा ने छुट्टी कर दी।

पटना के लिए अब मैं चल पड़ा। रास्ते भर इसी भाव में डूबा रहा कि जैसे अब अपने भक्तों के बीच पुनः ब्रह्मलीन योगिराज श्री देव-राहा बाबाजो ही विद्यमान हो गये हों। कब पटना गाड़ी पहुँची, इसका बोध भी नहीं हो सका।

आवास पर जब मैं पहुँचा तब उषाकाल का समय था। लगभग सभी लोग सोये हुए थे। भीतर जाने पर सबसे पहले भैयाजी पर नजर पड़ी जो लेटे हुए हो थे। मन में शंका हुई—लगता है, बोमार हैं। नजदोक पहूँच कर जगाया एवं चरण-स्पर्श के उपरान्त स्वास्थ्य संबंधी जानकारी ली। पता चला, पैर में घाव हुआ है। यह चर्चा १३-५-१९९२ की है। चिकित्सक से दिखाया गया तो वह गम्भीर हो गये। कारण, एक तो मधुमेह का विकट रोग और तिस पर पैर में घाव! खून-जांच के बाद पता चला—बहुत ही ज्यादा मधुमेह है। चिकित्सक

ने कहा—जितना शीघ्र हो सके, शल्य-क्रिया जरूरी है। चिकित्सा-विज्ञान के अनुसार मधुमेह के रोगी के पैर में घाव होना, बहुधा मृत्यु का संवाहक हो जाता है। उन्होंने यह भी कहा था कि अगर शल्य-क्रिया सफल भी हुई तो पैर निश्चित रूप से काटना पड़ेगा।

यह सब सुनने के उपरान्त मुझ पर क्या बीता होगा, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं! इस परिस्थिति में घर के किस सदस्य से राय लूँ? भय की स्थिति में घर में रोना-धोना भी मच जा सकता था। और परिस्थिति ऐसी नाजुक थी कि एक दिन का भी विलम्ब अधिक भयंकर हो सकता था। अन्ततः गुरुदेव का ध्यान कर शल्य-क्रिया के लिए अपने को तैयार किया। निर्धारित समय पर शल्य-क्रिया २ घन्टे ४० मिनट में सम्पन्न हुई। मैं बाहर बेंच पर असहाय-सा बैठा हुआ गुरु-मंत्र का जाप करता रहा था और साथ-साथ अश्रु-धारा भी प्रवाहित थी। इसी क्रम में अन्ततः सूचना मिली कि शल्य-क्रिया सफलता से सम्पन्न हो गयी।

तीसरे दिन, रात्रि में लगभग तीन बजे के आस-पास स्वप्न हुआ—'बच्चा रामकृष्ण, परिस्थिति में विशेष सुधार होने के उपरान्त दर्शन में आना।' यह आदेश श्री हंस बाबाजी का था जिनकी पुण्य काया में मैं मन ही मन श्री सद्गुरु महाराज को आरोपित स्वीकार कर चुका था।

भैयाजी के सम्बन्ध में सोचते हुए मैं सोया था। कारण कि उस दिन स्थिति प्रतिकूल थी। पैर के निचले हिस्से (पंजा) में छै जगह शल्य-कार्य हुआ था, जिनमें पाँच कुछ छोटे थे और एक बहुत बड़ा था। डेढ़ माह के अर्से में लगभग सभी छोटे घाव तो सूख गये थे किन्तु चिकित्सक महोदय बड़े घाव के बारे में ग्राफ्टिंग की—यानी दूसरी जगह से माँस और चमड़ा काटकर उसे भरने की प्रक्रिया की सलाह देने लगे थे—नहीं तो डर था कि पैर छोटा हो जायेगा और चलने-फिरने में कठिनाई होगी। अगर छोड़ भी दिया जाय तो उसके भरने में तीन-चार माह लग सकता है, किन्तु वस्तुतः भरने की संभावना नहीं के बराबर थी। व्यय के सम्बन्ध में जानकारी ली तो उस समय के लिए मुझे वह अत्यन्त असाध्य लगा। पर विवश था, उसका भी प्रबन्ध करने के लिए सचेष्ट हुआ किन्तु अन्ततः जितना चाहिए, इन्त-जाम नहीं हो सका।

एक दिन चिकित्सक महोदय से पूछा—श्रीमान्, कितने दिन के बाद यह ग्राफ्टिंग की शल्य-क्रिया संपन्न करनी है। उन्होंने कहा २६ जुलाई को या उसके दूसरे दिन। सोचा, अभी १५ दिन शेष है, इस बीच क्यों नहीं श्री हंस बाबाजी महाराज का दर्शन कर आऊँ। अतः भैयाजी का आदेश लेकर स्वर्गाश्रम के लिए मैं चल पड़ा। रास्ते भर विचार करता रहा कि स्वयं महाराजश्री की दया हो जाती तो अच्छा होता। सोचता रहा कि आजतक बड़े महाराज जी (ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा जी) से भी तो कभी कुछ कहा नहीं, स्वयं ही उनकी दया सदा बनी रहती थी। अतः श्री हंस बाबाजी महाराज अगर स्वयं दया करते तो अच्छा होता, मैं दया के लिए कहूँगा नहीं। यही मन की स्थिति थी। यही विचार स्वर्गाश्रम पहुँचने तक भी कायम रहा।

अभी आश्रम पहुँचकर कपड़ा बदल हो रहा था कि श्री हंस बाबाजी आश्रम में स्वयं पधार गये और एक संत से पूछा—'पटना से बच्चा रामकृष्ण आया है क्या?' उन्होंने कहा—'नहीं, पटना से तिवारी जी आये हैं।'

'अरे बच्चा, वही तो रामकृष्ण है! जरा बुलाई दे।'

अब वे मुझसे कुशल-क्षेम पूछ रहे थे। पर मैं जड़वत् खड़ा था। मेरे मन में यह भाव पटना से ही बना था कि मैं अपने से कुछ नहीं कहूँ, महाराजजी ही स्वयं पूछें। अन्ततः भक्त की लाज उन्होंने रख ली। उन्होंने परिवार का कुशल-क्षेम तीन बार पूछा, किंतु अब भी मैं जड़वत् खड़ा रहा। लगा जैसे मुझे सुनाई ही नहीं दे रहा हो। इसके बाद वे बोले—"रामकृष्ण, तुम्हारा स्वास्थ्य इतना खराब क्यों है?" यह सुनना था कि आँख से स्वयं अश्रु-धारा ढलने लगी।

'अरे बच्चा, रोता क्यों है? बोल बच्चा रामकृष्ण! रो मत, क्या बात है?'

परन्तु मैं था जो मात्र रो ही रहा था। महाराजश्री के कहने के बाद तो रोना और भी तेज हो गया।

'अरे बच्चा रामकृष्ण, हरीन्द्र तो सकुशल है न?'

यह सुनना था कि मेरी स्थिति और बिगड़ गयी; फफक-फफक कर रोने लगा। साथ ही साथ भैया के रोग से सम्बन्धित पूरी स्थिति

भी मैंने कह सुनायी। अभिप्राय स्पष्ट था कि हरीन्द्र (बड़े भैया) की स्थिति ज्यादा खराब है। अब श्री हंस बाबाजी मौन एवं चिन्तित थे। कुछ क्षण के बाद मौन भंग करते हुए उन्होंने कहा—

'मैं कुटिया पर चलता हूँ, तुम शीघ्र वहाँ आओ।'

इसके बाद कोठरी में आकर मैं प्रसाद निकालने लगा—कुटी पर ले जाने के लिए—तथा जगन्नाथदास जी महाराज जलपान की व्यवस्था करने लगे। इतने में श्री हंस बाबा जी महाराज छत से सीढ़ी के द्वारा उतर कर जगन्नाथदास जी की कोठरी के समींप आये और आवाज देने लगे—'रामकृष्ण बच्चा, देर मत कर, जल्दी चल दे, मेरे साथ।" इस पर श्री जगन्नाथदास जी बोले—'भगवन्, जलपान कराकर तिवारीजी को भेज देता हूँ।' सरकार का आदेश हुआ—'नहीं, सिर्फ शर्बत पिला दो, ताकि देर न हो।'

शर्बत पीकर अविलम्ब महाराजश्री के पीछे मैं चल दिया। आगे कुछ दूर जाने के बाद उँगली से इशारा करते हुए उन्होंने कहा—'बच्चा, तू इधर से चल, मैं उधर से आ रहा हूँ।' मेरा मार्ग छोटा था किंतु महाराजजी का मार्ग लंबा था। इसके बावजूद कुटी पर पहले वे ही पहुँच कर मंच पर विराज रहे थे।

वहाँ पर पुनः श्री महाराज ने पूछा—'बच्चा रामकृष्ण, चिकित्सक ने क्या कहा?' ऊपर कथित स्थिति मैंने दुहराई। तब सरकार ने कहा—'यानी कि २६ जुलाई को या दूसरे दिन मांस और चमड़ा दूसरी जगह से निकाल कर घाव को भरना होगा—यही न बच्चा रामकृष्ण?'...

...'हरीन्द्र रोगी, भोगी एवं मोही है...बच्चा, कैसे यह ठीक होगा? तुम उसके लिए प्रार्थना कर रहे हो, तो धैर्य के साथ सुनो बच्चा—तुम २६ जुलाई को रट लगा रहे हो और उसकी आयु उसके पहले ही समाप्त हो रही है। वह जब जीवित रहेगा तब न शल्य-क्रिया संपन्न होगी? वह इसके पूर्व ही दुनिया से संबंध तोड़ लेगा!'

मेरी रुलाई पुनः जोरों पर थी और महाराजश्री मुझे रोने से मना कर रहे थे। "बच्चा रामकृष्ण, जो आया है उसे जाना है, इसमें संशय नहीं। फिर रोता काहे को है। मरने वाले के लिए शोक नहीं

अपितु शुभ कर्म करना चाहिए ताकि उसकी आत्मा भटके नहीं। ऐसा धर्मग्रन्थों का कथन है। इसलिए हिम्मत से काम ले।"

लेकिन लगता था मुझपर कोई असर नहीं है—मैं रोता ही था। इसी क्रम में महाराजश्री से करबद्ध निवेदन किया—'भगवन्, भैयाजी को आयु मिल जाय, दया हो जाय, सरकार! पूर्व में सद्गुरुदेव योगिराज महाराज ने एक बार इन पर ऐसी ही दया की थी।'

बीच में ही टोकते हुए तब वे बोले—'बच्चा, उस समय हरीन्द्र पर दमा के लिए दया की गयी थी। इस समय जीवन-मृत्यु की बात है!"

'भगवन् इस बार आप द्वारा आयु के लिए भी दया हो जाय!'

मेरी बात सुनकर श्री हंस बाबाजी महाराज ने कहा—'बच्चा रामकृष्ण, काल को अपने अनुकूल करना अति ही दुष्कर प्रक्रिया है और आयु का आरोपण और भी कठिन है।'

फिर भी मैं बार-बार निवेदन करता रहा—'भगवन्, भैयाजी के लिए इस बार दया हो जाय!' अब भी मेरा अश्रुपात जारी ही था। अन्ततः उन्होंने पूछा—'बच्चा, तू क्या चाहता है?' मैंने कहा—'केवल यही कि भैयाजी जीवित रहें और स्वस्थ हो जायँ।'

इतना सुनने के उपरान्त महाराजजी पुनः कुटिया में गये और लौटे तो उनके हाथ में वस्त्र के अन्दर कोई गोल वस्तु थी। मंच पर बैठने के बाद उन्होंने पूछा—'बच्चा रामकृष्ण, हरीन्द्र के लिए कौन आयु दान करेगा? समय मात्र तीन दिन शेष है। पटना चला जा, पूछकर आ! पत्नी, पुत्र, पुत्री, मित्र, भाई-बन्धु कौन उसके लिए आयु-दान करेगा?'

मैंने निवेदन किया—'भगवन्, यदि आदेश हो और इस पुनीत कार्य के लिए अगर मैं योग्य होऊँ तो मुझे ही इसका अवसर दिया जाय।'

'यानी कि तू ही आयु-दान करेगा—बोल बच्चा, रामकृष्ण?'

पुनः मैंने जब 'हाँ' कहा तो पूज्य बाबा बोले—'बच्चा, तू अक्षय फल जानता है।' मैंने जब 'हाँ' कहा और पूछने पर बताया

कि मेरे जानते आंवला और बेल अक्षय फल कहे जाते हैं, तो श्री बाबा बोले—'बच्चा रामकृष्ण, तुम निकट आ जाओ; अब मैं हरोन्द्र के लिए तुम से आयु-दान लूँगा और मेरे निकट पहुँचते ही महाराजश्री ने अपना चरण मेरे माथे पर रख दिया और पूछा—'बच्चा, कैसा अनुभव हो रहा है ?'

'भगवन्, बहुत बोझ-सा लग रहा है और लाल, पीला, हरा तथा उजला दिखलाई पड़ रहा है।'

'अरे बच्चा, थोड़ा धैर्य रख।'

कुछ काल के बाद अपना चरण उन्होंने मेरे मस्तक से हटा लिया और वस्त्र में लपेटा हुआ एक अक्षय फल (पका हुआ बेल) दिया। आदेश था—'बच्चा इसे तुम नहीं खोलना, हरीन्द्र ही खोलकर पा जायेगा।'

इसके बाद उन्होंने पुन: मेरे मस्तक पर अपना श्रीचरण रखा तथा पूछा—'बच्चा, रामकृष्ण कैसा लग रहा है ?' मेरा उत्तर था—'सरकार, बिल्कुल हल्का लग रहा है और बड़ी शान्ति महसूस हो रही है। साथ ही साथ प्रसन्नता भी !'.....

१६ जुलाई को रात्रि १० बजकर २५ मिनट पर भैयाजी बैठे-बैठे एकाएक गिर पड़े। पूछने पर ज्ञात हुआ कि बहुत ही तेजी के साथ चक्कर-सा महसूस हुआ था। उनको उठाया गया और कुछ देर के बाद वे सामान्य हुए। दूसरे दिन चिकित्सक से राय ली गयी। उनके सुझाव के अनुसार खून जाँच कराने पर मधुमेह सामान्य था। श्री हंस महाराजजी द्वारा ऐसा संकेत दिया गया था कि समय पर काल आयेगा और अपना प्रभाव दिखायेगा किन्तु कुछ होगा नहीं।

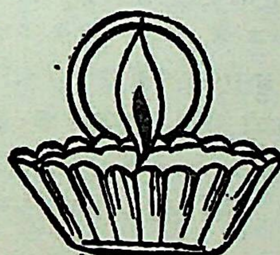
१९ जुलाई को चिकित्सक के पास पट्टी बदलने के लिए भैयाजी को जब ले जाया गया तो चिकित्सक पट्टी बदलने के बाद आश्चर्य करते हुए बोले—'मैंने विद्यार्थी जीवन से आजतक मधुमेह के रोगी के घाव में ऐसा सुधार नहीं देखा। अब तो लगता है कि दुबारा शल्य-क्रिया

की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। दो-चार बार पट्टी बदलने के बाद घाव स्वयं भर जायेगा।' और एक दिन ऐसा भी आया कि चिकित्सक ने कहा—अब पट्टी बदलने की आवश्यकता नहीं है; अब ये चाहें तो अपने काम पर जा सकते हैं !

इस घटना क्रम से मेरे मन में वही प्रतीति दृढ़ हुई है जिसका संकेत परम संत श्री रामविरागी दासजी महाराज, श्री स्वामी जगन्नाथ दास जी, तथा श्री चन्द्र कुमार शर्मा, श्री अमर नाथ ओझा, आदि भक्तवृन्द लम्बे अर्से से करते आ रहे हैं। मेरे मन में अब तनिक भी संशय नहीं रहा कि परम पूज्य योगिराज ब्रह्मर्षि देवराहा बाबाजी महाराज का ही अवतरण पूज्य हंस बाबाजी महाराज में हुआ है और विन्ध्याचल का स्वर्गाश्रम अब सब भाँति हमारे आश्रय स्थल और सिद्ध पीठ के रूप में प्रतिष्ठापित हो चुका है।

अत: ऐसे उदार और करुणामय, भवभयहारी तथा परम कृपालु श्री हंस बाबाजी को मेरा कोटि-कोटि प्रणाम। और तत्काल उनके ही रूप में अवतरित योगिराज श्री देवराहा बाबाजी महाराज को भी बार-बार, कोटि बार नमन और अभ्यर्चन।

श्री हरिः ॐ तत्सत्।



[सूत्र : 'पावन प्रसाद' सितम्बर १९९२]

श्री सद्गुदेव की महती कृपा : विंध्याचल स्वर्गाश्रम का परम पावन तीर्थाटन

श्री महेश्वर प्रसाद यादवेन्द्र

कहा गया है—'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखो तिन तैसी।' अनंतश्रीविभूषित सद्गुरुदेव ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा के रहस्यमय प्रयाण के पूर्व एवं पश्चात् सर्वदा गुरुदेव के चरण-कमलों का सान्निध्य पाने की ललक मेरे मन में रही है। श्री गुरुदेव की प्रथम पुण्य तिथि के पावन अवसर पर भोजपुर जनपद के जगदीशपुर निकटस्थ सियरुआँ ग्रामवासी संत श्री शिवनाथ सिंह जी द्वारा आयोजित अष्टयाम की पूर्णाहुति पर आकाश से श्री शिवणाथ सिंह जी के हाथ में सहसा एक नारियल, एक पत्र एवं गुरुदेव के एक चित्र की प्राप्ति हुई थी जिसकी जानकारी 'पावन प्रसाद' के माध्यम से भक्तों को मिल चुकी है। उनका यह दावा भी रहस्यमय है कि गुरुदेव का महाप्रायण कदापि नहीं हुआ है।

मेरे मन में भी यह भावना थी कि गुरुदेव का महाप्रायण कदापि नहीं हुआ है; वे केवल अगोचर रूप से हिमालय वासी होकर युग-परिवर्तन के महान् कार्यों के संपादनार्थ यह लीला वरण किये हुए हैं। मेरी इस प्रबल भावना की सत्यता का समुद्घाटन तब हुआ जब श्री गुरु-देव ने विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम के अपने परम सक्षम शिष्य श्री हंसदास महाराज को हिमालय बुलाकर एवं उनकी कठिन परीक्षा लेकर, अपने दर्शन से उन्हें कृतकृत्य किया और भविष्य के बारे में उन्हें सावधान करते हुए चौदह वर्षों में अध्यात्म के पुनरुत्थान हेतु अपने पूर्ण प्राकट्य की बात कही। इसकी चर्चा भी 'पावन प्रसाद' में सविस्तार आ चुकी है।

श्री हंसदासजी महाराज को शरीर से बने रहने का आदेश देकर उन्हें दिशा-निर्देश देते रहने की बात परमाराध्य बाबा ने कही थी जिसकी प्रामाणिकता श्री हंस बाबा जी की उस वाणी मे देना चाहूँगा जिसमें उन्होंने कहा है कि "मैं जो कुछ भी कहना या करना चाहता हूँ

स्वयं गुरुदेव वैसा कहते और करते हैं।" स्पष्ट है कि दिव्य तपःपूत हंसदास जी महाराज की काया में श्री गुरुदेव का कारण शरीर ही प्रविष्ट हो अज्ञानांधकार में भटकने वाले हम प्राणियों को दिव्य दृष्टि दे रहा है।

उपर्युक्त तथ्य का अनुभव मैंने तब किया जब श्रीसद्गुरुदेव की असीम कृपा मुझ पर हुई और मैं अपने एक छात्र अजय कुमार के साथ श्री हंसदास जी महाराज के दर्शनार्थ १७ जून, १९९२ को विंध्याचल गया। महीनों पूर्व से श्री महाराज के दर्शनार्थ मैं आकुल-व्याकुल था ही, सो मेरी वह भावना अंततः फलीभूत हुई। विंध्याचल स्टेशन के निकट ही स्थित माँ विंध्यवासिनी देवी का दर्शन तथा उनकी अर्चा-पूजा कर २० जून को अमरावती रोड चौक पर हम पहुँचे। और फिर कुछ ही देर की प्रतीक्षा के बाद एक ट्रक द्वारा हमलोग निर्दिष्ट स्थान भागदेवर-स्थित स्वर्गाश्रम भी पहुँच गये।

प्रकृति की गोद में स्थित गुरुदेव का स्वर्गाश्रम मेरे में औत्सुक्य जगा रहा था कि कब जल्दी से वहाँ पहुँचकर गुरुदेव के देवत्व-संवाहक पूतात्मा श्री हंसदास जी महाराज के दर्शन कर लूँ। मन में बहुत-से संकल्प-विकल्प सँजोये हम सवा दस बजे स्वर्गाश्रम पहुँचे। गो-सेवा के परम उत्थापक गुरुदेव की गोशाला देखकर मैं मंत्र-मुग्ध हो गया। राधेश्याम मंदिर के एक सेवक ने हमलोगों को श्री महाराज जी का दर्शनार्थी समझ प्रसाद दिया तथा मंच तक पहुँचने का मार्ग बताया। हम दोनों गुरुदेव के आदेशाधीन निर्मित अधूरे तालाब के किनारे से गुजरते हुए—गुरुदेव के प्रथम 'प्रसाद' के रूप में सरोवर के पूत जल को सिर पर लेकर—मंच के निकट पहुँचे। वहाँ श्रीराधेश्याम की युगल मोहिनी मूर्ति एवं भक्तराज श्रीहनुमान जी की मूर्ति तथा मंच की सीढ़ी पर लगे श्री गुरुदेव के चित्र को प्रणाम कर 'श्रीराम जय राम जय जय राम' एवं 'राधेश्याम, राधेश्याम' कीर्तन हम करने लगे। मन में भावना आ-जा रही थी कि श्री हंस बाबा जी महाराज के दर्शन होंगे या नहीं। किन्तु लगभग पाँच ही मिनट बाद श्रीमहाराज जी मंच की तरफ आते हुए दृष्टिगोचर हुए। मैंने सिर झुका कर उन्हें प्रणाम किया। उस समय तक मैं निश्चित नहीं था कि श्रीहंसदास महाराज यही हैं। किन्तु मंच की सीढ़ी पर उनके पाँव रखते ही मुझे आभास हो गया कि अवश्य ही श्री हंसदास जी महाराज यही हैं।

श्री हंस बाबाजी के मंचासीन होने पर मैंने देखा कि श्री योगिराज महाराज की तरह ही वे मुझसे प्रश्न कर रहे हैं। वही बैठने का ढंग, वही बात करने की रीति– गम्भीरता और ओजस्वी परावाणी का प्रभाव। पूछे जाने पर अपना नाम-पता मैंने बताया तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज द्वारा उन्हें हिमालय बुलाये जाने पर उनके तपःपूत जीवन से निर्दिष्ट पुण्य कार्य कराने को बात से भिज्ञ होने के बाद उन्हें भी गुरु-तुल्य मान लेने को बात मैंने उनसे कही।

तदुपरान्त श्री हंस बाबा जी महाराज से मैंने भक्ति के सम्बन्ध में कुछ उपदेश की बातें बताने का आग्रह किया। समाधान में उन्होंने भक्ति की कुछ सूक्तियाँ लिखवायीं और हमें उनका अर्थ लिखने का काम देकर स्वयं मंच से नोचे उतर कर वे वाटिका में चले गये। अपनी मति के अनुसार आधो सूक्तियों का अर्थ हम लिख चुके तब पुनः उन्होंने मंच पर आकर कुछ बतासे प्रसाद-स्वरूप हमें दिये। हम दोनों ने आदेश का पालन किया तथा प्रसाद ग्रहण कर पुनः मंच के नोचे बैठकर शेष अर्थ हमने लिखे। बोच-बोच में अपने नाम का सम्बोधन श्री महाराज की मधुर वाणी से पाकर मैं भाव-विभोर हो जाता। सूक्तियाँ और मेरो जानकारो के अनुसार अर्थ निम्नलिखित हैं –

१: तेरे में मेरे में एक मेरा आया। वही मेरे मेरे में एक तेरा पाया॥

अर्थात्– मुझमें-तुझमें और सभी चराचर प्राणियों में एक अपना कहाने वाले परमपिता नारायणरूप श्री देवराहा बाबा विद्यमान हैं; मुझमें-तुझमें सबमें केवल उनका हो अस्तित्व विद्यमान है।

२. तेरा एक साथ मेरा एक साथ। वही साथ-साथ में मेरा एक साथ॥

अर्थात्—पूज्यपाद ब्रह्मवपुधारी नारायण-स्वरूप श्री देवराहा बाबा अपने प्रिय भक्तों से कहते हैं कि मेरे कृपापात्र बच्चो, तुम अपने आपको अकेला मत समझो, मैं हर समय तुम्हारे साथ हूँ, अपने आप में तुम हर पल मेरी उपस्थिति समझो।

३. तू बोला, तू बोला, तू बोला। जब जब बोला एक तू बोला॥

अर्थात्—हे परम विभु, नारायण-स्वरूप श्री सद्गुरु महाराज, प्राणियों की वाक् शक्ति आप हो हो। सभी प्राणियों के अंतस्तल में आपकी ही मधुर वाणो उनको अन्तरात्मा से निकलतो है। जब कहीं

भी किसी चेतन प्राणी के मुख से आवाज निकलती है तो वह आपकी ही आवाज होती है।

४. आने में एक-एक जाने में एक-एक,
उसी एक-एक में तेरा भी एक है।

अर्थात्—जब जन्म लेता है तो मनुष्य अकेला होता है और इह लीला समाप्त कर मृत्यु का संवरण भी वह करता है अकेला ही। प्राणियों के इस आवागमन में—हे नारायण-स्वरूप परमगुरु श्री देवराहा बाबा, आप ही साक्षी रूप विद्यमान रहते हो।

५. तेरा तू एक, मेरा तू एक, वही एक एक में तू ही मेरा एक है।

अर्थात्- हे परम पिता नारायण-स्वरूप श्री सद्गुरु महाराज! सभी प्राणियों में आप ही एक विद्यमान हो और उन प्राणियों में मेरा भी अस्तित्व रहने के कारण मेरे एकमात्र अवलम्ब आप ही हो।

६. सदा तू एक, एक ही में एक, ऐसा तू एक एक ही में एक।

अर्थात्—हे परम पिता नारायण-स्वरूप पूज्य श्री सद्गुरुदेव महाराज, ब्रह्माण्ड के आविर्भाव से लेकर आज तक आप ही एकमात्र सर्वशक्तिमान हो और ऐसे सर्वव्यापी हो कि सभी प्राणियों में ठीक उसी प्रकार विद्यमान हो जैसे कि प्राणियों के बारे में कहा गया है कि 'ईश्वर अंश जीव अविनासी, चेतन अमल सहज सुख रासी।'

७. प्रेम एक तेरा प्रेम एक मेरा, वही मेरा मेरा में एक प्रेम तेरा।

अर्थात्—हे परम परमेश्वर नारायण-स्वरूप श्री सद्गुरु महाराज, प्रत्येक प्राणी के एक-दूसरे के प्रेम में तुम्हारा ही प्रेम समाविष्ट है, अर्थात् प्रेम में ही तुम्हारा वास है। प्रत्येक जीवात्मा तुम्हारी संतान होने के कारण तुम्हारा प्रेम सब पर समान रूप से है—तात्पर्य यह कि तुम प्रेम के वशीभूत हो। सभी जीवात्माओं से तुम प्रेम करने वाले हो, इसलिए प्राणिमात्र में तुम्हारा वास निश्चित है।

८. साथ तू आया, एक तू आया ऐसा तू आया, सदा तू ही आया

अर्थात्—हे परम पिता नारायण-स्वरूप गुरुदेव, जीवात्मा के पृथ्वी पर आते ही आप उसके साथ स्वयं आते हो और एकमात्र सर्वव्यापी होने के कारण प्रत्येक प्राणी में सर्वदा आप विद्यमान रहते हो।

९. पानाना नहीं में, आना नहीं में जब-जब पाना नहीं ही नहीं में।

अर्थात्—हे सर्वप्रभु ! आप पापियों, अवगुणी प्राणियों के उद्धार हेतु, इन पर भी दया करने हेतु अवतरित होते हो। जब-जब आपका अवतरण हुआ पातकियों, अन्यायियों एवं दुष्टों की दुष्टता को मिटाने, समाप्त करने हेतु हुआ।

१०. तेरे तेरे तेरे हैं बहुतेरे, वही तेरे तेरे में एक ही हैं तेरे।

अर्थात्—इस नश्वर संसार में स्वार्थवश बहुत से अपने हो जाते हैं लेकिन इनमें केवल अपना कहलाने योग्य, आत्मीय भाव से अंगीकार योग्य, एकमात्र परम पिता नारायण-स्वरूप पूज्य गुरुदेव महाराज जी ही हैं।

निष्कर्ष यह यह है कि सम्पूर्ण जीव सत्ता के एकमात्र स्वामी परम पिता नारायण-स्वरूप पूज्य गुरुदेव महाराज ही हैं—इसी तथ्य से परिपूर्ण अन्य सूक्तियाँ भी हैं।

यथा—

११. तुम तुम तुम में तुम ही आया,
वही तुम तुम में एक तुम पाया।

१२. साथ साथ साथ में तेरा एक साथ है,
वही एक साथ में सदा साथ साथ है।

१३. फिर में फिर में वही एक फिर में।
वही फिर फिर में तेरा फिर फिर है।

१४. पाता हूँ पाता हूँ, एक एक पाता हूँ।
वही पाने-पाने में सदा एक पाता हूँ॥

१५. तुम्हारा तुम्हारा वही एक तुम्हारा है।
तुम्हारा तुम्हारा में सदा ही तुम्हारा है॥

१६. प्रेम में प्रेम में जब प्रेम आया।
वही प्रेम प्रेम में तेरा प्रेम पाया॥

१७. तुम नहीं तुम नहीं एक एक तुम नहीं।
जब जब तुम नहीं सदा तुम तुम नहीं॥

१८. साथ में आया ऐसा वही आया।
एक ही आया वही वही पाया॥

१९. साथ साथ देखा वही एक देखा।
वही वही देखने में एक वही देखा॥

२०. पा पा पाया ऐसा ही पाया।
उसी पाने पाने में वही वही पाया।

अपनी जानकारी के अनुसार प्रथम प्रोक्त १० सूक्तियों का उपर्युक्त अर्थ लिखकर श्री महाराज जी को दिखाया तो उन्होंने निर्देश दिया कि जाओ इसे ज्ञानेश्वर भक्त को प्रसाद-स्वरूप देना। तदुपरान्त बहुत-सी अलौकिक अध्यात्म तत्त्वों का ज्ञान देकर हम दोनों भक्तों को पोलिथिन के झोले में प्रसाद देकर छुट्टी करते हुए पूज्य बाबा ने आश्रम में प्रसाद पाकर जाने का आदेश दिया। पुनः साष्टांग प्रणाम कर तथा चरण स्पर्श कर हम दोनों तदनुसार आश्रम गये और प्रसाद ग्रहण किया। बिहार से आये संन्यस्त कार्यपालक अभियन्ता श्री स्वामी जगन्नाथदास जी ने मुझे बुलाकर बहुत-सी बातें कीं तथा श्री हंसदास जी महाराज के अलौकिक अध्यात्म ज्ञान की चर्चा करते हुए बताया कि वे गुरुदेव महाराज के सिद्ध कृपापात्र शिष्य रहे हैं। इनके मुखारविन्द से निःसृत परा-वाणी आध्यात्मिक पराकाष्ठा हो द्योतित करती है।

इस प्रकार हम विश्वासपूर्ण भाव से कहते हैं कि अज्ञानांधकार में भटकने वाले हम अकिञ्चन भक्तों को अमृतमयी अध्यात्म वाणी के स्वर्णिम प्रकाश में लाने के लिए श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने ही श्री हंस बाबाजी के माध्यम से हमें लाभान्वित कराया। इसलिए आने वाले युग में आवश्यक आध्यात्मिक शक्ति हासिल करने के लिए सदैव श्री महाराज के चरणों से सम्पर्क बनाये रखने की आवश्यकता है तभी हम सभी जन विश्व-कल्याण के लिए दैवी विभूतियों द्वारा आयोजित आसन्न युग-परिवर्तन में अपेक्षित योगदान कर सकेंगे।

श्री सद्गुरुदेव महाराज की जय !

[सूत्र : 'पावन प्रसाद', फरवरी १९९३]

योगिवर श्री हंस बाबाजी महाराज की परावाणी

श्री मनराखन लाल शर्मा

मैं परम पूज्य श्री देवराहा बाबा से दीक्षित हूँ और पूज्य श्री हंस बाबा जी की छत्रच्छाया में दिनांक २७-१०-९२ से अस्थायी रूप से अवस्थान कर रहा हूँ।

पूज्य बाबा ने मुझे भी कुछ सूत्र लिखाये हैं, जिनमें से चयनित कुछ विशिष्ट सूत्र 'पावन प्रसाद' में प्रकाशनार्थ संलग्न किये जा रहे हैं।

श्री हंस बाबा जी द्वारा उपदिष्ट कुछ विशिष्ट सूत्र

देवहिं सत्यहि देवहिं सत्यहि, सत्यहि रूप निरन्तर में।
सत्यहि गावहिं सत्यहि ध्यावहिं, सत्यहिं ज्ञान निरन्तर में ॥१॥

सत्यहि प्रेम दिखावहिं सत्यहि, सत्यहि सत्यहि सत्यहि में।
प्रेम रूप में सत्यहि आवहिं, सत्यहिं पावहिं सत्यहि में ॥२॥

सत्यहि एक ही सत्यहि एक ही, सत्यहि एक ही एक ही में।
एकही सत्यहि देवराहा आयो, कलजुग के सतजुग में ॥३॥

सत्य ही में सत्य दिखायो, सतजुग को कलजुग में।
या को गायो नेको गायो, सतजुग आयेगो कलजुग में।
नेकों ने कह कहे कह्यो है, सतजुग आयेगो कलजुग में ॥४॥

बाबाने ये कहके कह्यो है, सतजुग में मैं आऊँगो।
वाके सतजुग की रचना को, भक्तन में फैलाऊँ गो ॥५॥

अब वह आगयो विन्ध्य मंच पर, सतयुग ज्ञान फैलावे को।
ज्ञान-ध्यान में एक ही को, वो सत्य ही रूप बतावे को ॥६॥

आ-आ के तू देख-देख जइयो, हंस ही रूप में बाबा को।
सतजुग रचना कैसो करतो, ब्रह्म ही ज्ञान बतावे को ॥७॥

हंस ही रूप निरखि निरखि के, बाबा रूप बतोयो है।
बाबा अपनो ज्ञान-ध्यान को, हंस में ही दिखरायो है ॥८॥

हंस ही मेरो प्यारो प्यारो, एक ही मेरो प्यारो है।
वाने अपनों सर्वस देके, मो को हीय बसोयो है ॥९॥



[स्रोत : 'पावन प्रसाद' फरवरी १९९३]

महात्मा हंस बाबाजी की वाणी

डा० पी० सी० मिश्र

मैं दिनांक १५ नवम्बर, १९९२ को योगिराज श्री देवराहा बाबा के विन्ध्याचल आश्रम पर सपरिवार पहुँचा तो बाबा के ही स्वरूप श्री हंसदास जी के दर्शन का पुनः सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके पूर्व फरवरी १९९२ में मैं प्रथम दर्शन पर ही महात्मा जी से प्रभावित हो चुका था। श्री हंसदास जी के दिव्य दर्शन से हम सभी प्रसन्न थे। सर्वप्रथम मैं उन्हीं के द्वारा लिखवाये गये निम्नांकित पद लिख रहा हूँ जो हृदयस्पर्शी तथा सहज ही आकर्षक हैं—

धन से विद्या तू पढ़्यो, और तेरो विद्वान।
प्रेमी-प्रेमास्पद पढ़े, सोइ जानो ब्रह्मज्ञान॥
वृन्दावन में जन्म लियो, वृथा गँवायो दिन रैन।
ब्रज बाँकुरे का मर्म न जान्यो, धिक्-धिक् तेरो रहन॥

फिर तो श्री बाबा की वाणी उपदेश व सूत्र रूप में सतत बहती रही जो इस प्रकार है—

सूत्र (१)—एते एते कृतत् एते ते तन्ते, धृतत् तन्ते तान्तु धन्ये धन्य या।
अर्थ—धन्य धन्य जे नर-नारी, आवहिं गावहिं एकहिं गारी।
एक ही में एक एक ही धरि के, धरे धरे हैं एक ही धरि के॥

सूत्र (२)—एतानि सर्वं विद्यते पूर्णं क्रियंते ते तंत्रये एकस्य ज्ञानं नारायणम्।
अर्थ—एक ही ज्ञान सर्वत्र है, व्याप रह्यो है एक।
एक ही में एक एक से, तूँ देखियो एक एक॥

सूत्र (३)—शान्ति दृष्ट्वा पूर्ण विधाने एतानि सर्वरूपं प्रेमस्य ज्ञानं नारायणम्।
अर्थ—प्रेम ही रुप ही देखि के, एक ही में एक एक।
पायो एक ही एक से, एक ही का एक एक॥

सूत्र (४)—सर्वत्र क्रियंते पूर्ण स्वतंत्र ज्ञानं एकं प्रेमस्य रुपं नारायणम्।
अर्थ—कर के करियो एक में, धरि के एकाहि साथ।
पाइयो एक ही एक से, एक ही का एक साथ॥

सूत्र (५)—सप्यं ज्ञानं प्रेमस्य ज्ञानं पूर्ण एकं नारायणम्।
अर्थ—सप्य ही रुप ही प्रेम में, रह्यो है एक ही एक।
एक ही में एक जानि के, रहियो एक ही एक॥

अन्य प्राप्त उपदेश क्रम से लिखे जा रहे हैं---

(१) प्रकाश रहा तू एक में, एक ही एक ही एक।
एक ही एक जानि के, तूं जानियो एक एक ॥
(२) तेरा मेरा एक है (औ) एक ही एक ही एक।
एक ही में एक पाइ के, तूं पाइयो एक एक ॥
(३) तेरा गाया एक में, एक ही एक ही एक।
एक ही में एक एक से, गाया एक ही एक ॥
(४) रहना रहा एक में, एक ही एक ही एक।
एक एक के एक से, रहा है एक ही एक ॥
(५) तूं रोया है एक में, एक ही एक ही एक।
रो रो रोया एक में, एक ही एक ही एक ॥
(६) साथ एक ही एक का, है हैं एक ही एक।
एक ही एक पाइके, तूं पाइयो एक एक ॥
(७) तूं मेरा एक एक है मेरा, मेरा में तूं एक ही मेरा।
तूं बनाया एक बनाया (औ) एक ही में एक एक बनाया ॥
(८) गाने गाने में रहा (औ) एक ही एक ही एक।
गा गा एक ही एक से, गाया एक ही एक ॥
(९) तूं मेरा एक एक ही मेरा, मेरा मेरा एक ही मेरा।
तेरा होना एक एक होना, एक एक में एक ही होना ॥
(१०) रोना रोया एक में, एक ही एक ही एक।
एक ही में एक एक से, रोया एक ही एक ॥
(११) प्रेम ही एक ही एक में, रहा है एक ही एक।
एक ही के एक एक से, तूं रहियो एक एक ॥
(१२) तेरा गाना एक में, गाया एक ही एक।
गा गा एक ही एक से, गाया तेरा एक ॥
(१३) अपना अपना एक हैं, तूं ही एक ही एक।
एक ही में एक पाय के, तूं पाइयो एक एक ॥
(१४) साथी तेरे नेक हैं, एक ही एक ही एक।
एक ही में एक पाय के, तूं रहिए एक एक ॥
(१५) गाते गावे गा गये, तेरा एक ही एक।
एक एक के एक से, गाए एक ही एक ॥



[स्रोत: 'पावन प्रसाद', फरवरी १९९३]

पूज्य श्री देवराहा हंस बाबाजी का अभ्यर्चन

डा० योगेश्वर प्र० सिंह 'योगेश'

पूज्य हंस बाबाजी ! शत-शत बार नमन है ।
करें आपका पावन दर्शन, मन में यही लगन है ॥१॥

योगिराज ने काया त्यागी शाश्वत उनकी वाणी ।
भक्तवृन्द के बीच चल रही उनकी सुयश कहानी ।

अब तो आपके दर्शन में हो उनका भी दर्शन है ।
पूज्य हंस बाबाजी को शत बार नमन है ॥२॥

आप चल रहे बाबा पथ पर जग यह जान रहा है ।
बाबा के स्वरूप में आए, जग यह मान रहा है ।

विंध्याचल की पावन धरती का पुलकित कण-कण है ।
पूज्य हंस बाबाजी, शत-शत बार नमन है ॥३॥

हम भक्तों पर दया दृष्टि हो, भक्ति चेतना जागे ।
कुत्सित मोह-वासना-मत्सर, सत्वर मन से भागे ।

आप सरीखे संतों का पद-वन्दन अभिनन्दन है ।
पूज्य हंस बाबाजी को शत बार नमन है ॥४॥

ब्रह्म-जीव में भेद कहाँ है, सब में व्याप्त वही है ।
उसी एक से संचालित नभ है, पाताल, मही है ।

उसी एक के प्रति सब के मन आकर्षण है ।
पूज्य हंस बाबाजी ! शत-शत बार नमन है ॥५॥



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', फरवरी १९९३]

पूज्य हंस बाबाजी का अद्वैत दर्शन

डा० राजेन्द्र कुमार

अगस्त माह १९९२ के अन्तिम सप्ताह में मुझे अपने पुत्र अमित के साथ उसके इन्जीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश हेतु इलाहाबाद जाना पड़ा। उसका कार्य सम्पन्न होने के बाद पूज्य श्री हंस बाबा के दर्शनार्थं विन्ध्याचल आश्रम जाने का कार्यक्रम हमने बनाया। इससे पहले मेरे एक मित्र वहाँ जा चुके थे। 'पावन प्रसाद' के द्वारा पूज्य हंस बाबा में सद्गुरु श्री देवराहा बाबा जी महाराज के अवतरण की सूचना पढ़कर उनके दर्शन की बहुत तीव्र इच्छा थी।

अपने निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सुबह ही विन्ध्याचल रेलवे स्टेशन पर हम पहुँच गये। काफी बादल छाये हुए थे और वर्षा भी हो रही थी। परन्तु मन में दर्शन की उत्कण्ठा थी और थोड़े समय में वर्षा भी रुक गयी। हम अमरावती रोड चौक पर आये और फिर पूज्य महाराजजी की कृपा से एक ट्रैक्टर के द्वारा आश्रम भी पहुँच गये। इस बीच मौसम बहुत ही सुहाना हो गया था।

एक अन्य आगन्तुक ने हमें आश्रम से पूज्य बाबा के मंच की ओर जाने का मार्ग बताया। वह दर्शनार्थी भी उधर ही जा रहा था, अतः उसके साथ-साथ हम भी चल पड़े। महाराज जी ने प्रणाम स्वीकार करते हुए आने का प्रयोजन तथा इस स्थान की जानकारी के बारे में पूछा। मैंने उनसे अपने पुत्र को आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। बाबा बोले— "बेटा अमित, आ मैं तुझे पढ़ा दूँ" और स्वयं मंच पर की कुटी से ही कागज लाकर लिखने के लिये कहा।

उन्होंने उपदेश किया—"जो कुछ मैं बोलूँगा, वह दिव्य वाणी है। यह परा शक्ति के द्वारा सहस्रार से निकलती है। मुझे भी यह याद नहीं रहेगी, अतः लिखते जाना। इसका गूढ़ अर्थ कोई ज्ञानी व्यक्ति ही बता पायेगा। सामान्यतः यह दुरूह ही प्रतीत होगी।"

अनन्तर, पूज्य बाबा ने निम्नलिखित पद लिखवाये—

'अमित प्रताप देखि सुखदायो, एक-एक में रह्यो समायी।'

एक-एक के एक में तेरा पाया एक।
पा-पा के एक-एक में पाया एक ही एक ॥१॥

सोते रोते रह गये एक एक में एक।
जो सोये हैं एक में एक ही एक में एक ॥२॥

रहता हूं एक-एक में एक-एक के साथ।
एक ही एक के साथ में तेरा है एक साथ ॥३॥

पाया है एक-एक में एक-एक का ज्ञान।
एक ही एक के ध्यान से आया एक ही ध्यान ॥४॥

मना मनाऊँ एक में एक-एक को एक।
एक ही एक के एक से मना गया हूँ एक ॥५॥

× × × ×

गोते खाये एक में तेरा बनके एक। बने-बने है एक में तेरा बनके एक ॥४५॥

तू तो रोया एक को, पाके एक को एक। एक एक के एक में तू पाया है एक ॥४६॥

बनूं बनाऊँ एक में तेरा ही एक एक।
जो-जो बताऊँ एक में एक ही एक का एक ॥४७॥

एक-एक के एक से देखा है एक-एक। एक ही एक से एक में वह तेरा है एक ॥४८॥

बोल-बोल के एक में तू बोला है एक। वही वही के बोल में तेरा बोला एक ॥४९॥

जा-जा के देखा तेरा तेरा उसका एक। तेरे एक के एक में तेरा पाया एक ॥५०॥

बना बनाऊँ एक में पाऊँ पाऊँ एक। पाऊँ-पाऊँ एक में तेरा एक ही एक ॥५१॥

पाया पाया एक एक पाया।
एक ही एक ने वही एक पाया ॥५२॥

इस प्रकार कुल ५२ पद पूज्य हंस बाबा ने लिखाये और सब लिखवा कर पूज्य महाराजजी ने बताया कि यही वेदान्त दर्शन है। यद्यपि हम उनसे पहली बार मिले थे परन्तु उनकी बातों से असोम आत्मोयता झलक रही थी। उन्होंने बताया कि कृष्ण भगवान उनके साथ ही रहते हैं तथा उन्हें रास-लीला का आनन्द भी प्राप्त होता है।

पूज्य हंस बाबाजी ने कुछ देर बाद प्रसाद और आशीर्वाद देकर अपने परम पुनीत सान्निध्य से हमारी छुट्टी कर दी और आश्रम से बाहर आते ही हमें फिर ट्रैक्टर मिल गया, जो हमें पुनः अमरावती चौक पहुंचा गया। दोनों बार ही ट्रैक्टर वाले चालकों ने भाड़े के रूप में एक भी पैसा लेने से मना कर दिया और हमें लगा कि उनकी भी पूज्य बाबा में अपार श्रद्धा है।



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', फरवरी १९९३]

श्री देवराहा हंस बाबाजी का वैशाली में नारायणी तट पर दर्शन

श्री दयाशंकर पाण्डेय

'पावन प्रसाद' के सम्पादकजी से जानकारी मिली थी कि विंध्याचल स्वर्गाश्रम के हंस बाबा जी चैत्र नवरात्रा में मोतिहारी श्री देवराहा बाबा आश्रम पर विराजमान हो रहे हैं तथा तदुपरान्त वैशाली क्षेत्र के हाजीपुर में नारायणी तट पर उनका दर्शन होगा।

पूज्य बाबा के पुनर्दर्शन की प्रबल इच्छा पूर्व से ही मेरे मन में हो रही थी। एक बार अक्तूबर, १९९२ में अपने कुछ साथियों के साथ विंध्य स्वर्गाश्रम स्थित मंच पर श्री हंस बाबाजी महाराज का दर्शन लाभ मैं प्राप्त कर चुका था। अतएव बाबा के बिहार आगमन की उक्त सूचना मिली तो हृदय में खुशी की सीमा नहीं रही। बार-बार तुलसीदास जी की पंक्ति याद आती रही कि—

जो इच्छा करिहौ मन मांहो। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥ ...
जापर जाकर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलिहि न कछु संदेहू॥

सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा जी बराबर कहा करते थे —"बच्चा, असीम दया है।" उनकी ही कृपा से वह आशीर्वचन आज उनके प्रतिरूप श्री हंस बाबा जी से भी प्राप्त हुआ।

पटना-स्थित बिहार प्रदेश संस्कृत शिक्षक महासंघ कार्यालय, पुनाईचक से तीन अन्य साथियों श्री सतीश चन्द्र झा (सहरसा) तथा श्री नागेन्द्र कुमार शुक्ल और श्री जनार्दन पाण्डेय (नालन्दा)—के साथ दिनांक ४ अप्रील '९३ (रविवार) को हाजीपुर नारायणी-तट स्थित मंच के समीप मैं पहुँचा। वहाँ एक बहुत ऊँचा मंच बना हुआ था जिस पर पूज्य गुरुदेव श्री देवराहा बाबाजी महाराज का भी एक विशाल चित्र लगा था। पूज्य हंस बाबा जी उसी मंच पर विराजमान थे।

एक भक्त पार्षद के द्वारा गेट के नजदीक ही खड़ा रहने का आदेश पाकर हमलोग रुक गये। कुछ क्षणों के बाद सतीर्थ बन्धु श्री विनोद कुमार मिश्र, हाजीपुर के द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर अन्दर जाकर हमलोग खड़े हो गये और भगवद्भजन करने लगे। दर्शनार्थियों की संख्या बहुत अधिक थी, जिसमें अधिकांश रोग-व्याधि पीड़ित आर्त लोग ही थे।

श्री हंस बाबा जो द्वारा बारी-बारी से रोगों का निवारण हो रहा था। गूँगे से राम-नाम जपवाना, लँगड़े को चला देना, बहरे को सुनवा देना, दृष्टि दोष वाले से पुस्तक पढ़वाना, आदि आश्चर्यजनक चमत्कार मेरी आँखों के सामने घट रहे थे। जो आर्तजन कष्ट लेकर आ रहे थे, दर्शनोपरान्त स्वस्थ होकर जा रहे थे।

कुछ देर के बाद हमलोगो की भी बुलाहट हुई। बाबा को असीम दया हम सब पर हुई और हमलोगों से भी कष्ट की जिज्ञासा की गयी। किन्तु हमने दर्शन एवं आशीर्वाद को लालसा ही व्यक्त की। बाबा के वचनों से साक्षात् परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी महाराज को ही अमृत वाणी की ध्वनि निकल रही थी। उन्होंने कहा—"देख भक्त, तुम लोग संस्कृत अध्यापक हो। कुछ उपदेश होना उचित है। किन्तु यहाँ तो सभी लोग रोग-व्याधि लेकर ही आते हैं और तत्क्षण कल्याण चाहते हैं। उपदेश सुनना तो कोई चाहता हो नहीं।"

उसके बाद पहले संस्कृत में तत्पश्चात् हिन्दी में उपदेश की अमृत वर्षा होने लगी। इस बीच मेरे एक साथी के द्वारा बाबा को सूचना दी गयी कि 'हमलोगों को तो अभी वेतन लगभग ४ वर्षों से बन्द है; वर्तमान सरकार संस्कृत का विनाश ही कर देना चाहती है।'

इस पर बाबा बोले—'बच्चा, सरकार संस्कृत का उत्थान नहीं चाहती और हम संस्कृत का विकास करने चले हैं, तुम्हीं बताओ क्या होगा! परन्तु निश्चय जानो संस्कृत का कभी विनाश नहीं होगा।'

उपदेश का क्रम पुनः प्रारम्भ हुआ। इसी बीच 'पावन प्रसाद' के सम्पादक जी का भी दर्शनार्थ आगमन हुआ और उनके द्वारा 'पावन प्रसाद' को फरवरी १९९२ की प्रतियाँ मंच पर भेंट को गईं। पूर्व से आये भक्तों को प्रसाद देकर पूज्य बाबा ने उनकी छुट्टी की किन्तु उपदेश का क्रम जारी रहा। उस समय बाबा साक्षात् पूज्य सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबाजी

महाराज की प्रतिमूर्ति ही लग रहे थे। उपदेश से भी इसकी पुष्टि हुई। इसमें तनिक भी संशय नहीं कि अकाय होने के उपरान्त सद्गुरुदेव महाराज ही श्री हंस बाबा जी में अवतरित हुए हैं, हो रहे हैं।

सम्पादक जी ('पा० प्र०') के साथ हिन्दी के सुविदित विद्वान् तथा समालोचक डा० राम प्यारे तिवारी और श्री नरेश भी पटने से ही आये थे। आप सभी बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन से भी सम्बद्ध हैं। श्री हंस बाबा जी ने सबका हाल पूछा और उन्हें आशीर्वाद दिया।

सम्पादक श्री ज्ञानेश्वर जी की ओर इंगित करते हुए श्री हंस बाबा बोले—"बच्चा, 'पावन प्रसाद' के ९०-९१ के अंकों में तुमने लिखा था कि महाराज योगिराज श्री देवराहा बाबा जी को गो-लोक वासी कहना सर्वथा गलत है, वे अभी भी यहीं विराजमान हैं। तो तुमने क्या उनको कहीं देखा है?" इस पर श्री ज्ञानेश्वर जी ने वहाँ उपस्थित प्रयाग के वरिष्ठ सतीर्थ बन्धु श्री चन्द्र कुमार शर्मा तथा श्री नीलमणि मित्र की ओर संकेत किया और कहा कि आप सरीखे भक्तों ने खोज कर सबको बता दिया कि पूज्यचरण बाबा कहाँ किस रूप में विद्यमान हैं और आज तो मैं साक्षात् उनका ही दर्शन आप में कर रहा हूँ।

वास्तव में बड़े महाराज जी के अशरीरी हो जाने बाद हम सभी सतीर्थ बन्धु कहीं भी एकत्रित नहीं हो पा रहे थे और हमारी भावना अलग-अलग थी। परन्तु अब श्री सद्गुरु महाराज की असीम दया का लाभ मिला है तथा श्री हंस बाबा में उनका साक्षात् दर्शन पाकर हम सब को पुनः युक्त होने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ है—ऐसी मेरी व्यक्तिगत विनम्र भावाभिव्यक्ति है। मैं "पावन प्रसाद" के सम्पादक श्री ज्ञानेश्वर जी को समय-समय पर नयी-नयी दिव्य जानकारी देने एवं हम सभी भक्तों तक यह महाप्रसाद पहुँचाने हेतु बधाई देने के योग्य तो नहीं हूँ, परन्तु महाराज जी से प्रार्थना करता हूँ कि इनके द्वारा सदा यह महाप्रसाद हमलोगों को मिलता रहे।

एक बार प्रेम से बोलिये—'श्री देवराहा हंस बाबा जी की जय!'

[सूत्र : 'पावन प्रसाद', मार्च १९९३]

विंध्याचल स्वर्गाश्रम : पूज्य हंस बाबाजी का पावन दर्शन

श्री नवलकिशोर प्रसाद सिंह

'पावन प्रसाद' के विगत सितम्बर के अंक में विन्ध्याचल स्थित सद्‌गुरुदेव ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा जी महाराज के स्वर्गाश्रम का वर्णन पढ़ने को मिला। श्री कृष्ण कुमार तिवारी जी का अनुभव, जो उस अंक में 'श्री हंस बाबा जी महाराज का अमोघ दर्शन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, एक चौंकाने वाला लेख था। श्री हंस बाबा के दर्शन की इच्छा मेरे मन में बहुत दिनों से थी, लेकिन मैं उनका दर्शन पहले नहीं कर सका था।

मैंने अपनी धर्मपत्नी के साथ दिनांक २४-१-१९९३ को इलाहाबाद के लिए प्रस्थान किया और वहाँ संगम-स्नान के बाद बस द्वारा विंध्याचल संध्या चार बजे पहुँचा। रात को हमने एक स्थानीय धर्मशाला में विश्राम के बाद प्रातः गंगा-स्नान किया तथा माँ विन्ध्यवासिनी की पूजा-अर्चा के उपरान्त स्वर्गाश्रम के लिए हम चल दिये। मेन रोड पर पहुँच कर जब टेम्पो वाले को स्वर्गाश्रम के बाबा हंसदास जी के दर्शन की बात मैंने कही, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। टेम्पो चालक ने बताया कि विगत चार दिनों से सिर्फ स्वर्गाश्रम के लिए ही सवारियाँ मिल रही हैं, जो बाबा की असीम दया का ही प्रतिफल है।

स्वर्गाश्रम अमरावती रोड पर माँ विन्ध्यवासिनी देवी मंदिर से ७ कि० मी० दूर ग्राम भागदेवर (महुआरी कलाँ क्षेत्र) में स्थित है। वहाँ जाने के सामान्य साधन टेम्पो और ताँगे ही हैं। ६०० एकड़ भू-भाग वाला यह आश्रम चारों ओर विन्ध्य पर्वतमाला से घिरी घाटी में ही अवस्थित है।

आठ बजे आश्रम पहुँचकर, आश्रम के मुख्य द्वार पर लगी एक फिएट कार में बैठे सज्जन से मैंने बाबा हंसदास के दर्शन-स्थल का पता

पूछा। उक्त सज्जन ने कहा कि बाबा अभी मंच पर ही हैं और भक्त जनों को दर्शन दे रहे हैं। हमलोग दौड़कर मचान तक पहुँचे। मंच के नीचे श्री राधाकृष्ण और हनुमान जी की प्रतिमाएँ हैं। हमलोगों ने सब को प्रणाम कर बाबा को साष्टांग दंडवत् निवेदित किया।

थोड़ी देर बाद पूज्य हंस बाबा ने पूछा—"भक्त, तुम्हारा क्या नाम है ?"

मैंने अपना नाम बताया।

बाबा बोले—"तुम्हें यहाँ के बारे में जानकारी कैसे मिली ?"

मैंने बताया—"महाराज, 'पावन प्रसाद' के माध्यम से।"

बाबा ने जब कहा कि आने का कोई विशेष प्रयोजन हो तो बताओ तो मैंने निवेदन किया कि सरकार के दर्शन और दया के लिए हमलोग आए हैं। बाबा साक्षात् परम पूज्य योगिराज देवराहा बाबा जी की प्रतिमूर्ति लग रहे थे। उनका उठना-बैठना, आशीर्वाद देना आदि सब पूज्य देवराहा बाबा जी महाराज का ही स्मरण कराते थे।

पूज्य हंस बाबा ने मुझे तथा मेरी बीमार पत्नी को आशीर्वाद और प्रसाद दिया। बाबा ने पूछा—"भक्त, शीघ्र लौटना चाहोगे ?"

जब मैंने स्वीकारोक्ति जतायी तो प्रसाद देकर बाबा ने कहा—"जाओ भक्त, सब पर दया है, सब का कल्याण होगा।" बाबा ने मेरी पत्नी को कुछ उपचार भी बताये।

उसी टैम्पो से लौटकर मैं विंध्याचल आया और तत्पश्चात् बस से वाराणसी आकर, बाबा विश्वनाथ के दर्शनोपरान्त, बड़े तुष्ट भाव से दूसरे दिन हम बेगूसराय पहुँच गये।

परम पूज्य श्री देवराहा बाबाजी की जय !



[सूत्र: 'पावन प्रसाद', मार्च १९९३]

योगिराज श्री देवराहा बाबाजी का रूपान्तर प्रसंग

श्री जितेन्द्र कुमार सिंह

मै विगत १२ वर्षों से पूज्य योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज का शिष्य हूँ। उनके अशरीरी हो जाने के बाद मैंने सहसा अनाथ-सा अनुभव किया। मेरी स्थिति ऐसी हो गयी कि मानो—

मतरु निपट अवलम्ब बिहीना
मैं न जियब जिमि जल बिनु मीना—

की-सी द्विधा में मैं पड़ गया होऊँ।

पूज्य बाबा श्री देवदास जी से कहकर गये थे कि 'बच्चा, मेरे जाने के बाद तुम सब चिन्तित मत होना, मैं सदैव तुम लोगों के साथ ही रहूँगा और मैं देवरिया सरयू-तट आश्रम जाने पर लोगों से सुनता था कि बाबा काया-प्रवेश करेंगे। मैंने उनका काया-कल्प भवन भी देखा है। कुछ लोग कहते थे कि बाबा पहले भी कई बार निज योग्य अपर शरीर में काया-प्रवेश कर चुके हैं। और अब विंध्याचल में मुझे प्रत्यक्ष यही देखने को मिला है। उस समय सुनकर मैं आश्चर्य करता था, लेकिन आज वही सत्य निकला।

इस बीच मुझे 'पावन प्रसाद' से और विक्रमगंज के गुरु भाई श्री यमुना पाण्डेय तथा श्री रमा शंकर गुप्त से पता चल गया था कि हमारे पूज्य सद्गुरु बाबा का रूपान्तर हंस बाबा जी महाराज के रूप में हो चुका है। मुझ में अतीव जिज्ञासा बनी कि मैं उनका दर्शन करूँ और आखिरकार मैं दिनांक ४-९-'९२ को उनके दर्शनार्थ अपने घर से चल दिया। मैं बस द्वारा सासाराम पहुँचा तथा फिर वहाँ से रेल द्वारा विंध्याचल आ गया। फिर अमरावती रोड चौक से एक ट्रैक्टर द्वारा मैं आश्रम तक पहुँचा।

आश्रम पर एक महात्मा ने मेरे साथ कुछ दूर जाकर बाबा के मंच तक का मार्ग बता दिया। बाबा उस समय मंचासीन नहीं थे। मंच के समीप राधा-कृष्ण और हनुमानजी की प्रतिमाएँ हैं तथा मंच पर पूज्य श्री देवराहा बाबा जी का एक बड़ा-सा चित्र है। मैं इन सभी छवियों को नमन-दण्डवत् कर मंच के समीप बैठकर भजन करने लगा। इसी बीच बाबा मंचासीन हुए। मैंने उनको

विनय-प्रणमन निवेदित किया। मंचासीन बाबा ने तब पूछा—'बच्चा, कहाँ से आये हो, क्या नाम है?' तब मैंने उत्तर दिया—'बाबा, मेरा नाम जितेन्द्र कुमार है और मैं रोहतास, बिहार से आया हूँ।'

पुनः बाबा ने पूछा—'बच्चा, रामायण का पाठ करते हो?' मैंने उत्तर दिया—'बाबा, साल में एक बार पाठ अवश्य ही कर लेता हूँ। इसके बाद वे दोहे-चौपाई कहकर उपदेश करने लगे। उनके उपदेश सुनकर मन बहुत प्रसन्न हुआ। फिर वे कुटी में चले गये।

पूज्य हंसदास जी महाराज के कुटी में प्रवेश करते ही अन्दर एक आवाज सुनाई पड़ी जो पुरानी परिचित आवाज थी। कुछ देर तक वह आवाज मैं सुनता रहा। पश्चात् पूज्य हंस बाबाजी पुनः सम्मुख हुए। बाबा से मैंने पूछा कि महाराज, आप कुटी के अन्दर किससे बातें कर रहे थे, तो उन्होंने उत्तर दिया—'बच्चा, जो सदा-सर्वथा हमारे हैं और हमारे साथ ही हैं उन्हीं से मैं बात कर रहा था।' उसके बाद मंच पर स्थित श्री देवराहा बाबा के चित्र की ओर संकेत करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि उनसे ही वे बात कर रहे थे। इसके बाद पुनः वे कुटी में प्रवेश कर गये और मैं मंच के समक्ष ही खड़ा रहा।

कुछ काल बाद पूज्य हस बाबाजी पुनः सम्मुख मंचासीन हुए। इस बार उन्होंने पूछा—'बच्चा, यहाँ के बारे में तुम्हें कैसे पता चला?' मेरे पास जनवरी मास १९९२ का 'पावन प्रसाद' विशेषांक था। मैंने वही उन्हें दिखलाया। इस पर बाबा तुष्ट हुए और पूछा—'बच्चा, तुम्हारे पास कागज-कलम है?' और मुझ से नकारात्मक उत्तर सुनकर मंच से ही कागज-कलम देकर उन्होंने निर्देश किया कि मैं बोल रहा हूँ, तुम लिखते जाओ। मैं तदनुसार आज्ञा का पालन करने लगा। कुछ देर बाद बाबा ने इलाहाबाद का एक पता दिया और निर्देश किया कि बच्चा, लिखी गयी सामग्री प्रकाशनार्थ भेज देना।

यह घटना दिनांक ५-९-'९२ की है। मैं करीब दो-तीन घण्टे इस क्रम में वहाँ रहा। श्री हंस बाबा का बैठना, बोलना, आशीर्वाद देना सब पूज्य देवराहा बाबाजी महाराज का ही स्मरण कराते थे। इससे मुझे लगता रहा कि श्री हंस बाबा जी में अवश्य ही पूज्य गुरुदेव बाबा जी महाराज का रूपान्तर हो चुका है।

पूज्य हंस बाबा मेरी छुट्टी करने के क्रम में एक भरे हुए पोलिथिन में बतासे का प्रसाद देकर बोले—'बच्चा, चिन्ता मत करना, तुम्हारे अन्दर मैं रहता हूँ; जो उपदेश तुमने लिखे हैं उन्हें प्रकाशन को भेज देना। श्री राधा-कृष्ण

और हनुमान जी को प्रणाम करो। अब तुम्हारी छुट्टी मैंने कर दी। दया है... असीम दया है।'

पूज्य हंस बाबा के उक्त उपदेशों को मैं दोहा, चौपाई और कविता के माध्यम से यहाँ व्यक्त करने की चेष्टा कर रहा हूँ। इनसे यह भी स्पष्ट होगा कि पूज्य हंस बाबा जी महाराज सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी ही हैं।

दोहा

सत्यहिं गावहिं एक महं, रूप निरन्तर एक।
देखहिं एक हि एक मंह, एकहो एक में एक॥

चौपाई

(१) द्रवहिं सकल मंगलमय रूपा। ज्ञान परम अरु प्रेम अनूपा॥
(२) देखहिं रूप परस्पर नाना। बिविध भाँति हरषहिं हनुमाना॥
(३) करहु सदा तिनकर सेवकाई। प्रेम अनन्द रूप रघुराई॥
(४) स्वर्गाश्रम विंध्याचल धामा। 'हंस' रूप 'बाबा' विश्रामा॥
(५) बाबा मंच विशाल विराजें। भक्त जितेन्द्र सम्मुख छाजें॥
(६) वितरित करहिं प्रेम अरु ज्ञाना। रूप प्रकाशित ब्रह्म समाना॥
(७) ज्ञान सुहावन नित्य सुनावहिं। सुनि-सुनि हरषि भक्त जस गावहिं॥
(८) बाबा भवनिधि प्रान अधारा। करें सदा आरत निस्तारा॥
(९) शरणागत सब दीन दुखारी। हरे ताप जय जय उपकारी॥

ब्रह्म ज्ञान

(१) देखा-देखा सकल मँह, देखा एक ही राम।
एक ही तो है सकल मँह, देखा एक ही राम॥
(२) रूप है बाबा 'हंस' का, देते हैं प्रभु ज्ञान।
इसी ज्ञान के मार्ग से, होते भक्त सुजान॥
(३) देख देखावहिं एक मह, श्यामा श्याम को रूप।
बीच-बीच में बोलि के आवत हनुमत रूप॥
(४) सत्य ज्ञान के रूप में, है तीनों का रूप।
रूप ही केवल रूप में, बाबा ही का रूप॥
(५) बाबा 'हंस' में आय के, देते ब्रह्म का ज्ञान।
इसी ज्ञान को पाय के, आता हिय में ध्यान॥

  —(सावशेष)

[स्रोत: 'पावन प्रसाद', मार्च १९९३]

योगिराज श्री देवराहा बाबा और श्री देवराहा हंस बाबाजी के प्रथम दर्शन

श्री हरे मुरारी

परम पूजनीय सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज का प्रथम दर्शन एवं आशीर्वाद मुझे १९६४ में पटना में गंगा जी के मध्य स्थित मंच से मिला था। उसी समय से सदा-सर्वदा मुझे उनकी असीम कृपा की भावानुभूति होती रही है। यह मेरा अन्तर्उद्भूत सुदृढ़ विश्वास है कि मेरे जीवन में जो कुछ भी घटित हो रहा है वह उन्हीं की इच्छा और कृपा से हो रहा है—और मेरे इस विश्वास के पुष्ट आधार भी हैं। श्री बाबा के भौतिक शरीर-त्याग के समाचार से आकस्मिक झटका तो लगा था—वेदना की गहन अनुभूति तो हुई थी, किन्तु इस भाव से कि श्री बाबा तो सनातन और सर्वव्यापी हैं, निर्बलता का भाव मन में नहीं आया और सदा ही मैंने उनकी महती कृपा का पूर्ववत् अनुभव किया।

बाद में जब 'पावन प्रसाद' के माध्यम से मुझे पूज्य श्री हंस बाबा जी महाराज के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी मिली तो दर्शन की उत्कट अभिलाषा जागृत हुई। 'पावन प्रसाद' के प्रधान सम्पादक एवं मेरे अग्रज मित्र आदरणीय श्री ज्ञानेश्वर प्रसाद जी से इस विषय में कई बार चर्चा भी हुई। और एक दिन श्री ज्ञानेश्वर जी ने जब मुझे दूरभाष पर बताया कि श्री हंस बाबा जी महराज का शुभागमन हाजीपुर में नारायणी-तट पर हुआ है तो दर्शन की उत्सुकता अत्यन्त तीव्र हो गयी।

अप्रैल '९३ का उत्तरार्द्ध था। मेरी धर्मपत्नी और मैं श्री ज्ञानेश्वर जी के साथ पूज्य हंस बाबा के दर्शनार्थ हाजीपुर गये। साथ में हमारे वाहन के चालक श्री प्रेमनाथ ठाकुर भी थे। अपराह्न का समय था। नदी के तट स्थित मंच पर श्री बाबा विराजमान थे और कुछ श्रद्धालु-जन नीचे बैठे हुए थे। श्री बाबा का दर्शन पाते ही मैं स्तब्ध रह गया; लगा जैसे मैं योगिराज श्री देवराहा बाबा के सम्मुख ही उपस्थित हूँ—मुखाकृति

और अमृतवर्षा करती दृष्टि में इतना साम्य ! कुछ क्षणों तक तो मैं अभिवादन करना भी भूल गया किन्तु अन्य लोगों को अभिवादन निवेदित करते हुए देखकर मुझे भी अपने कर्तृत्व का स्मरण हुआ और मैंने भी अपनी प्रणति अर्पित की। सरल, सहज और वात्सल्य-बोझिल मुस्कान के साथ अभिवादन स्वीकार करते हुए श्री बाबा ने हमें मंच के निकट बुला लिया। श्री ज्ञानेश्वर जी इसके पूर्व भी एक बार हाजीपुर में ही श्री बाबा का दर्शन कर चुके थे। उन्होंने श्री बाबा को हमलोगों का परिचय दिया तो श्री बाबा ने स्नेह-पूर्वक मुस्कराते हुए कहा—'कहाँ आया मुरारी, बुलाना पड़ा तब आया।' श्री बाबा के इस कथन से मुझे रोमांच हो गया। मुझे लगा जैसे मैं दीर्घ काल से श्री बाबा से परिचित ही नहीं हूँ बल्कि उनका स्नेहभाजन भी रहा हूँ !

श्री बाबा से बैठने का आदेश पाकर हमलोग मंच के निकट खाली स्थान पर बैठ गये। श्री बाबा हमलोगों से बड़ी प्रसन्नता एवं स्नेह से बातें करने लगे। हर कुछ मिनटों के बाद कभी मुझे मेरे नाम से और कभी श्री ज्ञानेश्वर जी को सस्नेह सम्बोधित करते हुए श्री बाबा पूरी आत्मीयता के साथ सरल भाव से कभी गद्यात्मक कभी लयात्मक और कभी संगीतात्मक शैली में विभिन्न संदर्भों की आध्यात्मिक चर्चा करते रहे। इस क्रम में उन्होंने मुझे लिखने का और एक अन्य सज्जन को मुझे कागज उपलब्ध कराने का आदेश दिया। कलम मेरे पास थी।

कागज उपलब्ध होते ही मैं लिखने को प्रस्तुत हुआ—श्री बाबा बोलते गये और मैं लिखता गया। बीच-बीच में श्री बाबा कभी मुझसे और कभी श्री ज्ञानेश्वर जी से अपने कथन की व्याख्या करने को कहते। उनके कथन की व्याख्या तो हम नहीं कर पाते थे किन्तु कथ्य को भाव रूप में जो समझ पाते थे उसे ही अभिव्यक्त करते थे। श्री बाबा यह कहते हुए आगे बढ़ जाते थे कि 'बच्चा, यह मैं नहीं कह रहा हूँ—यह सहस्रार की लहर है—अन्दर से कोई बोल रहा है।'

मैं कुछ हिन्दी और कुछ संस्कृत में लगभग आठ पृष्ठ लिख गया। श्री बाबा के कथन का मूल भाव, जो मैंने समझा, यह था कि 'पूज्य श्री देवराहा बाबा और श्री हंस देवराहा बाबा में कोई अन्तर नहीं है—दोनों एक ही हैं। सभी भक्तजनों में श्री बाबा और श्री बाबा में सभी

भक्तजन निवास करते हैं। सबको प्रेम-भाव से एक होकर रहना चाहिए।'

चर्चा में श्री बाबा ने यह भी कहा कि 'लोक-कल्याण के लिए अभी आरोग्य-लहर भी चल रही है और भक्तों को आध्यात्मिक शक्ति द्वारा रोगमुक्त किया जा रहा है। श्री बाबा ने इसके कई उदाहरण भी दिये। कुछ पुरुष और कुछ नारी भक्त उस समय भी वहाँ रोग-मुक्ति की प्रतीक्षा में बैठे थे।

श्री बाबा के निकट बैठे हुए हम इतने आनन्दमग्न थे कि पता ही नहीं चला कब सूर्यास्त हो गया और घड़ी की सूइयाँ कितनी आवृत्तियाँ ले चुकीं। समय पर ध्यान तब गया जब श्री बाबा ने यह कहा कि 'बच्चा, अब तुमलोगों को छुट्टी करते हैं।' इस बीच करीब तीन घण्टे का समय बीत चुका था। रात होने लगी थी और हाशीपुर से पटना आना था—अतः आना पड़ा। अन्यथा आने की न तो हमारी इच्छा हो रही थी और न हमारी छुट्टी करने की श्री बाबा की ही इच्छा थी। उसके दूसरे दिन ही श्री बाबा को बेतिया के लिए प्रस्थान करना था। यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि मई के मध्य में श्री बाबा पटना भी पधारेंगे।

श्री बाबा से असीम कृपा और प्रचुर प्रसाद पाकर उनके निकट बैठने से सम्प्राप्त आनन्द के साथ और पटना में उनके पुनः दर्शन की उत्कंठा लिए हम नारायणी-तट से वापिस हुए।

संत का और विशेषतः सद्गुरु का सान्निध्य कितना सुखद होता है यह कोई श्री बाबा के निकट बैठकर अनुभव करे—इस का वर्णन मेरी अभिव्यक्ति-क्षमता से परे है।



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', अप्रैल १९९३]

विन्ध्याचल के श्री हंस बाबाजी का पावन दर्शन

श्री मनिक राज सिंह

मैं सद्गुरु ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा का दीक्षित शिष्य हूँ। मैं अध्यापन के कार्य में रत हूँ। गत कृष्ण जन्माष्टमी के एक दिन पूर्व मैं विंध्याचल आश्रम पर गया था। वह आश्रम दिव्य है, पर्वतों एवं जंगलों के मध्य में वास्तव में वह स्वर्गाश्रम ही है। मैंने सुना था—वहाँ एक सिद्ध योगी हैं जिनका नाम हंसदास जी है और उनकी काया में गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा प्रवेश करके अपने शिष्यों एवं भक्तों का मार्ग निर्देशन कर रहे हैं।

मैं और मेरे मित्र श्री राम दूबे जी (वकील) रात को वहाँ पहुँचे। स्वर्गाश्रम द्वार से कुछ कदम दूर अँधेरे में ही हमलोग थे तब तक कान में आवाज आयी—आ जाओ, आओ, बच्चा! किसके मुख से आवाज आयी, उस छाया को हमलोग नहीं देख सके। अमृत सदृश वाणी से लगा जैसे कोई बैठकर बेसब्री से हमारा ही इन्तजार कर रहा था।

रात्रि हो जाने के कारण हम कुछ फल-फूल नहीं ले पाये थे। इस कारण बाबा के दर्शन के लिए जंगल में चले तो मन में बड़ा संकोच लग रहा था। लेकिन यहाँ तत्काल कुछ मिलने वाला भी नहीं था, इसलिए निरुपाय होकर चलते रहे। कुछ दूरी पर भगवान् श्रीकृष्ण एवं राधाजी की मूर्ति दिखायी दी—फिर मंच दीखा और हनुमान जी की मूर्ति दिखायी दी। निकट जाकर दण्डवत् करके इधर-उधर हम देख ही रहे थे, कि तब तक जिस दिशा में भगवान् की मूर्ति थी उसी दिशा से बाबा का शुभागमन हुआ—जंगल में मंगल का अवतरण हुआ।

बाबा ने नाम-पता पूछा और उपदेश दिये और प्रचुर प्रसाद भी दिया। तब हमने मंच से आश्रम की तरफ प्रस्थान किया एवं बाबा से पुनः दर्शन करने की आज्ञा माँगी।

गुरुदेव ब्रह्मर्षि योगिराज देवराहा बाबा जी महाराज कहा करते थे—

जड़ चेतन गुण-दोषमय विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि-विकार॥

इसे स्मरण कर मेरे मन में यही स्पष्ट हुआ कि विश्व में बहुत संत होंगे परन्तु संत हंस बाबा (हंसदासजी) ही उन्हें सर्वाधिक प्रिय थे।

श्री हंस बाबा शून्य में (आकाश में) ताक-ताक कर—श्रीकृष्णजी, राधाजी एवं श्री हनुमान की मूर्तियों की ओर हाथ हिलाकर, तथा गुरुदेव महाराज से कुछ भुनभुनाते हुए—जब बातें करते थे उस समय उनकी भाव-भंगिमा, बैठने और आशीष देने के ढंग एवं शब्दों से मुझे उनमें गुरु महाराज श्री देवराहा बाबा जी की कृपा ही दिखाई देती थी।

अन्त में श्री हंस महाराज ने प्रसाद (असीम दया) के रूप में चौपाई और दोहे मिलाकर कुल १२५ की संख्या में उपदेश सूत्र दिये और मुझे पूर्ण रूपेण कृतार्थ कर दिया। इससे मैं काफी शान्ति महसूस कर रहा हूँ और साधना के क्षेत्र की मेरी सभी भ्रान्तियाँ दूर हो गयी हैं। स्पष्ट है कि यह उनकी कृपा का ही परिणाम है—

यह गुन साधन तें नहिं होई, तुम्हरी कृपा पाव कोइ-कोई।

मेरी वाणी में ताकत नहीं कि उनका आभार प्रकट कर सकूँ।

हे मेरे गुरुदेव, कैसा भी हूँ मैं आपका ही हूँ! कब, कैसे और क्या माँगना चाहिए यह भी मैं नहीं जानता; जैसे भी हो मेरी नौका पार करियेगा!

राम-कृष्ण दो रूप हैं एकहि ब्रह्म समान।
या में वा में भेद नहिं एकहि ज्ञान प्रदान॥

बोलिए गुरु श्री देवराहा माधव की जय!

अन्त में मैं विशेष रूप से अपना अन्तिम विचार पूर्ण विश्वास के साथ यही देता हूँ कि गुरुजी (श्री देवराहा बाबाजी महाराज) ही छोटे बाबा की काया में प्रविष्ट हैं।

साथ ही भक्तों से मेरा विनम्र निवेदन है कि उन्हें आश्रम की गायों के लिए भूसा व दाना हेतु ध्यान देना चाहिए। गुरुवर ब्रह्मर्षि योगिराज बाबा गो-सेवा को सर्वोच्च सेवा मानते थे। अतएव हम जैसे गृहस्थ भक्तों को चाहिए कि भगवान से प्राप्त वस्तु का कुछ अंश यथाशक्ति भगवान को अवश्य समर्पित करते रहें। यह भी मेरा अपना मत है, किन्तु जैसी भक्तों की इच्छा!



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', जनवरी १९९२]

ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा
अध्यात्म-तत्त्व-दर्शन

★ श्री ईश्वर प्रसाद सिंह

पूज्य श्री देवराहा बाबाजी के विंध्याचल स्वर्गाश्रम पर मैं दिनांक ३-७-१९९२ को गया था। वहाँ पर श्री सद्गुरु महाराज के परम यशस्वी शिष्य संत श्री हंस बाबाजी महाराज ने अपनी रचना 'ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा अध्यात्म-तत्त्व-दर्शन' के कुछ सूत्रों का उपदेश देकर मुझे अनुगृहीत और गौरवान्वित किया। वे ज्ञान-वैराग्य एवं भक्ति के पुंज हैं। मैंने उनके उपदेशों को अंशतः लिपिबद्ध किया है। मैं उनमें से ही कुछ सूत्र यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। पूज्य देवराहा बाबा जी महाराज के आध्यात्मिक उपदेशों का ही सार इन सूत्रों में दिया गया है।

ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा अध्यात्म-तत्त्व-दर्शन

(१) अनुस्यन्ते सर्वत्र रूपं प्रेमस्य ज्ञानं एकं प्रिय नारायणं देवराहा।

सभी रूपों में सर्वत्र भरे हुए प्रेम का ज्ञान ही एकमात्र प्रिय नारायाण श्री देवराहा भगवान का ज्ञान है।

(२) अनुस्यन्ते सर्वत्र रूपं एकं प्रिय रूपं नारायणं देवराहा।

सभी रूपों में सर्वत्र भरे हुए प्रिय रूप नारायण श्री देवराहा भगवान हैं।

(३) ध्यानं पूर्ण रूपं अनुस्यन्ते ज्ञानं एकं प्रिय रूपं नारायणं देवराहा।

यह ध्यान ही पूर्ण ब्रह्म रूप का है; जो ज्ञान से भरे हुए हैं वही एक प्रियरूप नारायण श्री देवराहा भगवान हैं।

(४) अनुविज्ञं साधनं प्रेमस्य ज्ञानं प्रेमस्वरूपं प्रेमं नारायणं देवराहा।

प्रेम रूपी नारायण श्री देवराहा भगवान की प्राप्ति हेतु साधन करना ही भगवान से प्रेम करना है। यही सबसे बड़ा साधन है।

(५) अनुसोचस्य ज्ञानं पूर्णज्ञानं प्रेमस्य अनुवर्तंते सतत ज्ञानं एकं प्रियं रूपं नारायणं देवराहा ।

प्रेम रूपी नारायण श्री देवराहा भगवान में निरन्तर प्रेम रखना हो सबसे बड़ा ज्ञान है एवं पूर्ण ज्ञान को प्राप्ति करना है ।

(६) साधनं प्रेमस्य ज्ञानं अनुपादयन्ते शास्त्र ज्ञानं एकं प्रिय रूप नारायणं देवराहा ।

श्री नारायण रूपो देवराहा भगवान की प्राप्ति हेतु साधना करना ज्ञान है एवं सभी शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना है ।

(७) आनन्द रूपं प्रेमस्य रूपं अनुवर्तंते सतत रूपं प्रेमस्य ज्ञानं एकं रूपं नारायणं देवराहा ।

जो आनन्द एवं प्रेम के रूप में अनुकरण करने के योग्य है वह अखण्ड रूपों में प्रिय ज्ञान है ; वही एक प्रिय रूप नारायण श्री देवराहा भगवान हैं ।

(८) साधनं प्रेमस्य रूप अनुवर्तंते सत्यं रूपं एकं विद्यते सतत ज्ञानं एकं प्रिय रूपं नारायणं देवराहा ।

प्रेम के रूप का जो अनुकरण करने योग्य साधन है, जो सत्य रूप है, अखण्ड ज्ञान है वही एक प्रिय रूप नारायण श्री देवराहा भगवान का ध्यान है ।

(९) आनन्द ज्ञानं पूर्ण वृत्तान्ते सतत ज्ञानं पूर्ण रूपं प्रेमस्य नामं एकं प्रिय नारायणं देवराहा ।

आनन्द रूपी ज्ञान, पूर्ण चर्चा करने योग्य अखण्ड ज्ञान है जो पूर्ण रूप में है ; वही एक परम प्रिय ज्ञान नारायण श्री देवराहा भगवान का ज्ञान है ।

(१०) एकं साधनं अनुकृष्टये वाक्यं अनुप्रिय सर्वत्र रूपं नारायणं देवराहा ।

जो कठिनाई से साधना द्वारा प्राप्त किये जाते हैं, तथा सभी रूपों में सर्वत्र व्याप्त हैं वही नारायण रूप श्री देवराहा भगवान हैं ।

(११) सत्यं नामं प्रिय रूपं प्रेमस्य ज्ञानं एकं प्रिय रूपं प्रेमस्य नामं पूर्ण रूपं नारायणं देवराहा ।

नाम सत्य है ; ज्ञान प्रेम का सुन्दर रूप है ; प्रेम रूपी प्रिय नाम के परिपूर्ण रूप नारायण श्री देवराहा भगवान हैं।

(१२) साधनं प्रेमस्य नामं प्रिय रूप नारायणं।

साधना करने से प्रेम नाम (ईश्वर) की प्राप्ति होती है ; उसी सुन्दर नाम के रूप नारायण श्री देवराहा भगवान भी हैं।

(१३) एकं प्रेमं सत्यं नामं पूर्ण ज्ञानं पूर्ण रूपं प्रेमस्य ज्ञानं पूर्ण रूपं प्रेमस्य नामं नारायणं देवराहा।

एक ही से प्रेम करने पर सत्य नाम की प्राप्ति होती हैं ; वही परिपूर्ण ज्ञान एवं परिपूर्ण रूप है। परिपूर्ण ज्ञान की उत्पत्ति होने पर प्रेम रूपी नाम (ईश्वर) को जाना जाता है ; वही नारायण श्री देवराहा भगवान हैं।

(१४) आनन्द प्रेमस्य ज्ञानं सत्यं प्रेमस्य रूपं ज्ञानं अनुमोदनस्य ज्ञानं प्रेमस्य रूपं ज्ञानं प्रेमस्य नाम नारायणं देवराहा।

ज्ञान की प्राप्ति होने पर आनन्द की प्राप्ति होती है। सत्य से ही प्रेम रूपी ज्ञान की प्राप्ति होती हैं। ज्ञान की प्राप्ति से प्रेम रूपी नाम (ईश्वर) की प्राप्ति होती है ; और वही नारायण-रूप श्री देवराहा भगवान हैं।

(१५) साधनं प्रेमस्य ज्ञानं पूर्ण रूपं ज्ञानं प्रिय रूपं एकं प्रेमं नामं नारायणं देवराहा।

साधना से ही प्रेम रूपी ज्ञान की पूर्ण प्राप्ति होती है और ज्ञान की प्राप्ति होने पर सुन्दर रूप एवं प्रिय नाम की प्राप्ति होती है। वही सुन्दर नाम-रूप नारायण श्री देवराहा भगवान हैं।



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', मार्च १९९३]

परम विभु बिन्ध्यवासी संत

श्री हंस बाबाजी महाराज

श्री जगदीप नारायण ओझा

नवरात्र में मैं प्रति वर्ष विंध्याचल जाया करता हूँ। इस वर्ष मेरी विंध्याचल यात्रा के प्रारम्भ के पूर्व मेरे अग्रज श्री जयकृष्ण ओझा, जो पतरातू में वरीय अभियन्ता हैं, गाँव पर आये हुए थे। उन्हीं की प्रेरणा से बाबा हंसदास जी के दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। मैंने षष्ठी तिथि दिनांक १-१०-'९२ को घर से अपनी माँ, धर्मपत्नी तथा गाँव के कुछ इष्ट-मित्रों के साथ यात्रा आरम्भ की। सासाराम से बस द्वारा चलकर विंध्याचल करीब साढ़े ३ बजे सुबह सप्तमी २-१०-'९२ को हम उतरे और एक चाय दुकान पर हंसदास जी महराज के आश्रम के बारे में पूछा। चाय वाले से ज्ञात हुआ कि महुआरो कलाँ में एक बहुत बड़ी गोशाला है और वहीं महाराज जी का आश्रम और भगवान का मन्दिर भी है। सुबह मैंने कष्ट-निवारणी परम-पावनी गंगा में स्नान कर विंध्यवासिनी माँ के दर्शनोपरान्त सप्तशती का पाठ समाप्त कर हवन किया और तदुपरान्त अपने साथियों के साथ त्रिकोण यात्रा भी की। रास्ते में ही एक टेम्पोवाले से बातचीत के क्रम में पूर्ण रूपेण पता चला कि वह आश्रम जंगी पथ से ही निकले एक पथ में पड़ता है जो विंध्याचल से करीब ७ कि० मी० की दूरी पर है। हमलोगों ने रात्रि-विश्राम गंगा तट पर स्थित एक पंडाजी के घर किया।

मेरा मन बराबर आश्रम की ओर ही चला जाया करता था। किसी तरह सुबह हुई और हमने पुनः स्नानादि के बाद मातेश्वरी विंध्यवासिनी के दर्शन किये तथा अपनी माँ, धर्मपत्नी, मित्र श्री लखन लालजी और अन्य साथियों के संग बाबा के आश्रम के लिये कुछ देर सवारियों की प्रतीक्षा की। किन्तु उधर कोई सवारी अभी नहीं जाती थी, इसलिए हमलोगों ने पैदल ही यात्रा प्रारम्भ कर दी। जंगी पथ से प्राची दिशा की ओर हमलोग चल पड़े। करीब ३ कि० मी० चले होंगे कि मेरी माँ थक-सी गयीं और हमलोग एक छोटे-से पेड़ के नीचे आराम करने लगे।

वहीं एक सामान्य-सा घर था और एक कुआँ भी। प्यास भी लगी थी, समय करीब साढ़े ९ बजता होगा। वहीं एक वृद्धा से मुलाकात हुई जो आश्रम के निकट की ही रहने वाली थी।

अब हमलोग निश्चिन्त हो गये कि उसी के साथ वहाँ पहुँचने में सुविधा होगी। पुनः हमलोगों ने चलना प्रारम्भ किया। साथ में वह वृद्धा भी थी। उसकी भाषा बहुत ही अच्छी लग रही थी। हम कुछ ही दूर और चले होंगे कि अचानक एक ट्रैक्टर आ गया। अब हमलोग उसी से बाबा के आश्रम की ओर

द्रुत गति से अग्रसर हुए —प्रसन्नचित्त भाव से ध्यान आश्रम की ओर ही टिकाये हुए। अचानक वृद्धा बोल उठी कि हमलोग आ गये।

सामने मन्दिर दिखाई पड़ा और हमलोग मन-ही-मन पुलकित हुए कि अब पहुँच गये। अब रोड से उतर कर हमलोग आश्रम वाले पथ पर चल पड़े। आश्रम के द्वार पर ही एक बहुत बड़ा कुआँ है जिसमें बोरिंग लगा है। वहीं से गोशाला एवं मन्दिर के हेतु पेय-जल की व्यवस्था है। वहीं हाथ-पैर धो कर हमने भगवान के दर्शन किये, प्रसाद ग्रहण कर स्वच्छ जल पिया और श्री हंसजी महाराज के आश्रम की ओर चल पड़े।

एक संत जी भी वहीं जा रहे थे। उन्हीं के साथ हमलोग पगडंडी मार्ग से चल रहे थे। रास्ते में एक सुन्दर सरोवर भी मिला जिससे कुछ ही दूरी पर निविड़ एकान्त में पूज्य बाबा का मंच दिखाई पड़ा।

हमलोग मंच से कुछ दूरी पर ही अपने-अपने पद-त्राण उतार कर मंच की ओर बढे। आश्रम में केले के अलावा आँवला के तथा कुछ अन्य पेड़-पौधे भी लगे हैं। मालूमा होता था कि प्रकृति ने अपना सारा सौंदर्य यहीं बिखेर दिया है।

मंच के निकट पहुँचने के बाद मंच से सटे श्री कृष्ण जी और राधिका जी की आदमकद प्रतिमा के दर्शन करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमलोग भगवान रासबिहारी एवं राधिका जी की प्रतिमाओं के निकट बैठ गये।

उस समय बाबा हंस दासजी मंच पर ही निर्मित पर्णकुटी के अन्दर थे लेकिन उनकी आवाज सुनाई पड़ रही थी। अचानक प्रसाद लिये हुए अत्यन्त स्फूर्ति के साथ महाराज जी ने दर्शन दिये।

पहले से वहाँ उपस्थित एक अन्य भक्त को विदा करने के बाद पूज्य बाबा ने हमारा परिचय पूछा तथा कुछ देर के लिये ध्यानस्थ हो गये। कुछ क्षण बाद बाबा बोले —"बच्चा जगदीप! ज्ञानेश्वर मेरा परम भक्त है। 'पावन प्रसाद' में बराबर छापता रहता है।....

"अच्छा बच्चा, ले कुछ लिख ले", और साथ-ही-साथ कागज तथा कलम बढ़ाया। मेरे पास भी कलम थी ही, सो मैंने अपनी कलम से ही लिखना प्रारम्भ किया।

आगे-आगे बाबा बोलते जाते और मैं लिखता जाता। आवाज बिल्कुल श्री गुरुदेव (योगिराज देवराहा बाबा) के समान ही थी—हाव-भाव और स्वरूप भी गुरुदेव के ही समान। उन्होंने निम्नांकित सूत्र लिखाने प्रारम्भ किये और पुनः बोले कि "ज्ञानेश्वर भी मेरा परम भक्त है—वह निरन्तर गुरु-गाथा में समर्पित रहता है।" अब मैंने लिखना प्रारम्भ किया—

जगदीप प्यारा एक सो, रहता एक ही एक।
एक ही में एक एक तू, है एक ही का एक॥

तेरे मेरे एक में, है एक ही के एक।
एक ही के एक जानिके, तू भजियो एक-एक॥

रहता तेरे एक में, तेरा ही एक एक।
एक ही में एक पायके, पाया एक ही एक॥

आने में आता रहा, जाने में है एक।
एक ही के एक एक में, तू है एक ही एक॥

सुन सुन आया एक से, तेरा एक ही एक।
एक एक के एक में, हुआ है एक ही एक॥

रोते रोते रो गये, तेरे प्रेमी एक।
एक ही के एक-एक में, तू प्रेमी है एक॥

बना बनाया एक में, तेरा है एक एक।
एक एक में एक से, तू भी बना है एक॥

अन्दर-बाहर एक मै, तू रहता एक एक।
एक ही में एक एक से, तू है एक ही एक॥

आके पाके एक में, तेरा होके एक।
एक ही में एक एक से, हुआ एक ही एक॥

तेरा प्रेम ही एक है, सदा सदा से एक।
एक ही में तू आय के, पाया एक ही एक॥

लिख लिख आया एक में, तेरा ही एक एक।
एक ही में एक पाय के, लिखा है एक ही एक॥

तुम ने बनाया एक को, एक ही से एक एक।
बना बना के एक में, तुमने दिखाया एक॥

तेरा बन के एक में, देखा है एक एक।
एक ही में एक पाय के, तुमने दिखाया एक॥

गाते-रोते एक में, रहते एक ही एक।
एक ही में एक आयके, सोये एक ही एक॥

खोज-खोज के एक में, जो खोजा है एक।
एक ही में एक एक से, खोज गया है एक॥......

जब लिखना-लिखाना समाप्त हुआ तो बाबा बोले—'बच्चा सुन, एक बार मैं गोशाले में गो दर्शनार्थ गया था कि बिहारी जी वहीं मिले और बिहारी जी ने यहाँ हमारे मंच के सामने में रहना पसन्द किया। तब से हमें बिहारी जी यहीं पर रासलीला से पुलकित करते रहते हैं।

बाबा अब अचानक धारा-प्रवाह ब्रज भाषा बोलने लगे और वे राधिकाजी के संग बिहारी जी की रास लीला का बखान करने लगे। मेरे मन में कुछ शंका-सी उत्पन्न हुई तो बाबा ने अचानक कहा—"बच्चा जगदीप, मेरी भाषा ब्रज-भाषा नहीं है, बिहारी जी के सान्निध्य से थोड़ा बोल लेता हूँ।"

कभी-कभी बाबा संस्कृत के श्लोकों का भी रसास्वादन कराते थे। करीब दो घंटे कड़ी धूप में स्वयं रहकर बाबा अपने वचनामृत का रसास्वादन हमें कराते रहे।

अन्ततोगत्वा बाबा अपनी पर्ण कुटी में गये। लेकिन उनकी आवाज कुटी से भी गूँजती रही।

"बच्चा जगदीप, कह क्या कहता है, अरे कुछ कह!" मैंने कहा बाबा आपका आशीर्वाद चाहिए। और यही वाक्य बाबा के बार-बार कहने पर भी दुहराता रहा। बाबा अपनी पर्ण कुटी से ही बोले—"अभी बच्चा है, पगला है। ठीक है।"

कुछ पल बाद पुनः मंचासीन दर्शन देते हुए श्री बाबा बोले—"ले बच्चा ये प्रसाद। अब तेरी छुट्टी कर देता हूँ। जा, मैं तेरे साथ हूँ। घबड़ाना मत।"

मेरे अग्रज के लिए भी प्रसाद का एक थैला हंस बाबाजी ने दिया। इसके बाद हमलोग वहाँ से गोशाले आये लेकिन गो-दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला क्योंकि वे सब चरने निकल गई थीं। गोशाला बहुत दूर में स्थित है। एक तरफ पूरे बड़े हॉल में चारा रखने की व्यवस्था है और दूसरी तरफ गायों के खाने की व्यवस्था।

पुनः हमलोगों ने बाबा का प्रसाद पा कर कुएँ का शीतल जल पिया तथा उसके बाद न चाहते हुए भी आश्रम से हम विदा हुए।

सड़क पर आए तो पता चला कि अब सवारी नहीं मिलेगी। अतः पुनः पद-यात्रा प्रारम्भ हो गयी। लेकिन आधा कि० मी० चलने के बाद ही एक ट्रक आ गया जो विंध्याचल तक हमें ले आया। बाबा की कृपा से हमलोग सकुशल वाराणसी भी पहुँचे तथा वहाँ विभिन्न स्थलों का दर्शन-अवलोकन कर अपने गाँव लौटे।

"सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा और श्री हंस बाबाजी की जय।" ★

[सूत्र : 'पावन प्रसाद', जनवरी १९९३]

विन्ध्याचल-धाम में श्री हंस बाबाजी का पावन दर्शन

श्री महेन्द्र प्रसाद सिन्हा

'पावन प्रसाद' के अक्तूबर १९९१ के अंक से विन्ध्याचल स्थित सद्गुरु-देव श्री देवराहा बाबाजी महाराज के स्वर्गाश्रम का वर्णन आता रहा है। वस्तुत: इस क्रम में श्री कृष्ण कुमार तिवारी जी का अनुभव जो 'पावन प्रसाद' के सितम्बर '९२ के अंक में "श्री हंस बाबा जी महाराज का अमोघ दर्शन" शीर्षक से प्रकाशित हुआ, एक चौंकाने वाला वृत्तान्त था। वैसे तो श्री हंस बाबा के दर्शन की इच्छा मेरे मन में बहुत पहले से थी, लेकिन इस सम्बन्ध में उनके आदेश का स्फुरण मन में नहीं जग रहा था। तिवारी जी के माध्यम से जब बाबा का प्रसाद 'पावन प्रसाद' कार्यालय में मुझे मिला, तब यह भी अनुभव हुआ कि यही बाबा का बुलावा है। इसके कुछ ही समय बाद 'पा० प्र०' के संपादक-संचालक श्री ज्ञानेश्वर जी ने इसके अक्तूबर '९२ अंक की कुछ प्रतियाँ श्री हंस बाबा जी के मंच पर समर्पित कर आने के लिए मुझे दीं। फलत: अपने कनीय पुत्र प्रेम प्रकाश के साथ मैंने यात्रा की और विंध्याचल स्टेशन (उत्तर रेलवे) दि० २०-११-१९९२ को सुबह में पहुँच गया।

स्टेशन के समीप ही माँ विन्ध्वासिनी देवी का मन्दिर गंगा-तट के समीप ही है। हमलोगों ने खत्री धर्मशाले में सामान रख कर गंगाजी में स्नान किया और देवी के दर्शनोपरान्त पूजा-अर्चना कर हम मेन रोड पहुँच ही रहे थे कि टेम्पो चालक गुलाबचन्द भक्त मिला जो हमें आश्रम ले जाने के लिए स्वयं समुत्सुक प्रतीत हुआ।

स्वर्गाश्रम अमरावती रोड पर माँ विन्ध्वसिनी देवी के मन्दिर से ७ कि० मी० दूर ग्राम भागदेवर, महुआरी कलाँ क्षेत्र में स्थित है। वहाँ जाने के लिए साधन रूप में टेम्पो तथा ताँगे आदि मिल जाते हैं। इस रोड पर पहाड़ों से पत्थर ढोने वाले ट्रक तथा ट्रेक्टर आदि भी बहुसंख्या में मिलते हैं जो आश्रम के लिये नि:शुल्क सेवा दर्शनेच्छुओं के लिए प्रदान करते हैं।

आश्रम लगभग ६०० एकड़ भूमि में है तथा चारों ओर विन्ध्य पर्वतमाला से घिरी घाटी में है।

हमलोग करीब साढ़े ७ बजे टेम्पो से आश्रम पर पहुँचे। मुख्य द्वार के निकट मन्दिर में भगवान की पूजा-अर्चा चल रही थी। इसी मन्दिर में श्री राम, लक्ष्मण एवं सीताजी की मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा स्वयं श्री बड़े महाराज जी (योगिराज श्री देवराहा बाबा जी) ने मार्च १९८९ में प्रयाग के कुम्भ से आकर की थी।

विन्ध्याचल आश्रम की गोरक्षिणी के प्रभारी संत श्री स्वामी जगन्नाथ दास जी तथा संत मनराखन जी (अवकाश-प्राप्त जिलाधिकारी) हमलोगों के साथ दर्शन कराने हेतु चल दिये। रास्ते में ही गोशाला है एवं एक भव्य सरोवर भी है जिसे बड़े महाराज जी ने ही खुदवाया था।

लगभग एक कि० मी० की पद-यात्रा के बाद मंच के नजदीक हमलोग पहुँचे और नमन-दण्डवत् निवेदित किया। मंच पर जाने के लिए सीढ़ी थी जिसके ऊपर पूज्य श्री देवराहा बाबा जी का एक बड़ा चित्र स्थित था। मंच के नजदीक श्री राधा-कृष्ण एवं श्री हनुमान जी की प्रतिमाएँ हैं। कुछ दूर पर स्नान कुंड है जो १९८९ में बड़े महाराज जी के स्नान के लिए विशेष रूप से निर्मित हुआ था।

थोड़ी देर के बाद श्री हंस बाबा जी पीछे के रास्ते से आये और मंच पर आसीन हुए। उन्होंने जब नाम-पता पूछा तो मैंने निवेदन किया—सरकार मैं 'पावन प्रसाद' कार्यालय से आया हूँ—और अक्तूबर '९२ के अंकों का पैकेट और कुछ फल प्रसाद रूप में मैंने समर्पित किये।

आने का विशेष प्रयोजन बाबा ने जब जानना चाहा तो मैंने कहा—सरकार के दर्शन और दया के लिये हम आये हैं।

श्री गुरु महाराज के दिव्य विशाल मंच पर एकादशी के दिन श्री हंस बाबा जी महाराज का प्रथम पावन दर्शन हुआ। यह बहुत बड़े ही सौभाग्य की बात थी। श्री हंस बाबा जी साक्षात् परम पूज्य योगिराज महाराज जी की प्रतिमूर्ति लग रहे थे। उनका उठना-बैठना, बोलना, आशीर्वाद देना आदि सब पूज्य देवराहा बाबा जी महाराज का ही स्मरण कराते थे।

बाबा ने पास बुलाकर एक पुस्तक की चिह्नित पंक्तियों को जोर से पढ़ने को कहा—"योगी कभी भी मरते नहीं, वे शुद्ध आत्मा वाले दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।"

उन्होंने कहा—"देखो बच्चा महेन्द्र, योग साधना में कठिन तपस्या द्वारा मन को स्थिर करना होता है—जो गुरु के प्रेम में एकाग्र हो जाता है वह गुरु को पा लेता है। तब उसमें एक-एक कर गुरु के सभी गुण प्रकट होने लगते हैं।"

प्रवचन का क्रम चलता रहा।

"विन्ध्याचल आश्रम के प्रति बड़े महाराज जी की विशेष दृष्टि रहती थी। वे कहा करते थे—बच्चा, विन्ध्याचल सिद्ध पीठ है, मैं कई जगह रहता हूँ पर मेरा ध्यान विन्ध्याचल की ओर सदैव आकृष्ट रहता है।"

श्री हंस बाबा जी ने अवधी भाषा में उस स्थान की महिमा का वर्णन शुरू किया। वे श्री राधा-कृष्ण की महिमा एवं उस स्थान पर उनकी रास-लीला का वर्णन करते-करते भाव-विह्वल हो जाते थे :

परावाणी चर्चा

पूज्य हंस बाबा ने कहा—कुछ शब्द या अक्षर बोलो—और फिर उसके साथ परावाणी में वे कविता-चौपाई तुरंत बोल जाते थे। बाद में अपने मुखारविन्द से संस्कृत और हिन्दी के कुछ सूत्र उन्होंने लिखवाये :—

महेन्द्र प्यारा, तू रहियो ही एक ही एक, एक ही में एक जान के तू रहियो एक-एक।
तेरे मेरे एक में रह रहे एक ही एक, एक ही में एक पायके तू पइयो एक-एक।
तेरा प्रेम एक देख के देखा है एक-एक एक-एक में एक से तू दिखाया एक।

तू-तू एक-एक एक-एक मेरा, एक-एक में तू एक मेरा।
आया तू है देख दिखाने, एक ही में एक-एक को पाने।
एक ही में तू एक ही पाया, हंस में ही एक बाबा पाया।

बाबा एक ही एक ही ज्ञाना, दे-दे एक ही एक ही ध्याना।
विन्ध्य मंच है एक विशाला, ता पर एक ही एक निराला।
एक निराला बाबा प्यारा, एक ही एक ही ज्ञान पसारा।

दे-दे देता एक ही प्रेमा, प्रेमा में एक-एक ही प्रेमा।
तू भी लइयो एक ही प्रेमा, एक प्रेम ही बाबा प्रेमा।
बाबा नित्य निरंतर एका, एक ही में एक देखहि एका।

सदा एक से एक ही ज्ञाना, देते रहते एक ही प्राना।
पाऊँ एक ही रूप ही रूपा, हंस ही में एक बाबा रूपा।
सदा मनाऊँ एक मनाऊँ, एक ही एक में बाबा मनाऊँ।

बाबा भइयो हंस ही रूपा, देखि देखि एक प्रेम ही रूपा।
सत्य ज्ञान एक-एक पसारा, एक ही में एक-एक ही प्यारा।
बाबा प्यारा को रखियो प्यारा, प्यारा प्यारा बाबा प्यारा।

× × × ×

(१) प्रेमस्य ज्ञानं पूर्ण ज्ञानं एकं ज्ञानं नारायणम्।
प्रेम ही रूप ही एक रहियो एक ही रूप ही एक,
एक ही प्रेम ही रूप में ज्ञान का ही एक रूप।

(२) सर्वत्र रूपं प्रियं द्रष्ट्वा एकं ध्यानं नारायणम्।
सब रूप ही एक से देख रहियो एक,
एक ही को एक जानके तू देखियो एक एक।

(३) सर्वत्र दीयन्ते पूर्ण प्रेमस्य नारायणम्।
प्रेम ही रूप ही एक से दे रहियो एक,
एक ही में एक आइ के तू पइयो एक एक।

(४) प्रिय रूपं सर्वत्र तिष्यते एकं ध्यानं नारायणम्।
प्रेम ही रूप के रूप में व्याप्त रहियो एक,
एक ही में एक आइ के तू पइयो एक एक।

(५) शान्ति रूपं प्रियं द्रष्ट्वा एकं रूपं नारायणम्।
शान्ति रूप ही एक से देख रहियो एक,
एक ही रूप ही रूप में तू देखियो एक-एक।

११ बज रहा था, और मैं लौटने की तैयारी में था। बाबा का आदेश हुआ—'देखो बच्चा महेन्द्र, प्रेस से आये हो, शाम तक रुक जाओ, इस स्थान की जानकारी और ले लो।' तदनुसार अन्य सभी दर्शनार्थी तो १२ बजे तक चले गये, सिर्फ हम चार जन रह गये।

बाबा ने प्रसाद स्वरूप केला, सेव और दूध का मटका दिया और उन्होंने कहा—"आज एकादशी है, स्नान कुंड के समीप जाकर प्रसाद ग्रहण करो।"

सन् १९५९ ई० में जब बड़े महाराज जी के दर्शन में हम सरयू तट आश्रम (देवरिया जनपद) गये थे तो बाबा ने मंच से कुछ ही दूर भेज कर हमें तृप्ति भर दही का शर्बत पिलवाया था। बड़े महाराज जी के अशरीरी हो जाने के पश्चात् जो कमी हम महसूस कर रहे थे, आज विन्ध्याचल मंच के पास फिर वही भाव आ गया।

अपराह्न ४ बजे फिर मंच के समीप हम आये। प्रवचन के दौरान बाबा राधा-कृष्ण की राम-लीला का वर्णन करते-करते भक्ति की चरम सीमा पर पहुंच जाते थे।

श्री बाबा रचित अमुद्रित स्तोत्रों (परावाणी) के कई बंडल (संग्रह) हमने देखे। उनका यथा-प्राप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) योगिसम्राट श्री देवराहा बाबा महामृत्युंजय ध्यान योग—
११,००० सूत्र।
(२) अमृतोपम दिव्त दर्शन—१८,००० सूत्र ११ दिन में बना।
(३) अध्यात्म-तत्त्व दर्शन—१८,००० सूत्र १८ दिन में बना।
(४) तत्त्व-ज्ञान विवेचन— ५,५११ सूत्र।
(५) विनय स्तोत्रम्— ५,५११ सूत्र।
(६) अनन्त महिमा— ५,५११ सूत्र।
(७) अनन्त नाम— ५,५११ सूत्र।
(८) राधा-कृष्ण विनय स्तोत्रम्— ११,००० सूत्र।
(९) भक्ति योग दर्शन (प्रस्तावित)— ५१,००० सूत्र।
(यह रचनाधीन है—७,००० सूत्र हो गये हैं)

मंच पर बाबा ने प्रसाद की तीन गठरियां बनायीं जिनमें एक हमारे सर पर और दूसरी प्रेम प्रकाश (पुत्र) के सर पर देकर कहा—"देखो बच्चा, चिन्ता की गठरी यहीं छोड़ कर जाओ, असीम दया है, कल्याण है, प्रसाद लेते जाओ। और यह तीसरी गठरी 'पावन प्रसाद' के सम्पादक संत ज्ञानेश्वर के लिए लेते जाओ और कहना असीम दया है, धर्म प्रचार-प्रसार जारी रहे।"

बाबा ने अपने दो चित्र भी दिये—जिनमें एक सम्पादक जी के लिए था—मंचासीन अवस्था का—जैसे बड़े महाराज जी रहते थे ठीक उसी तरह का।

विन्ध्याचल स्थित श्री देवराहा बाबा का स्वर्गाश्रम सभी ईश्वर भक्तों का परम पावन तीर्थ स्थल है। वहाँ जाकर कोई भी यह दिव्य अनुभव प्राप्त कर सकता है—इसमें कोई संशय नहीं, कोई विवाद नहीं।

बोलिए :—

सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी महाराज की जय !
संत चूड़ामणि श्री हंस बाबा जी की जय ! !



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', जनवरी १९९३]

योगिराज देवराहा बाबा और श्री देवराहा हंस बाबा जी के पावन दर्शन

★ श्री राजेन्द्र द्विवेदी

सर्वप्रथम मुझे श्री देवराहा बाबाजी महाराज का दर्शन १९८५ में सरयू-तट स्थित आश्रम पर हुआ। मैं अपने सहयोगी मित्र श्री अमर नाथ ओझा जी के साथ गया था। श्री ओझा जी ने मेरा परिचय देते हुए श्री बाबा से कहा कि बहुत भटकने के बाद ये श्री महाराज के चरणों में आये हैं, मेरे सहयोगी हैं। इसके बाद मुझे जो आनन्दमय अनुभव हुआ, उसकी अभिव्यक्ति के लिए मुझे शब्द नहीं मिल रहे हैं, पर यही कह सकता हूँ कि तत्पश्चात् श्री बाबा की दया-दृष्टि मुझे मिलती रही और मैं अपनी पूर्ण भक्ति-भावना से श्री बाबा के चरणों में तन्मय हो गया। उस दिन शाम तक हमलोग रहे और उसके बाद अक्सर श्री बाबा के दर्शन में हम कभी अकेले और कभी श्री ओझा जी के साथ सपरिवार जाते रहे। उस वक्त हम दोनों छपरा में ही पदस्थापित थे। श्री महाराज जी की असीम दया का अनुभव मुझे सदैव हो रहा था। एक दिन ओझा जी ने मुझसे पूछा—दूबे जी, बाबा के दर्शन में इलाहाबाद चलिएगा? मैंने कहा—क्यों नहीं, और हम दोनों ने फरवरी १९८७ में महाशिवरात्रि के एक दिन पूर्व इलाहाबाद के लिए प्रस्थान किया।

छपरा से ट्रेन के रवाना होते ही ओझा जी तो आराम करने लगे, किन्तु मुझे नींद नहीं आ रही थी। गौतम-धाम रिविलगंज से ज्योंही आगे गाड़ी बढ़ी कि मैंने ओझा जी को सोने से वंचित किया और जगाकर कहा—मुझे कुछ बातें करने की इच्छा हो रही है, कृपया आप सोयें नहीं। और मैंने अपनी उत्सुकता अंततः उनसे कह ही दी कि इस दर्शन में मैं श्री बाबा से दीक्षा लेना चाहता हूँ। मैंने दृढ़ता से कहा—लगता है महाराज जी की मेरी बुलाहट इसी हेतु है। दूसरे दिन सुबह ६ बजे के लगभग हम दोनों इलाहाबाद में पूज्य योगिराज श्री देवराहा बाबा के गंगातट-स्थित मंच आश्रम पर पहुँच गये, जो झूसी के निकट था।

हम दोनों ने अपना-अपना प्रसाद श्री बाबा के मंच पर अर्पित किया और मैंने बाबा से निवेदन किया कि त्रिवेणी स्नान करके प्रभु की गुरुवाणी सुनने की इच्छा है। श्री बाबा ने कहा बच्चा, इससे पुनीत काम और क्या होगा—तुरंत जाओ और स्नान करके आ जाओ। हम दोनों आज्ञा पाकर त्रिवेणी संगम पर गये और स्नान तथा पूजा-अर्चना करके वहाँ से डेढ़ बजे तक बाबा के मंचाश्रम पर पहुँचे। श्री बाबा भक्तों को उपदेश कर रहे थे। फिर कुछ ही मिनटों में क्रम बदलकर वे बोले—'बच्चा, जिसको गुरु-दीक्षा लेनी है सो सभी मंच के पास आ जाओ।' मुझ सहित पाँच भक्त कतार में मंच के पास आ गये। मंचासीन श्री बाबा की ओर मैं टक लगाये देख रहा था। बाबा ने दीक्षा मंत्र "रां रामाय नमः" और "ॐ नमो नारायणाय" बोल-बोलकर कई बार हमलोगों से भी उनकी आवृत्ति करवायी और उक्त मंत्र द्वय हमलोगों को लिखित भी दिलवाया। तदुपरान्त बाबा ने जो उपदेश दिये वे पूरी तरह मुझे नहीं ग्राह्य हुए पर समय के अन्तराल में आज मुझे महसूस होता है कि मेरे जीवन भर का सम्बल उन उपदेशों में था।

अन्त में पूज्य बाबा ने ओझा जी से पूछा—यहाँ से कहाँ जाओगे? उन्होंने कहा—छपरा वापस लौट जाऊँगा। मुझसे पूछने पर मैंने निवेदन किया कि महाराजजी, मुझे बनारस विश्वनाथ धाम भी जाने की इच्छा है और विंध्याचल भी। श्री बाबा की दया से मैं उक्त सभी कार्य पूरा करके सकुशल छपरा वापस आ गया।

इसके उपरान्त योगिराज देवराहा बाबा के दर्शन में मैं कभी सपरिवार और कभी अकेले साल में एक या दो बार जाता रहा। जब मेरी बदली छपरा से सासाराम हो गई, तो मैं सतीर्थ बन्धु श्री ओझा जी से अलग पड़ गया। वर्ष १९८८ की गुरु पूर्णिमा के अवसर पर मैंने सपरिवार महाराज जी के दर्शनार्थ वृन्दावन के लिए सासाराम से प्रस्थान किया। मैं मथुरा स्टेशन के पास कोई टैक्सी ठीक करने का प्रयास कर रहा था कि—श्री महाराजजी की अपार दया से छपरा से पधारे मेरे सहयोगी श्री अमरनाथ ओझा और श्री विनोद मिश्र दोनों सपरिवार टैक्सी स्टैण्ड पर मिले। मन ही मन मैं इस मिलन सुयोग में श्री बाबा की अनुकम्पा की अनुभूति करता रहा। हम सभी एक साथ वृन्दावन पहुँचे और श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी के आश्रम में सामान रखकर श्री बाबा के दर्शन हेतु यमुना के उस पार पहुँचने के लिए बस

पड़े। यमुना के किनारे जब हमलोग पहुँचे तो वहाँ कोई नाव नहीं थी। किन्तु हमने देखा एक ब्रज नारी माथे पर सामान लिए यमुना पार कर गई। हमलोगों में भी उत्साह हुआ और हम पति-पत्नी तथा साथ के सभी बच्चे प्रसाद की टोकरी लिए उस पार पहुँच गये और स्नान किया। फिर श्री महाराज जी के मंच की ओर हम आगे बढ़े, जो लगभग दो किलोमीटर दूर था। हमलोग भजन करते हुए आगे बढ़ रहे थे। हममें से एक भक्त ने कहा—सुनते हैं, यमुना जी में बड़े-बड़े कछुए हैं पर एक भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। उनका इतना कहना था कि पचासों कछुए अपने मुँह निकालकर यमुना जल पर तैरते दृष्टिगोचर हो गये और पाँच मिनट के अन्दर ही सभी फिर विलीन हो गये। हम सबों ने समझा कि यह सब श्री महाराजजी की महिमा है।

इस दर्शन में मेरी पत्नी को श्री महाराजजी से दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा थी। मंच तक पहुँच कर दण्डवत् करने के बाद दीक्षा के लिए हमलोगों ने श्री बाबा से निवेदन किया। अनुमति मिल गई। वृन्दावन मंचाश्रम के दाहिने सिरे पर हम सभी कीर्तन-भजन में लीन हो गये। करीब दो घंटे में हमलोगों को बुलाहट हुई। श्री महाराजजी के दर्शन, उपदेश एवं असीम दया के आशीर्वाद सुनकर हमारा मन परितृप्त हुआ और श्रीचरणों में हमारा अनुराग बढ़ता गया। मेरी पत्नी को श्री बाबा ने वांछित दीक्षा दी और हम सबको प्रसाद देकर वापस जाने की अनुमति भी दी। हम सभी ने श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी के आश्रम पर आकर उस दिन विश्राम किया तथा पुनः दूसरे दिन सबेरे गुरुदेव प्रभु देवराहा बाबा का दर्शन करके और प्रसाद लेकर अपने-अपने स्थान के लिए ट्रेन पकड़ने मथुरा चल पड़े।

एक बार योगिराज प्रभु देवराहा बाबा से मैंने वृन्दावन मंचाश्रम पर पूछा—महाराज जी, सरयू-तट आश्रम पर दर्शन कब मिलेगा? महाराज जी बोले -बच्चा, तुम दर्शन कर रहे हो और तुम्हें दर्शन मिलता रहेगा।

पूज्य बाबा के इस आशीर्वाद की सत्यता मेरे जीवन में सचमुच पल-पल अनुभूत होती रहती है और श्री बाबा का दर्शन अपने अन्तराल में सदा करता हुँ। महाराज जी की कृपा से ही मुझे अभूतपूर्व अनुभूतियाँ कई बार हुईं।

वर्ष १९८९ ई० में महाराज जी इलाहाबाद कुम्भ में पधारे हुए थे। मुझे छुट्टी नहीं मिल रही थी। मैंने पत्नी से कहा—तुम मौनी अमावस्या को महाराज जी के दर्शन में अवश्य जाओ। तदनुसार पत्नी गयीं और त्रिवेणी में स्नान करके पैदल चलकर श्री बाबा का दर्शन सुदूर झूसी में गंगातट मंचाश्रम पर पाया।

श्री बाबा की असीम दया से १५ दिन के अन्दर ही मुझे भी छुट्टी मिल गयी और मैं अपने पूरे परिवार के साथ दिनांक ६-३-'८९ को पहले विन्ध्याचल आश्रम पहुँचा। रात विन्ध्याचल आश्रम पर बिताने के बाद सुबह ६ बजे इलाहाबाद के लिए हमने प्रस्थान किया। इलाहाबाद पहुँचते ही हम योगिराज श्री देवराहा बाबा के मंचाश्रम पर गये और पूजा-अर्चना में लग गये। श्री बाबा का उपदेश चल रहा था। बीच-बीच में 'ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र पूज्य बाबा सभी भक्तों से बोलवाते थे। बाद में निकट से दर्शन देने के बाद प्रसाद देते हुए उन्होंने हमलोगों को छुट्टी कर दी। उसके तीसरे दिन दिनांक १०-३-'८९ को पूज्य बाबा का विन्ध्याचल आश्रम मंच पर भी पदार्पण हुआ।

अपनी दीक्षा के दिन ही मैंने विन्ध्याचल जाने की इच्छा भी श्री बाबा से व्यक्त की थी। योगिराज महाराज जी की दया से मुझे अब लग रहा है—विन्ध्याचल मेरा परमधाम है। श्री हंस बाबा ने विन्ध्याचल आश्रम पर बड़े महाराज जी के अकाय होने के बाद अपना पता मुझे मेरी डायरी में लिखवाया था।

दूसरे दर्शन के समय जब मैं १९९१ अगस्त में विन्ध्याचल आश्रम सुबह ६ बजे पहुँचा तो महाराज श्री हंस बाबा मंदिर की छत पर थे। मैं वहीं चला गया। पैर पर गिरकर साष्टांग दण्डवत् मैंने करना चाहा कि महाराज ने इशारा किया कि वहीं से दण्डवत् कर लो। मेरा कुशल पूछने के बाद उन्होंने कहा--'देखो राजेन्द्र, अभी मैं गौवों की चरवाही में हूँ।' और ऊपर से इंगित ही करते हुए गौवों के झुण्ड को सतर्क किया। उन्होंने कहा—अच्छा राजेन्द्र, स्नान करके मंच पर आओ। तदनुसार स्नान के बाद मंच के निकट दर्शन में मैं था। मच पर बाबा विराजमान थे। मुझे मंच के समीप हनुमान जी की मूर्ति के पास बैठने को आज्ञा हुई। आज्ञा-पालन करते हुए मैंने श्री हंस बाबा जी से निवेदन किया—'महाराज, आप में मुझे बड़े महाराज योगिराज श्री देवराहा

बाबा जी का दर्शन मिल रहा है।' इस पर उन्होंने कुछ दिन पूर्व की बातें बतायीं और कहा कि पाल कोट (राँची) के राजा और इलाहाबाद के भक्त चन्द्र कुमार शर्मा भी कह रहे थे कि योगिराज श्री देवराहा बाबा का दर्शन मेरे में मिल रहा है।

तदुपरान्त श्री हंस बाबा ने मुझे परकाया प्रवेश पर कुछ उल्लेख पढ़ने को दिये और एक दूसरी पुस्तक में यह चर्चा भी दिखायी कि योगिराज श्री देवराहा बाबा का पुनः पूर्ण अवतरण लगभग १४ वर्ष में सम्पन्न हो जायगा।

अब ये सारी बातें कुछ-कुछ समझ में आती हैं कि बड़े महाराज जी का सचमुच श्री हंस बाबा में अवतरण हो चुका है। इस क्रम में ढेर सारे प्रश्न श्री हंस बाबा जी ने मुझसे किये और मुझे लगा कि उपदेश की झड़ी बरस रही है। और इस क्रम में मुझे यह भी लगता रहा कि बड़े महाराज जी के ही सान्निध्य में मैं हूँ। श्री हंस बाबा जी ने योगिराज के देह छोड़ने के बाद उनके अनुसरण में अपनी हिमालय यात्रा की भी थोड़ी झलक मुझे दी और मुझे यथामति कुछ-कुछ लिख कर 'पावन प्रसाद' में प्रकाशनार्थ भेजते रहने को कहा। तदनुसार भगवत्कृपा रही तो बाद के अनुभव भी मैं उल्लेख करने का साहस करता रहूँगा।

॥ श्री गुरवे नमः ॥



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', अप्रैल १९९३]

'हंस रूप में आ-आकर देवराहा रूप दिखायो है'

श्री महेश्वर प्रसाद यादवेन्द्र

आज ११-२-१९९३ को लगभग साढ़े-आठ महीनों के बाद फिर प्रातः-स्मरणीय श्री सद्गुरुदेव महाराज के परम विशिष्ट सिद्धसंत श्री हंस बाबा जी के पुनः दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसके पूर्व २० जून, १९९२ को विंध्याचल स्वर्गाश्रम पर तपःपूत श्री हंस बाबा के दिव्य-दर्शन का सौभाग्य मुझे उपलब्ध हो चुका था।

इस बार अपने एक शिष्य गजेन्द्र के साथ श्री हंस बाबा जी के दर्शन में मैं गया था। मंच पर स्थित श्री गुरु महाराज के चित्र को साष्टांग प्रणाम निवेदित कर तथा श्री राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति एवं श्री हनुमान जी की मूर्ति के दर्शन कर तथा बाद में श्री हंस बाबा जी की परावाणी की स्वर लहरी को सुन कर तथा लिख कर मैं बड़ा अभिभूत हुआ।

लगभग १ बजे प्रसाद देकर पूज्य बाबा ने हमारी छुट्टी की तथा गोशाला में प्रसाद पाकर पुनः आने का आदेश दिया। तदनुसार पुनः साढ़े तीन बजे उनका अनुग्रह प्राप्त करने हेतु मंच के समीप मैं गया। बहुत-सी ब्रह्मवाणी के रसामृत से पुनः तृप्त कर बाबा मंचस्थ कुटीर में प्रसाद लेने हेतु गये और इधर मैं श्रीकृष्ण भगवान् से प्रार्थना कर रहा था कि प्रभु, केवल आप बाबा को ही अपना नृत्योत्सव दिखाते हैं, हमलोगों को भी कृतकृत्य नहीं करते! उधर निवेदन करने भर की देर थी कि बाबा तुरन्त मंच कुटीर से बाहर निकले तथा प्रसाद का पोलिथीन हम दोनों को थमाकर तेजी से मंच के नीचे उतर मुझे आदेश किया कि महेश्वर देखो—और ऐसा कहकर शास्त्रीय नृत्य की विधि में नृत्य करने लगे। हाथों की और पद की तालमय गति से हमलोगों को विस्मित कर परम मोदमय भाव में वे पुनः मंचासीन हो मुझे पूछने लगे—महेश्वर बोलो, तुमने क्या समझा?

उत्तर में मैंने तो पहले अपनी असमर्थता बताई लेकिन बार-बार पूछने पर मैंने निवेदन किया—'बाबा आपकी ब्रह्मवाणी को कैसे समझ सकता हूँ! मुझे आपके

नृत्य में भगवान् शंकर के ताण्डव का आभास मिलता था—भगवान् कृष्ण के रास का नहीं। आने वाली युग-संधि की वेला में सभी दुष्प्रवृत्तियों का अन्त होगा और केवल सात्त्विक प्रवृत्ति वाले भक्त ही रहेंगे।' श्री बाबा ने कहा—'तू ठीक समझा है।' पुनः चरण स्पर्श का अवसर एवं प्रसाद हमें मिला और रात्रि विश्राम के लिए छुट्टी मिली।

रात्रि में गोशाला में विश्राम करने के क्रम में आजमगढ़ से अपनी पोलियो-ग्रसित बहन के लिए प्रसाद लेने एवं समाचार सुनाने आये १६-१७ वर्ष के बालक हरेराम मिश्र ने मुझे बताया—

"दो दिन पूर्व ही मैं यहाँ आया हूँ। विन्ध्याचल सात बजे संध्या को पहुँचा। अमरावती चौक पर स्वर्गाश्रम की ओर किसी सवारी को जाते न देख पैदल ही चल पड़ा। पहाड़ी के निकट आने पर अन्धकार में डर लगने लगा। मैंने श्री हंस बाबा जी का स्मरण किया। क्षण भर में ही एक चमत्कार हुआ। एक छाया मेरे पीछे-पीछे आती प्रतीत हुई और स्वर्गाश्रम के निकट तक आकर विलुप्त हो गई।"

यह वृत्तान्त सुनकर मुझे लगा कि श्री हंस बाबा जी भी बड़े गुरुदेव महाराज की ही भाँति आने वाले दर्शनार्थी भक्तों की खबर रखते हैं। हरेराम के पिता को आदेश था कि अभी हरेराम को पुनः स्वर्गाश्रम नहीं भेजना। लेकिन श्री हंस बाबा जी के संवाद के पहुँचने के पहले ही हरेराम यहाँ पहुँच चुका था। इसलिए परम पूज्य बाबा ने उसे कोपीन धारण करा कर कुछ लिखने के कार्य पर नियोजित कर रखा था।

बाबा हमलोगों की छुट्टी करने हेतु प्रसाद लेने के लिए कुटीर में गये। इधर हमारे साथ के गजेन्द्र के मन में हुआ कि क्यों नहीं भगिना के कथनानुसार उसके लिए प्रसाद माँग लूँ। बाबा ने झोपड़ी से निकलते ही गजेन्द्र को प्रसाद देते हुए कहा —लो यह प्रसाद अपने संगी-साथियों को देना और यह तुम्हारे लिए है। मुझे भी मेरे लिए अलग से तथा अन्य भक्तों के लिए अलग से प्रसाद प्राप्त हुआ। चलते वक्त पुनः दया की वर्षा कर हमलोगों की छुट्टी पूज्य बाबा ने की। उन्होंने यहाँ जिस परावाणी से हमें उपकृत किया उसके अंश आगे के पृष्ठों में अंकित हैं। इनमें श्री सद्गुरु देव योगिराज महाराज जी का काया-प्रवेश स्पष्ट रूप से उल्लिखित प्रतीत होता है।

श्री हंस बाबा जी ने श्री राम जन्मभूमि के बारे में भक्तों को दिये गए आशीर्वाद से सम्बन्धित ब्रह्मवाणी के दो पन्नों के परचे भी मुझे दिये। बड़े महाराज जी द्वारा युग परिवर्तन के बारे में दी गई वाणी के विषय में मैंने 'अखण्ड ज्योति' विशेषांक '९० तथा मई '८९ की 'अखण्ड ज्योति' का हवाला भी दिया तथा बाद में १ मार्च '९३ को श्री हंस बाबा जी के स्वर्गाश्रम पर इन्हें पहुँचा भी दिया।

पूज्य हंस बाबा की परावाणी से स्पष्ट संकेत मिलता है कि सद्गुरु बड़े महाराज जी हम निराश भक्तों को जो आश्वासन दे गये थे उसी की पुष्टि हेतु श्री हंस जी महाराज के रूप में ही श्री बाबा ज्ञानामृत एवं अजस्र भक्ति की मन्दाकिनी की वृष्टि कर रहे हैं।

हंस रूप में आ-आकर देवराहा रूप दिखायो है।
बाबा तेरो आयो-आयो हंस रूप में आयो है।।

श्री हंस बाबा की परावाणी से स्पष्ट हो जाता है कि युग-संधि की इस बेला में दुखित आर्त भक्तों के मार्ग-दर्शन हेतु ही श्री हंस बाबा की काया में योगिराज श्री देवराहा बाबाजी महाराज का अवतरण हुआ है।

परावाणी के सूत्र

भक्त महेश्वर एक तू मेरा एक तू प्यारा है।
तेरे प्यार ही प्यार में एक ही तू एक प्यारा है।।१।।

तू तू मेरा एक-एक मेरा एक तू मेरा प्यारा है।
मेरा-मेरा एक है मेरा तू एक प्यारा-प्यारा है।।२।।

तू आया है तू आया है एक ही एक ही एक से।
एक ही एक ही एक से आया है तू एक से।।३।।

तू एक ही में एक-एक है, एक ही एक ही एक है।
एक ही एक ही एक में, तू मेरा एक-एक है।।४।।

जपियो जपियो एक-एक जपियो, जपियो एक ही एक को।
एक ही के एक एक को जपियो एक ही एक ही एक को।।५।।

एक ही तेरो एक ही तेरो, तेरो-तेरो एक है।
एक ही में एक-एक को जपियो बाबा-बाबा एक है।।६।।

एक ही बाबा हैं तेरो बाबा, एक ही में एक-एक हैं ।
एक ही हैं एक-एक हैं तेरो बाबा तेरी एक हैं ।।७।।

तेरो बाबा, बाबा तेरो एक-एक तेरो बाबा हैं ।
एक ही एक ही एक-एक में तेरो ही एक बाबा हैं ।।८।।

तू एक जपियो तू एक जपियो एक ही एक ही बाबा को ।
एक ही एक ही एक एक में जपियो बाबा बाबा को ।।९।।

बाबा तेरो आयो-आयो हंस में बाबा आयो हैं ।
हंस ही में आ-आके एक ही एक ही एक दिखायो हैं ।।१०।

देख के देखियो, एक ही देखियो, एक ही एक ही बाबा को ।
रहत रह्यो है एक ही एक ही हंस में एक ही बाबा को ।।११।।

तेरो बाबा ही आयो हैं, आयो आयो आयो है ।
हंस रूप में आयो आयो, आयो आयो आयो हैं ।।१२।।

हंस रूप में आ-आकर देवराहा रूप दिखायो हैं ।
दिखा दिखा के. एक एक में, एक ही एक बतायो हैं ।।१३।।

मैं आया हूं एक ही एक ही हंस ही के एक रूप में ।
एक ही एक ही एक एक में हंस ही के एक रूप में ।।१४।।

तू जपियो, तू जपियो जपियो, बाबा को तू जपियो तू ।
जप-जप के एक-एक-एक में हंस देवराहा जपियो तू ।।१५।।

हंस देवराहा तेरो बाबा तेरो एक ही बाबा हैं ।
रास रचैया, प्रेम देवैया, एक हो एक ही बाबा हैं ।।१६।।

बोलि बोलि के बोल रह्यो है एक हो एक ही एक में ।
एक ही के एक एक में, एक ही के एक एक में ।।१७।।

एक ही तेरो एक ही तेरो एक ही तेरो बाबा हैं ।
आयो आयो एक हो आयो, हंस में आयो बाबा हैं ।।१८।।

सुन के सुनियो, देख के देखियो, वाही में एक एक को ।
बांट रह्यो हैं, एक ही एक को, ब्रह्म की वाणी एक को ।।१९।।

एक ही एक ही एक-एक में बाबा एक ही एक हैं।
एक ही एक ही एक-एक में राम रूप ही एक हैं ॥२०॥

राम ही को तुम जपियो-जपियो, जपियो एक ही राम को।
एक ही एक में राम हैं, जपियो एक ही राम को ॥२१॥

एक ही के एक-एक रूप में श्याम भी एक ही एक हैं।
श्याम ही के एक-एक रूप में बाबा एक ही एक हैं ॥२२॥

राम हीं श्याम ही एक-एक में एक ही एक ही एक हैं।
एक ही एक ही एक-एक में बाबा सबके एक हैं ॥२३॥

बाबा एक ही एक ही बाबा एक ही श्याम हैं एक में।
एक श्याम ही एक एक में, बाबा हैं एक एक में ॥२४॥

बाबा तो हैं एक एक ही हंस ही के एक एक में।
हंस ही के एक-एक में बाबा, हैं बाबा एक एक में ॥२५॥

बाबा एक ही एक रह्यो हैं बाबा तो हैं एक ही।
हंस ही में आयो-आयो हैं, एक ही में एक एक ही ॥२६॥

एक ही तेरो एक ही तेरो तेरो तेरो एक ही।
एक ही में एक एक हैं तेरो बाबा तेरो एक ही ॥२७॥

तू जपियो तू जपियो बाबा जपियो बाबा एक ही।
बाबा तेरो एक एक हैं, हंस ही में एक एक ही ॥२८॥

हंस रूप में आके बैठे विंध्य मंच पर एक ही।
एक ही के एक-एक एक में बाबा रह्यो है एक ही ॥२९॥

तुम जपियो तुम बाबा जपियो जपियो बाबा एक ही।
जप जप जपियो, जपियो-जपियो बाबा को एक एक ही ॥३०॥

देख देख के एक दिखायो एक ही में एक एक ही।
एक ही में एक एक है तेरो बाबा तेरो एक ही ॥३१॥

रो के रोइयो, एक में रोइयो, एक ही एक ही एक ही।
एक ही के एक एक एक में रोइयो तुम एक एक ही ॥३२॥

एक ही तेरो एक ही तेरो तेरो तेरो एक हैं।
बाबा तेरो बाबा तेरो एक-एक एक-एक एक हैं ॥३३॥

जो-जो तुमने देखा सो सब जा-जा के सब गइयो तुम।
जा-जा के एक एक एक में बाबा को ही गइयो तुम ॥३४॥

बाबा तेरो आयो आयो, आयो आयो आयो है।
विंध्य मंच पर आयो आयो बाबा तेरो आयो है ॥३५॥

देख प्रेम के अश्रु बहइयो सुनि सुनि प्रेम में गइयो तुम।
वाही एक ही रूप रूप में एक ही एक ही पइयो तुम ॥३६॥

पूछ-पूछ के एक एक को पूछियो एक ही एक ही।
एक ही में एक-एक से पूछियो पूछियो एक ही एक हीं ॥३७॥

एक पुछैया एक ही तेरो तेरो एक ही आयो है।
एक ही तेरो एक ही तेरो बाबा तेरो आयो है ॥३८॥

बच्चा तू तो कहाँ-कहाँ से जहाँ-जहाँ से आया है।
नाम ही नाम ही नाम है तेरा बाबा को तू पाया है ॥३९॥

ले के जइयो एक ही लइयो मेरे एक ही ज्ञान को।
एक ही में एक-एक से गइयो, गइयां मेरे ज्ञान को ॥४०॥

एक ज्ञान ही एक ही मेरो एक ही एक ही एक है।
एक ही के एक एक एक में राधा-श्याम भी एक हैं ॥४१॥

राधा-श्याम ही को तू जपियो जपियो एक ही एक ही।
एक ही एक ही एक एक में जपियो एक ही एक ही ॥४२॥

राधा राधा एक ही एक ही तेरो तेरो राधा हैं।
एक ही के एक-एक एक में एक ही तेरो राधा हैं ॥४३॥

राधा राधा जपियो जपियो कृष्ण-कृष्ण को जपियो तुम।
एक ही के एक-एक एक में राधा-राधा जपियो तुम ॥४४॥

राधा एक ही एक-एक हैं श्याम ही में एक एक।
श्याम ही एक ही एक-एक है राधा में एक एक ॥४५॥

(सावशेष)

[सूत्र : 'पावन प्रसाद', मई १९९३]

'गुरु ही ब्रह्म-स्वरूप हैं' – एक भक्त के निष्कर्ष

★ श्री मनिक राज सिंह

मैं विन्ध्य-स्थित बाबा आश्रम पर गया था। वहाँ मुझे अनुभव हुआ कि —

१. किसी सिद्ध योगी गुरु को साधक उतना ही समझ सकता है जितना कृपा करके वे स्वयं समझा दें। अपनी बुद्धि और विवेक से उन्हें समझ पाना असम्भव है—क्योंकि गुरु ब्रह्म-स्वरूप होते हैं। पूज्य बाबा की वाणी में भी यह स्थिति स्पष्टतः द्योतित है—

गुरु ही ब्रह्म-स्वरूप हैं, कण-कण में हैं एक।
उसी एक को मान कर तुम हो जाओ एक॥

कण-कण में गुरु व्याप्त हैं महिमा अमित अपार।
जेहि लगि शारद-शेष हूं कबहुं न पावें पार॥

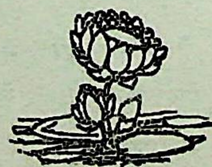
२. राम, कृष्ण, देवराहा और देवराहा हंस शब्दों को एक-दूसरे का पर्याय कहना अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि राम ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही राम हैं। वही राम श्री देवराहा शरीर से लीला करके ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश दे रहे थे और अब वही देवराहा बाबा श्री देवराहा हंस बाबा के रूप में उपदेश दे रहे हैं और कृष्ण लीला भी कर रहे हैं। उन्हीं के शब्दों में—

राम-कृष्ण दो रूप हैं, एक हैं ब्रह्म समान।
इनमें उनमें भेद नहिं एकहि ज्ञान प्रधान॥

हंस ही राम, श्याम और बाबा।
एक ही एक ही एक ही बाबा॥

—('श्री देवराहा हंस दर्शन')

ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा हंस बाबा की जय!



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', मई १९९३]

गुरु-कृपा के कुछ अविस्मरणीय प्रसंग

श्री नागेन्द्र तिवारी

सद्गुरु के लक्षणों के संबंध में पढ़ने एवं सुनने के अनेकानेक अवसर प्राप्त हुए थे, किन्तु पावन दर्शन से मैं बिल्कुल वंचित था। १९७०-७१ की बात है, मैं उन दिनों मोतिहारी में पदस्थापित था। मैंने अपने एक प्रिय मित्र से सद्गुरु श्री देवराहा बाबा की चर्चा सुनी और मेरा हृदय दर्शन की लालसा से भर उठा। मैं महाराजजी के प्रथम दर्शन में जब उपस्थित हुआ, उस अनुभव की अभिव्यक्ति करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। मेरी उस समय की स्थिति इन पंक्तियों में मुखर होती हुई प्रतीत होती है—

अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद में भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच विमोचन को, ठगि सी रही, जो न ठगे धिक् से॥

श्री गुरु भगवान का परम दिव्य विग्रह दिल में बैठ गया। उसी क्षण मैं अपने को श्रीचरणों में समर्पित कर बैठा। माथे पर पावन चरण स्पर्श एवं पवित्र नदी के जल में पावन अँगूठे के प्रसाद के अतिरिक्त अन्य प्रसाद के साथ मैं वापस आया। पग-पग पर गुरु-कृपा की अनुभूति होती। पवित्र नदी का जल अन्तिम बूँद तक सुबास से भरा हुआ था एवं हम अनन्य निष्ठा भाव से प्रतिदिन चरणामृत का पान कर आनन्द-विभोर होते रहे थे।

इसके बाद श्रीचरणों के दर्शन में मैं प्रायः उपस्थित होता रहा। ऐसा एक भी अवसर नहीं हुआ जब मुझे चमत्कारों की अनुभूति का अवसर न मिला हो। मैं उन सबकी चर्चा यहाँ नहीं कर पाऊँगा। किन्तु एक चमत्कार का संक्षिप्त वर्णन करना चाहूँगा, जो प्रासंगिक है। मैं बाबा के दर्शन में उपस्थित था। एक अन्य भक्त ने अपने स्वास्थ्य संबंधी कतिपय समस्यायें पूज्य बाबा के समक्ष निवेदित की थीं। बाबा उन्हें अपनी कृपा दे रहे थे तथा मैं उनके समीप खड़ा था। बाबा ने उन अभ्यर्थी को एकादशी व्रत करने का उपदेश दिया। मेरे मन में

विचार आया कि मुझे एकादशी व्रत करना चाहिए। जिस प्रकार आदि-गुरु भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में जो उपदेश दिये हैं, वे मात्र अर्जुन के लिए नहीं हैं, उसी प्रकार गुरु की वाणी का व्यापक ध्येय मानकर मैंने एकादशी व्रत करना प्रारम्भ कर दिया।

एकादशी व्रत और पेप्टिक अल्सर

मैं लगभग १० वर्ष पूर्व पेप्टिक अल्सर के रोग से ग्रसित हो चुका था तथा मेरे उदर के उस घाव से काफी रक्त-स्राव हुआ था। डाक्टरों ने कभी उपवास न करने एवं हर चार घण्टे पर कुछ हल्का खाना-नाश्ता करते रहने की सलाह दी थी एवं आजीवन इस सावधानी का पालन करने की हिदायत भी की थी। इस कारण एक क्षण के लिए मन में द्वन्द्व उठा, किन्तु वह फिर ओस की बूंद की तरह विलीन हो गया। करीब तीन-चार माह यह क्रम चला होगा कि मेरी तकलीफ पुनः शुरू हो गई तथा रक्तस्राव की फिर आवृत्ति होने लगी। मैं उस काल पटने में सरकारी कार्य से दौरे पर था। पटना से मुजफ्फरपुर एवं वहाँ से सरकारी कार्य करते तीसरे दिन मोतिहारी पहुँचा। डॉक्टर ने देखकर तथा खून जाँचकर बताया कि मात्र ३६ प्रतिशत हीमोग्लोबिन है, रक्त-स्राव जारी है एवं किसी क्षण भी रक्त के अभाव में हृदय की गति बन्द हो जा सकती है!

डॉक्टर महोदय पर मेरा अटूट विश्वास था। अतः मैं बार-बार जोर दे रहा था कि मोतिहारी में ही मेरा ऑपरेशन कर दिया जाय। परन्तु उन्होंने समझाया कि छोटे अस्पताल में इस प्रकार के ऑपरेशन की सुविधा नहीं है। अतएव अन्ततोगत्वा डॉक्टर साहब ने जिला पदाधिकारी को पूरी स्थिति लिखकर दे दी। उसमें बताया गया कि मेरे शरीर में अब इतना रक्त नहीं है कि पटना तक की दूरी तय कर सकूँ! अतः दरभंगा अस्पताल में दूरभाष से सम्पर्क कर एवं बेतार सम्वाद देकर आपातकालीन ऑपरेशन की व्यवस्था कराई गई एवं मुझे विवश कर दरभंगा भेज दिया गया। जब मैं दरभंगा के लिए प्रस्थान कर रहा था, उसी समय लदनिया (दरभंगा) में पदस्थापित मेरे एक निकट के सम्बन्धी आ गए एवं परिस्थिति की गम्भीरता को देखते हुए मेरे साथ हो लिए। यह संयोग की बात हो सकती है, किन्तु मैं इसे गुरु-कृपा ही मानता हूँ।

दरभंगा अस्पताल में लगभग १२ बजे रात्रि में मैं पहुँचा। डाक्टरों ने मेरी स्थिति एवं अस्पताल की स्थिति देखते हुए दूसरे दिन प्रातः ८ बजे ऑपरेशन करने का समय निर्धारित कर दिया। मेरी स्थिति क्षण-क्षण बदतर होती जा रही थी। सामान्यतः किसी क्षण कुछ भी हो सकता था। किन्तु दूसरे दिन प्रातः शौच में काले रंग के स्थान पर पीले रंग का मल निकला। डाक्टरों को इसकी सूचना दी गई तो उन्होंने राहत की साँस ली। उन्होंने बताया कि रक्त-स्राव अपने आप रुक गया है, अतः इस स्थिति में २१ दिन बाद एक्स-रे हो सकेगा एवं अन्य सामान्य जाँच करने के बाद अब आपात्कालीन ऑपरेशन न कर प्लैन्ड ऑपरेशन (सुनियोजित शल्य चिकित्सा) की जायगी। और तदनुसार मुझे पूर्ण विश्राम की स्थिति में रख दिया गया।

अब मैं दरभंगा अस्पताल के बिस्तर से बंध गया था। उन दिनों मुझसे मिलने के लिए दरभंगा में पदस्थापित अपर समाहर्ता तथा अनुमण्डल पदाधिकारी (एस० डी० ओ०, सदर) प्रायः आया करते थे। अनुमण्डल पदाधिकारी भी योगिराज श्री देवराहा बाबा के शिष्य थे एवं बड़े अच्छे पदाधिकारी थे। एक दिन अनुमण्डल पदाधिकारी, दरभंगा ने सूचना दी कि मेरा पदस्थापन पटना में एस० डी० ओ० सदर के पद पर होने वाला है तथा इसकी प्रक्रिया पूरी हो चुकी है। मैंने उनसे अपनी स्थिति की चर्चा करते हुए बताया कि बड़े ऑपरेशन के नतीजे प्रायः अनिश्चित रहते हैं, आगे क्या होगा यह कौन जाने! मेरी बात सुनकर वे मौन रहे।

२१ दिन की अवधि की समाप्ति के बाद एक्स-रे एवं जाँच किए गये तथा जाँचों के बाद विभागाध्यक्ष ने ऑपरेशन करने की तिथि निर्धारित कर दी और हम सबों ने इसे नियमित-विधान के रूप में स्वीकार कर लिया। ऑपरेशन की निर्धारित तिथि की पूर्व-रात्रि को पूज्य बाबा के अनन्य भक्त, एस० डी० ओ० साहब मुझसे मिलने आये। उन्होंने सूचना दी कि जब वे बाबा का ध्यान कर रहे थे, तो उन्हें आदेश हुआ कि बच्चा, तू नागेन्द्र भक्त को बोल दे कि वह ऑपरेशन नहीं कराये। यह सुनकर मैं भारी द्वन्द्व में पड़ गया। मोतिहारी से मुझे इसीलिए भेजा गया है और विभागाध्यक्ष ने सब जाँच सम्पन्न कर ऑपरेशन का निर्णय लिया है एवं तिथि निर्धारित है। अब यदि मैं इन्कार करूँ तो यह कहा जायगा कि मैं भयभीत होकर ऑपरेशन नहीं करा

रहा हूँ, एवं अपने जीवन पर खतरा मोल ले रहा हूँ। इस असमंजस की स्थिति में मैंने उनसे कहा कि यह तो अब सर्जन ही जानें। वे यदि ऑपरेशन करना उचित समझते हैं, तो उन्हें कैसे मना करूँ!

अनुमण्डलाधिकारी की बात से मैं और मेरे सभी सगे-सम्बन्धी भी बड़े ही असमंजस की स्थिति में पड़ गये थे।

लगभग एक घन्टे बाद विभागाध्यक्ष मेरे कमरे आये। उन्होंने सूचित किया कि चन्द तकनीकी वजहों से कल प्रातः निर्धारित ऑपरेशन नहीं होगा एवं अस्पताल से मेरी छुट्टी कर दी जायगी। बाद में जानकारी मिली कि विभागाध्यक्ष महोदय के रेजिडेन्ट सर्जन ने यह लिखित आपत्ति की थी कि रक्तस्राव को रोकने के लिए यदि आपत्कालीन ऑपरेशन न किया जाय तो रक्तस्राव के छः मास तक ऑरेशन करना अनुचित होगा।

अस्तु, कारण जो भी रहा हो मेरा निर्धारित ऑपरेशन नहीं हुआ एवं दूसरे दिन प्रातः अस्पताल से मेरी छुट्टी कर दी गई। मोतिहारी वापसी के क्रम में मैं अनुमण्डल पदाधिकारी के आवास पर पहूँचा। वे पूजाघर में थे। कुछ समय प्रतीक्षा की। जब वे बाहर आए तो मुझे अपने निवास पर पाकर अतिशय प्रसन्न हुए एवं बाबा की बात को स्मरण कर रोमांचित होने लगे। वह अद्भुत दृश्य था। कुछ समय वहाँ रुकने के बाद मैंने वहाँ से मोतिहारी के लिए प्रस्थान किया। तदुपरान्त शीघ्र ही मेरा पदस्थापन अनुमण्डल पदाधिकारी, पटना सदर के रूप में हुआ तथा मैं पटना आ गया और इसके ६ माह बाद पी० एम० सी० एच० में मेरा ऑपरेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

उसके बाद जब मैं बाबा के दर्शन में उपस्थित हुआ उस समय वे अतीव प्रसन्न मुद्रा में थे। मुझे अपने पास बुलाकर कुशल-क्षेम पूछा। मैं कृतज्ञता एवं आनन्द से भर उठा था। प्रेमाश्रु की धारा अविरल प्रवाहित हो रही थी। परम कृपालु बाबा दयार्द्र हो उठे। उनकी आँखों में अविस्मरणीय ज्योति दृष्टिगोचर होने लगी। उन्होंने पूछा—'बच्चा, बोल क्या चाहिए?' लगता था जैसे त्रिलोक का साम्राज्य मुझे देने को वे आतुर हैं, बस मेरे मुख से मेरी वह इच्छा वे सुनना चाहते हैं। मैं भाव-विह्वल था। बोल उठा—'बाबा यह

शरीर एवं प्राण तो आपकी ही दी हुई वस्तु हैं—आपने सर्वस्व दे रखा है—आपकी दया की वर्षा हो रही है—मैं तृप्त हो रहा हूँ।'

बाबा का देदीप्यमान मुख-मंडल उद्भासित हो रहा था—विशाल नेत्रों की छवि निराली थी। बाबा बोल उठे—'बच्चा, तुम्हारा साथ सदा-सदा से ही रहा है और जन्म-जन्मांतर तक रहेगा। तुम्हें अविचल भक्ति देता हूँ।' मेरी स्थिति उस समय उस दरिद्र की थी, जो सीपियों को इकट्ठा कर रहा हो और उसके हाथ में सहसा चिन्तामणि लग गया हो। मैं जीवन का सर्वोत्तम उपहार पा चुका था और आनन्दातिरेक से मूक था, समग्र अस्तित्व कृतकृत्य हो उठा था।

प्रसाद प्राप्त कर, साष्टांग दण्डवत् कर अंततः मैं वापस आया।

श्री देवराहा हंस बाबा दर्शन प्रसंग

अब मैं बीच की अवधि को बन्द पुस्तक की तरह तत्काल यथावत् बन्द ही रखते हुए, हाजीपुर के पावन नारायणी के तट पर आता हूँ। यह विगत अप्रैल मास की बात है—मेरी धर्मपत्नी भी मेरे साथ थीं। परम पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा के सम्मुख एक ग्रामीण महिला खड़ी थी एवं अपनी बाँह की पीड़ा की चर्चा कर बाबा से दया माँग रही थी। दयालु होकर बाबा ने उसकी ओर देखा एवं अपने हाथ को चक्र की तरह घुमा दिया तथा उस महिला से पूछा —'बच्चा, अब दर्द कैसा है?' वह महिला गद्गद होकर बोलने लगी—'बाबा, मैं बिल्कुल ठीक हो गई।' उसकी आँखों में कृतज्ञता थी एवं मुखमण्डल पर परम संतोष और प्रसन्नता। बाबा से प्रसाद प्राप्त कर वह चली गई।

पूज्य बाबा ने उसी समय मेरी धर्मपत्नी की ओर देखकर कहा—'बच्चा, तुझे भी तो बहुत दर्द है—तू भी आ जा।' पटना से हाजीपुर के रास्ते में पत्नी ने संकल्प किया था कि बाबा से वे अपनी लौकिक व्याधियों की चर्चा नहीं करेंगी। उन्होंने कहीं पढ़ रखा था कि जब कोई महात्मा दयार्द्र होकर किसी के शारीरिक या मानसिक कष्ट का निवारण करते हैं, तो उन्हें खुद वह कष्ट झेलना पड़ता है। किन्तु स्वभाव से कोमल एवं दयालु संतजन सदा से भक्तों के कष्ट झेलते आये हैं। वे अपनी प्रारब्ध-जनित शारीरिक पीड़ा बाबा को देकर, उन्हें कष्ट देना नहीं चाहती थीं। किन्तु अब स्थिति भिन्न थी। बाबा ने स्वयं उन्हें

सम्बोधित किया था। उनके सामने यह स्थिति थी कि या तो वे हाँ में उत्तर दे, या झूठ बोलें कि उन्हें पीड़ा नहीं है। वे झूठ नहीं बोल सकीं। बाबा ने अपने हाथ का पुन: चक्र को तरह घुमाया एवं पूछा—'बच्चा, अब दर्द कैसा है?' मेरी धर्मपत्नी कोई उत्तर न दे सकीं। इस पर बाबा ने कहा कि 'दर्द को चुराकर अपने पास मत रखो, उसे यहीं छोड़ दो।' पत्नी पूर्ववत् अपने दर्द को पकड़े रहीं। तब बाबा ने मानो उनका संदेह एवं भ्रम दूर करने के उद्देश्य से स्वत: कहा—'बच्चा, मैं तो कोई दर्द, तकलीफ अपने पास रखता नहीं। कितना जमा करूँगा। मैं दर्द एवं तकलीफ को भक्त से लेकर वायुमण्डल में ऊपर फेंक देता हूँ!' पत्नी का भ्रम दूर हुआ एवं दूसरे क्षण उनका सारा शरीर दर्द से मुक्त था। यह सारी लीला कुछ क्षणों में ही सम्पन्न हो गयी। मैं देखता रहा एवं सरयू-तट आश्रम पर पूज्य योगिराज बाबा के दिये बचनों को याद करता रहा।

'बच्चा, तेरा साथ जन्म-जन्मांतर तक रहेगा'

पूज्य हंस बाबा अब मेरी ओर मुखातिब हुए, प्यार से कुशल-क्षेम पूछा। पुन: परावाणी के द्वारा उन्होंने अपने बचन का स्मरण दिलाया।—'बच्चा, तेरा साथ जन्म-जन्मान्तर से रहा है, एवं जन्म-जन्मान्तर तक रहेगा।' मैं इसे प्रत्यक्ष देख रहा था, अनुभव कर रहा था। अतीत एवं वर्तमान दोनों समक्ष थे।

अतंत: अविचल भक्ति का आशीर्वाद देते हुए, बाबा ने विदा किया।

भक्तों के साथ भगवान को लीला निरन्तर चलती रहती है। गुरु तो सगुण ब्रह्म हैं, भगवान हैं। वे अपने प्रिय भक्तों से बंधे हैं—स्वयं बंधन-मुक्त होते हुए भी उनसे आबद्ध हैं, वे अपने द्वारा दिए गए वरदानों को, बचनों को पूर्ण करने हेतु अवतरित हैं, अवतरित होते रहते हैं—

बिनु पग चलै, सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिन वाणी बक्ता बड़ जोगी॥

गुरु-भगवान की लीला अतिशय प्रत्यक्ष है, स्पष्ट है। परम पूज्य श्री देवराहा बाबा के सभी भक्तों को प्रत्यक्ष अनुभूति हो रही है कि वे जिस मुकाम पर उनके साथ सम्बद्ध थे, वहीं से प्रात:-वंदनीय श्री देवराहा

हंस बाबा के साथ उनकी यात्रा अब प्रारंभ हो गई है। चिरस्मरणीय परम पूज्य श्री देवराहा बाबा एवं श्री देवराहा हंस बाबा सब प्रकार से अभिन्न हैं। शरीर भेद है, किन्तु आत्मिक स्तर पर पूर्णतः अभेद है, एकात्मता है। दिव्य लोक की घटनाओं एवं असीम संभावनाओं को हम अपनी सीमित बुद्धि से ग्रहण नहीं कर पाते। मन, बुद्धि एवं अहंकार को सूक्ष्म तत्त्व मानने वालों को भगवान श्री कृष्ण की वाणी स्मरण करनी चाहिए—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(गीता ७/४-५)

'पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार– इस प्रकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी प्रकृति है। यह आठ प्रकार के भेदों वाली तो अपरा अर्थात् मेरी जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो, इससे दूसरी को—जिससे यह सम्पूर्ण जगत धारण किया जाता है—मेरी जीवरूपी परा अर्थात् चेतन प्रकृति जानो।'

भाव यह हुआ कि मन, बुद्धि एवं अहंकार भी भगवान की अपरा यानी वैसी ही जड़ प्रकृति हैं, जैसी कि पंचभूत प्रकृति—

छिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम शरीरा।

स्पष्टतः प्राकृतिक तत्त्व मन, बुद्धि एवं अहंकार से हम दिव्य तत्त्व (अतीन्द्रिय तत्त्व) को ग्रहण नहीं कर पाते। इसी प्रकार की हठधर्मिता प्रेमपूर्वक अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से की एवं उनके विराट रूप का प्राकृतिक आँखों से दर्शन करने की इच्छा प्रकट कर दी।

अर्जुन प्रभु के अतीव प्रिय भक्त थे। भगवान उन्हें निराश नहीं कर सकते थे। अतः उनकी इस धृष्टता के बाद भी भगवान ने कहा—

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

(गीता ११/८)

अर्थात्—मुझको तू इन अपने प्राकृतिक नेत्रों द्वारा देखने में निस्सन्देह समर्थ नहीं है, इसी से मैं तुझे दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूँ, इससे तू मेरी ईश्वरीय योग शक्ति को देख।

इससे स्पष्ट है कि भक्त को सर्वप्रथम गुरु भगवान अनुग्रह करके जब तक दिव्य चक्षु प्रदान नहीं करते, तब तब इन प्राकृतिक, लौकिक नेत्रों से तथा मन, बुद्धि, अहकार से उस अलौकिक दिव्य एवं लोकोत्तर विषय को देख पाना, समझ पाना, अनुभव कर पाना अति कठिन है। अतः सर्वप्रथम हमें अविचल श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेम से अपने को भरना होगा। जब हम इन सद्‌गुणों से भर जायेंगे, तब गुरु भगवान की अहैतुकी दया एवं कृपा से हम उनके सगुण रूप एवं लीलाओं को देख सकेंगे, समझ सकेंगे एवं उनमें प्रविष्ट होकर पारलौकिक आनन्द की अनुभूति कर सकेंगे। जिस प्रकार रास में "राधा कभी कृष्ण, कभी कृष्ण हैं राधा" की अनुभूति रसिक भक्त कर पाते हैं, उसी प्रकार श्री देवराहा बाबा एवं उनके अनन्य भक्त श्री हंस बाबा की लीला को 'हंस कभी देवराहा, कभी देवराहा हैं हंस' भाव से भी अनुभव कर सकेंगे एवं भेदाभेद दर्शन को हृदयंगम भी कर पायेंगे। मानसिक तर्क, बुद्धि-विलास एवं अहंकार के वाहन पर सवार होकर हम उस दिव्य एवं लोकोत्तर लोक में नहीं पहुँच सकते जहाँ से परावाणी की मंदाकिनी प्रवाहित होती है। 'काया प्रवेश' तथा कीट-भृंगी न्याय का बौद्धिक और तार्किक ज्ञान (या अज्ञान) उस दिव्य गुरु तत्त्व को हृदयंगम नहीं कर सकता। यह आत्मानुभूति का विषय है।

अतः सर्वप्रथम हम सर्वभाव से समर्पण का अभ्यास करें, गुरु-कृपा के आंकाक्षी एवं भिखारी बनें तो उनके अनुग्रह से श्री देवराहा बाबा एवं श्री देवराहा हंस बाबा के अभेद को समझ सकेंगे एवं भक्तों के लिए उदारतापूर्वक निःसृत परावाणी की शीतल एवं आनन्ददायिनी निर्झरिणी का रसास्वादन भी कर सकेंगे।

सतत गुरु भगवान का ध्यान करने से हम उस भेद में अभेद (रहस्य) को हृदयंगम कर सकेंगे। साथ ही गो-सेवा से भी उस अभेद को देखा जा सकता है तथा भजन-कीर्तन एवं सत्संग की त्रिवेणी (अभेद) में गोते लगा कर भी।

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा, जिमि हरिशरण न एकउ बाधा।

बाधाएँ तो मात्र हरिशरण में ही विलीन होती हैं। बाधाएँ दूर करने के लिए ही राधा तत्त्व की शरण लेनी पड़ती है।

मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परत, श्याम हरित द्युति होय।।

भवसागर की बाधाएँ तभी निर्मूल होंगी, जब हम श्री राधा की शरण जायँ। अन्यथा भगवान की माया शक्ति के सम्मुख बद्ध जीव की क्या बिसात?

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। —(गीता ७।१४)

अर्थात्—यह अलौकिक अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं, संसार से तर जाते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। (गीता १८।६१)

अर्थात्—हे अर्जुन, शरीर रूप यन्त्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ उन सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है।

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शांति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। —(गीता १८।६२)

अर्थात्—हे अर्जुन, तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा। उस परमात्मा की कृपा से ही तू परम शान्ति को तथा सनातन परमधाम को प्राप्त होगा।

श्री देवराहा हंस बाबा ने सत्संग में अपने भक्तों के लिए एक भक्ति मंत्र दिया है—

राधे राधे जय श्री राधे। कृष्ण कृष्ण जय श्री कृष्ण।

बाबा जी सतत राधा-कृष्ण की लीलाओं में निमग्न रहते हैं एवं भक्तों को उसकी अनुभूति भी कराते हैं। और बीच-बीच में योग की निगूढ़ बातें सहज ही अभिव्यक्त हो जाती हैं।

आर्ष परंपरा के दिव्य गुरु

श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज

योगिराज श्री देवराहा बाबा जी अष्टांग योग की परंपरा के योगी थे, तथा पूज्य देवराहा हंस बाबा की भी वही आर्ष परिपाटी है। योग की यह परम्परा भगवान श्री कृष्ण से चली आ रही है, वे आदि गुरु हैं।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥ (गीता ४।१)

अर्थात्—श्री भगवान ने कहा कि हे अर्जुन, मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा।

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप।' (गीता ४।२)

अर्थात्—हे परंतप अर्जुन, इस प्रकार परम्परा से प्राप्त इस यो. को राजर्षियों ने जाना, किन्तु उसके बाद यह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्तप्राय हो गया था।

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥ (गीता ४।३)

अर्थात्—हे अर्जुन, तू मेरा भक्त एवं प्रिय सखा है, इसलिए वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझको कहा है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है, अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है।

इस परम्परा के देदीप्यमान नक्षत्र श्री योगिराज देवराहा बाबा से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित था एवं आज भी है। यह शाश्वत परम्परा है—सतत प्रवहमान धारा है। पावन गंगा गंगोत्री से लेकर हिन्दमहासागर तक एक है, अनन्य है। गंगोत्री की गंगा का बहिरंग अभिन्न है, अ भेद

है। श्री देवराहा हंस बाबा एवं श्री देवराहा बाबा में इसी प्रकार अभेद है, दोनों एक हैं।

ब्रह्म एक है, अद्वय है; वही सत्य है सुन्दर है, शिव है। वही गुरु भगवान भी है। उसके परे कुछ भी नहीं है एवं अगर कुछ भासता है, तो मिथ्या है, मन-बुद्धि का भ्रम है। भारतीय आर्ष चिन्तन का, अनुभूति का, अस्तित्व का यही अकाट्य सुस्थापित सत्य है। गीता में भगवान श्री कृष्ण कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ (गीता ९/२९)

अर्थात्—सब भूतों में समभाव से व्याप्त हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रकट हूँ।

एक ब्रह्म की ही सारी सत्ता है, वही सर्वत्र व्याप्त है, उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार सभी पदार्थों में अग्नि व्याप्त है, किन्तु वह निश्चित व्यवस्था के अन्दर प्रकट होती है, उसी प्रकार ब्रह्म की वह सत्ता अनन्य भक्ति से योगी एवं भक्त के हृदय में प्रकट होती है। अग्नि एक ही तत्त्व है—चाहे वह दावानल हो, जठराग्नि हो, यज्ञ की अग्नि हो, रसोई घर की अग्नि हो, दीप हो या दीपशलाका में प्रसुप्त अग्नि। दाहक शक्ति सर्वत्र है, व्यापकता सर्वत्र है, किन्तु सभी जगह उसका प्रकटीकरण साधन के अधीन है। बिना साधन के वह प्रकट नहीं होती। प्रकट होने के लिए साधन चाहिए एवं उसको ज्वाला एवं दाहकता को बनाए रखने के लिए भी साधन चाहिए। श्री हंस बाबा के अन्तःकरण में श्री देवराहा बाबा प्रकट हुए, ऐसे प्रकट हुए कि फिर कभी अस्त नहीं हुए। जिस प्रकार सूर्यास्त होना भौगोलिक दृष्टि से असत्य है, उसी प्रकार 'देवराहास्त' की बात भी तात्त्विक दृष्टि से असत्य है। देवराहास्त उनके लिए हो सकता है, जिसके लिए कभी 'देवराहोदय' था ही नहीं। वे किसी भौतिक लालसा से अनुप्रेरित होकर उनका नाम लेते थे, या उनके पास जाते थे। पूज्य श्री देवराहा बाबा ने महासमाधि के पूर्व ही स्पष्ट संकेत दे रखे थे कि सूर्योदय की तरह देवराहोदय भी चिरन्तन है, शाश्वत है, अवश्यम्भावी है। भेद दृष्टि वाले, द्वन्द्व में जीनेवाले, चिरन्तन देदीप्यमान सूर्योदय को अमुक तारीख का सूर्योदय

कहते हैं। सिर्फ उन्हीं के लिए कहीं भेद हो सकता है—अन्यथा भक्तगण तो अपने भगवान में अभेद ही देखते हैं—वे श्री देवराहा हंस बाबा को श्री देवराहा बाबा से अभिन्न मानते हैं।

श्री देवराहा हंस बाबा की परावाणी का प्रमाण

अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना की —

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे॥

(गीता १०/१२-१३)

अर्थात्—अर्जुन बोले कि हे भगवन्, आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं, क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन, दिव्य पुरुष एवं देवों का भी आदि देव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं। वैसे ही देवर्षि नारद तथा असित और देवल ऋषि तथा महर्षि व्यास भी कहते हैं और स्वयं आप भी तो मेरे प्रति कहते हैं।

अभिप्राय यह कि भगवान श्री कृष्ण को मात्र सभी ऋषिगण, देवर्षि नारद, असित, देवल एवं व्यास जी ही परब्रह्म आदि रूपों में वर्णन नहीं करते, अपितु स्वयं श्री कृष्ण भी सुस्पष्ट शब्दों में अर्जुन से अपने को इस रूप में कहते हैं।

इसी प्रकार स्पष्टतः सभी भक्तगण श्री देवराहा हंस बाबा को श्री देवराहा बाबा ही कहते है। जिन भक्तों ने श्री देवराहा बाबा के दिव्य दर्शन पर तथा अपने अनुभव पर प्रकाश डाला है, वे लोग भी ऐसा ही कहते हैं—मानते हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं श्री देवराहा हंस बाबा भी अपनी परावाणी में इस सत्य को भक्तों के समक्ष सम्पुष्ट करते हैं—"स्वयं चैव ब्रवीषि मे।"

राँची में दिनांक १२-११-'९३ को सौभाग्यवश मैं श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज के दर्शन में मंच के सम्मुख उपस्थित था। दैववश परमगुरु श्री देवराहा हंस बाबा के श्रीमुख से परावाणी निःसृत होने लगी। अपनी क्षमता से जो कुछ भी उस समय मैं लिख पाया, उसे भक्तों के हितार्थ / सूचनार्थ उद्धृत कर रहा हूँ। लिपिबद्ध करने में यदि

कुच त्रुटियाँ रह गई हों, तो वे पूर्णतः मेरी ही त्रुटियों की द्योतक होंगी क्योंकि परावाणी तो बिल्कुल शुद्ध, पवित्र, निर्मल एवं निर्दोष है—

१. देख के देखा, मैंने देखा ; देखा-देखा-देखा।
वही वही में देखा-देखा, बाबा को मैं देखा।।

२. बाबा बाबा, वही हैं बाबा, बाबा है एक एक।
एक ही बाबा, वही हैं बाबा, बाबा देवराहा एक।।

३. बैठ के बैठा, बैठ के बैठा, हम में ही एक एक।
वही वही है, एक ही है, एक ही, एक ही एक।।

४. बोल बोल के बोल रहा हैं, हंसहि में एक एक।
एक ही, एक ही, में बैठा है, हम में ही है एक।।

५. वही वही है, वही वही है, तेरा बाबा एक।
एक एक ही, एक है, देवराहा बाबा एक।।

६. तू तू एक ही एक है हंस में ही है एक।
एक बना है, एक ही ; एक ही, एक ही, एक।।

७. मान मान के माना मैंने, तेरे को एक एक।
एक ही माना, वही वही देवराहा बाबा एक।।

८. बाबा तू है, बाबा तू है, तू तू है, एक एक।
एक ही, एक ही, एक है, हंस ही में, एक एक।।

९. आया-आया आया-आया, मेरा बाबा-एक-एक।
एक ही, एक ही, हंस हि में, तू एक ही, एक एक।।

१०. बना हुआ हैं, बना हुआ है, तू तू एक ही एक।
एक ही, एक ही, एक है, हंस ही में, तू एक।।

११. तू बाबा है, तू बाबा है, मेरा बाबा एक।
एकहि बाबा, एक हैं, देवराहा बाबा एक।।

१२. कैसा कैसा, बोल बोल के, बोला है एक-एक।
एकहि, एकहि, एक ही, हंस में से एक-एक।।

१३. तू बाबा है प्यारा, तू बाबा है प्यारा, मेरा ही है एक।
एकहि एकहि एक है, वही है एक ही एक।।

१४. एक एक में एक ही, तू तू है, एक-एक।
एकहि, एकहि, एक ही, तू तू है एक एक॥

१५. मानके माना, मैंने माना, तेरा माना एक।
एक ही माना, एक ही, ब्रह्म ही, हंस ही एक॥

१६ वाणी तेरी एक ही, एक ही, एक ही, एक।
एक ही वाणी एक है, ब्रह्म की वाणी एक॥

१७. बोल बोल के, बोला तू, हंसहि में से एक।
एक ही एक ही एक है, हंसहि में है एक॥

१८. एक मेरा बाबा तू, मेरा बाबा, देवराहा बाबा एक।
तू हीं बैठा हम ही में; एक ही हो के एक॥

१९. दे के देता, एक ही, प्रेम ही से एक एक।
एक ही, एक ही एक ही, प्रेम ही, एक ही एक॥

२०. तेरा प्रेम ही एक है, नित्य निरन्तर एक।
एक एक से एक है; तू हंस ही में एक॥

२१. बाबा है तू, बाबा है तू; हंसहि में बाबा है तू।
तू ही बाबा, तू ही बाबा, प्यारा प्यारा बाबा है तू॥

२२. बैठ के बैठा, तू बैठा है, मंचहि पर तू-तू।
तू ही बाबा, देवराहा बाबा, प्यारा बाबा तू॥

२३. प्यारा प्यारा बाबा तू है, प्यारा प्यारा तू।
हंसहि में बैठा है, मंचहि पर तू तू॥

ॐ श्री गुरवे नमः!



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', दिसम्बर १९९३]

श्री हंस बाबाजी के पाद-पद्मों में नमन

डॉ० योगेश्वर प्र० सिंह 'योगेश'

बाबा हंस देव चरणों में शत-शत बार नमन है ।
गुंजित उनकी वाणी से जन-जन का अब जीवन है ।

भ्रमित जीव माया के चक्कर में पड़ डोल रहा था ।
यहाँ अर्थ से मानव सच्चाई को तोल रहा था ।
गाँव-गाँव में कोलाहल है और करुण क्रन्दन है ।।१।।

ज्ञान-योग के पथ पर काँटों की ही कुहू निशा है ।
घन मे पूर्ण तिमिर से आच्छादित सब ओर दिशा है ।
साँसों में विष घोल रहा प्रतिदिन यह मलय पवन है ।।२।।

हुई पूज्य देवराहा बाबा की वह देह तिरोहित ।
विंध्याचल आश्रम से आशा किरणें निकलीं मोहित ।
ताक रहे सब भक्त उधर ही आकुल उनका मन है ।।३।।

क्षीर-नीर का कर विवेक जो हंसदेव कहलाते ।
अमृत कलश लिये कर में जो भक्ति-ज्ञान फैलाते ।
मानवता हित अर्पित उनका जीवन अंतर मन है ।।४।।

कृपा-दृष्टि से पूर्ण, सृष्टि को बाबा सफल बनाएँ ।
दिग्भ्रमितों-असहायों को मंगलमय मार्ग दिखाएँ ।
चरण-धूलि के लिए उल्लसित भारत का जन-जन है ।।५।।



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', मई १९९३]

श्री देवराहा हंस बाबाजी की परावाणी

डा० राधा रमण

विंध्याचल-स्थित परम पावन स्वर्गाश्रम का दर्शन मैंने इस बार व्यास पर्व (गुरु-पूर्णिमा) के पुण्य अवसर पर ३ जुलाई, १९९३ को किया। मिर्जापुर जनपद के विन्ध्याचल-अमरावती रोड पर—विंध्याचल से ७ किलोमीटर दूर—भागदेवर-स्थित इस परम पावन आश्रम के विषय में मैं 'पावन प्रसाद' के माध्यम से जानकारी प्राप्त करता आ रहा था। किन्तु इस बार की गुरु-पूर्णिमा में ही वहाँ जाने का सौभाग्य मिला और वह भी सद्गुरु-स्वरूप श्री देवराहा हंस बाबाजी की महती कृपा का ही परिणाम था। गत मई-जून में श्री देवराहा हंस बाबा का पावन मंच जब पटने में गंगा-तट पर लगा था, उनके प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे वहीं मिला। उनकी महती अहेतुकी कृपा ऐसी हुई कि मैं लगातार तीन दिनों तक उनके दर्शन करता रहा। एक बार धर्मपत्नी के साथ गया तो दूसरी बार सतीर्थ बन्धु श्री भरत प्रसाद (अवकाश-प्राप्त मुख्य अभियंता, रामकमल-निकेतन, अनीसाबाद पटना) के साथ और तृतीय बार 'श्री देवराहायण' के रचयिता श्री संतलाल दास 'संत' के साथ।

मैंने ऊपर 'महती अहेतुकी कृपा' शब्दों का प्रयोग इसीलिए किया है—कि प्रथम दर्शन में जब मैं उपस्थित होने मंच के पास जा रहा था तो वहाँ गंगा-तट पर उपस्थित सतीर्थ बंधुओं ने एक स्वर से दुहराया कि श्री हंस बाबा विगत तीन दिनों से कह रहे थे कि 'राधा रमण' को आना है। जब मैं उनके दर्शन में था तो उन्होंने मुझे असीम कृपा प्रदान करते हुए तीन-चार कापियाँ अपनी परावाणी के पद लिखवाये जिन्हें साथ-साथ वे भी लिखते जाते थे। उनके अर्थ लिखने का आदेश उन्होंने मुझे दिया और कहा कि अर्थ लिखकर इस बार 'भागदेवर' तुम्हें अवश्य आना है। उन्हीं कापियों में एक विशेष कॉपी पर उन्होंने अधिक बल देते हुए तीन-चार बार आदेश दिया कि इसका अर्थ सर्वप्रथम लिखना और अर्थ लिखकर स्वर्गाश्रम-मंच पर पहुँचना।

मैं किंकर्तव्यविमूढ़ उन्हें देखता रहा और तब उनसे मैंने स्पष्ट अनुरोध किया—"भगवन्, यह मेरी सीमित सामर्थ्य के बाहर की बात

है। मैं आपकी परावाणी का अर्थ नहीं निकाल पाता हूँ और न वह समझ में आती है। और मुझे ऐसा लगता है कि मेरे समान अनेक अन्य व्यक्तियों को समझ में भी आपकी परावाणी नहीं आ रही है।"

इस पर सद्‌गुरु-स्वरूप श्री देवराहा हंस बाबा का मुखमण्डल एक अजीब प्रकाश से उद्दीप्त हो उठा और उन्होंने उसी रूप में मुझे आशीर्वाद किया कि "तू लिख लेगा, जा मेरा आशीर्वाद है।" फिर उन्होंने एक और बात कही कि "तू तो वही राधा रमण है, जो 'श्री देवराहायण' की रचना में भी सहयोगी था, तुझे तो विंध्याचल धाम पर आना भी था। तू अवश्य लिख सकेगा, ऐसी मेरी कृपा है।"

मैंने तब श्री विंध्याचल में पहले उपस्थित नहीं हो सकने पर खेद प्रकट करते हुए उनसे क्षमा माँगी और प्रार्थना करते हुए निवेदन किया कि मुझे ऐसी सामर्थ्य प्रदान करें कि मैं वही अर्थ लिख सकूँ जो अभिप्रेत है। इस निवेदन पर उन्होंने मेरी ओर अपना वरदहस्त उठा दिया। और मैं अपने को बड़भागी समझकर उनके प्रति परम समादर-भाव से विनत और कृत-कृत्य हुआ।

मैंने उक्त कॉपी की वाणियों के अर्थ अथामति लिखकर भागदेवर मंच पर दिनांक ३ जुलाई १९९३ (गुरु-पूर्णिमा) को समर्पित कर दिये। पटना के गंगा-तट पर ही सद्‌गुरुस्वरूप श्री देवराह हंस बाबा ने मुझे यह भी आदेश दिया कि उक्त कॉपी के समस्त सूत्रों को 'पावन प्रसाद' में प्रकाशन हेतु भेज देना। तद्‌नुसार निम्नलिखित सूत्र 'पावन प्रसाद' में प्रकाशनार्थ प्रेषित हैं:—

श्री देवराहा बाबा अनन्त नाम महिमा-स्तोत्र

सूत्रकार—श्री हंस बाबा जी महाराज

गुरु-प्राणदाता, प्रेम-विधाता। शरणम्-शरणम्, प्राण-शरणम् ॥१॥
गुरु-प्राणदाता, नेम-विधाता। शरणम्-शरणम्, प्राण-शरणम् ॥२॥
गुरु-प्राणदाता, ज्ञान-विधाता। शरणम्-शरणम्, प्राण-शरणम् ॥३॥
गुरु-प्राणदात, ध्यान-विधाता। शरणम्-शरणम्, प्राण-शरणम् ॥४॥

गुरु-प्राणदाता, दया-विधाता । शरणम्-शरणम्, प्राण-शरणम् ॥५॥
गुरु-प्राणदाता, कृपा-विधाता । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ॥६॥
गुरु-प्राणदाता, क्षमा-विधाता । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ॥७॥
गुरु-प्राणदाता, पूजा-विधाता । शरणम्-शरणम्, प्राण-शरणम् ॥८॥
गुरु-प्राणदाता, विद्या-विधाता । शरणम्-शरणम् प्राण शरणम् ॥९॥
गुरु-प्राणदाता, यज्ञ-विधाता । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ॥१०॥
गुरु-प्राणदाता, तीर्थं-विधाता । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ॥११॥
गुरु-प्राणदाता, शास्त्र-विधाता । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ॥१२॥
गुरु-प्राणदाता, वेद-विधाता । शरणम्-शरणम् प्राण-शरणम् ॥१३॥
गुरु-प्राणदाता, नित्य-विधाता । शरणम्-शरणम् प्राण-शरणम् ॥१४॥
गुरु-प्राणदाता, दान-विधाता । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ॥१५॥
गुरु-प्राणदाता, पूर्ण-विधाता । शरणम्-शतणम्, प्राण शरणम् ॥१६॥
गुरु-प्राणदाता, सर्वं-विधाता । शरणम्-शरणम् प्राण शरणम् ॥१७॥

उपर्युक्त अंश प्रथम सूत्र के रूप में है। इसी तरह श्री देवराहा हंस बाबा ने कुल ६० सूत्र लिखे हैं। इन सूत्रों को स्वयं श्री हंस बाबा ने लिखा है। ये ६० सूत्र आगे प्रदत्त हैं। ध्यान में रखना है कि मैंने १,२,३,४,५, क्रम से ६० सूत्र अलग से एक स्थान पर कर दिये हैं। किन्तु प्रत्येक सूत्र के साथ ऊपर की शैली में एक-एक बार क्रमशः प्रेम, नेम, ज्ञान, ध्यान, आनन्द, दया, कृपा, क्षमा, पूजा, विद्या, यज्ञ, तीर्थं, शास्त्र, वेद, नित्य, दान, पूर्ण और सर्व १८ विशेषणों को लगाना है, जिसका रूप उदाहरणार्थ क्रमशः इस प्रकार होगा—

गुरु प्राण-नायक, प्रेम प्राण-नायक । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ॥१॥
गुरु प्राण-नायक, नेम प्राण-नायक । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणस् ॥२॥
गुरु प्राण-नायक, ज्ञान प्राण-नायक । शरणम्-शरणम प्राण शरणम् ॥३॥

—इत्यादि ।

इस ६०×१८=१०८० सूत्र सद्गुरु-स्वरूप श्री देवराहा हंस बाबा ने हमारे लिए कृपापूर्वक प्रदान किये हैं, जिनका पाठ करने से वस्तुतः कोई भी अनन्तश्री देवराहा बाबा के ध्यान, पूजा, इत्यादि में लीन होकर

तत्क्षण उनकी दया-कृपा प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उनके अशरीरी हो जाने के बाद जो अभाव अनुभव में आता है, वह पूर्णतया समाप्त हो जाता है। साथ ही श्री बाबा के मंचासीन रूप का मानसिक अवतरण भी हो जाता है और अन्तर्दृष्टि से हृदय-मंच के षट्दल कमल पर कोई भी गुरु-भक्त श्री सद्गुरु के वरदहस्त सहित रूप का साक्षात् दर्शन प्राप्त कर सकता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के १८ अध्यायों में भगवान् श्रीकृष्ण ने सद्गुरु के रूप में अर्जुन को गुरु-ज्ञान प्रदान किया है। उपर्युक्त १८ सूत्रों में श्री देवराहा हंस बाबा ने श्री सद्गुरु के प्रति पूर्ण श्रद्धा और प्रेम निवेदित करने का साधन इसलिए प्रदान किया कि इन १०८० अमूल्य सूत्रों के माध्यम से हम आज भी श्री सद्गुरुमय बने रहें और उनकी असीम दया-कृपा पाते रहें। यह परावाणी है जो प्रत्येक गुरु-भक्त के लिए वेद-मंत्रों के समान है। यह भी आर्ष वाणी ही है, ऐसी वाणी जो भक्तों को आज भी प्रत्यक्षतः ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबा से मिला रही है।

अर्थात् यह भी ब्रह्मवाणी ही है। हम इसे अपने जीवन में उतार कर श्री सद्गुरु के कृपा-पात्र बनें। क्रमशः १८ विशेषणों में श्री सद्गुरु का जो भव्य प्रकाशमय एवं ज्योतिर्मय रूप हृदय-मंच पर उभरता है, वह अभूतपूर्व है। यह तो सद्गुरुस्वरूप श्री हंस बाबा की असीम कृपा ही है कि इसे उन्होंने कृपापूर्वक प्रदान कर हमें सदा-सदा के लिए योगिराज श्री देवराहा बाबा-मय हो कर दिया है। इन सूत्रों के पाठ से सारतः सद्गुरु श्री देवराहा बाबा के प्रति अखण्ड प्रेम, अनवरत नेम तथा अक्षय ज्ञान की प्राप्ति होती है और उनके निस्सीम अबाधित ध्यान, असीम दया-कृपा तथा अपूर्व क्षमा-विधान का बोध होता है।

जैसा कि मैंने ऊपर निवेदन किया है, इन सूत्रों की जो विशद व्याख्या है, वह तो सद्गुरु-स्वरूप श्री देवराहा हंस बाबा जी को मैंने भागदेवर मंच पर समर्पित कर दी है, बहुत सम्भव है कि उनके विषय में बाद में श्री हंस बाबा जी महाराज का स्वयं कुछ निर्देश हो।

'जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन तैसी' के रूप में, आज सद्गुरुस्वरूप श्री देवराहा हंस बाबा असीम दया-कृपा से आर्द्र हो आर्त जनों को दृष्टि प्रदान कर रहे हैं, वधिर को श्रवण शक्ति मिल

रही है, चलने-फिरने से असमर्थ जनों को वे अपने सामने चला रहे हैं, दौड़ा रहे हैं तथा अन्य विविध शारीरिक, मानसिक व्याधियाँ दूर कर रहे हैं। उन्हें दुखी जनों का कष्ट दूर करने के निमित्त प्रवृत्त होने में क्षण भर भी देर नहीं लगती; निवेदन हुआ नहीं कि अपने वरदहस्त से कष्ट दूर करने की उनकी आध्यात्मिक प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है, और वे पूछने लगते हैं—'बोलो, अब कितना रहा? कैसा है?'......और आर्तजनों की ओर से आवाज आने लगती है—'कम हो रहा है, बाबा!... अब आठ आना रहा, अब चार आना भर रहा, महाराज अब ठीक हो गया, एकदम ठीक!'—इत्यादि।

श्री बाबा ने मुझे पटने के मंच से बताया कि केवल सामान्य जन के ही नहीं, अन्य लोगों के भी कष्ट का निवारण कर देने से उनकी आस्था प्रगाढ़तर होती है!

बहुत संभव है कि महती कृपा का यह दौर बहुत शीघ्र बन्द भी हो जाय, क्योंकि जैसे-जैसे सन्त के पास जन-समुदाय उमड़ने लगता है, ऐसी कृपा वे इसलिए समेट लेते हैं कि मनुष्यों के कर्म-फल विधान में विशेष व्यवधान नहीं पड़े और उनकी शक्ति मनुष्यों के आन्तरिक उन्नयन और आध्यात्मिक विकास में ही विशेष रूप से नियोजित होती रहे।

'राम ते अधिक राम कर दासा' को चरितार्थ करते हुए श्री देवराहा हंस बाबा ने अपने उपर्युक्त सूत्रों में सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा की ही महिमा गायी है। अपने सद्गुरु के प्रति श्रद्धा निवेदित करते हुए वे विविध रूपों में उन्हें देखते हैं। स्वयं अपने को श्री बाबा से अभिन्न मानते हुए उन्होंने पटना के गंगा-तट मंच से मुझे बताया कि क्या आत्मा यह दावा कर सकती है कि वह परमात्मा से भिन्न है?, फिर 'सोऽहम्' क्यों? जैसे आत्मा परमात्मा का ही अंश है, वैसे ही श्री हंस बाबा सद्गुरुदेव योगिराज के अंश मात्र ही सही—मगर हैं तो उनसे अभिन्न ही! यही अभेद की भावना उनको ब्रह्ममय करती है। श्री हंस बाबा का मानना है कि वे कोई अलग अस्तित्व नहीं रखते हैं। यहाँ तो भृंगी-लीला है, श्री बाबा ही हंस हैं और श्री हंस ही में श्री बाबा हैं। यह स्थिति वस्तुतः अनिर्वचनीय अवांतर स्थिति है—अथवा यह कहिए कि निर्विकल्प समाधि की अद्वितीय दशा है। गोस्वामी जी कहते हैं—

सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा॥
छोर न ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥

—(मानस ७-११८-क, १/३)

श्री देवराहा हंस बाबा आज इसी ब्राह्मी स्थिति में जन-कल्याण कर रहे हैं, क्योंकि शरीरी ब्राह्मी स्थिति स्वभावतः जन-कल्याण करती है। अति दुर्लभ कैवल्य परमपद पाकर श्री हंस बाबा आज जहाँ हैं, वही तो सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा के सभी शिष्यों की प्राप्य स्थिति है, यही एक भक्त की भगवान् के प्रति अनन्य भावभूमि है, यही—प्रेम गली अति सांकरी तामें दो न समाहिं—की सहज स्थिति है। इसी ओर संकेत करते हुए गोस्वामी जी आगे लिखते हैं—

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्तिहीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥

—(मानस ७-४४-२)

ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

—(मानस ७/११९-(क)/१-२)

ऐसे ही जीव के प्रति गोस्वामी जी ने इन पंक्तियों से पूर्व ही भविष्यवाणी की है—

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म ब्रतधारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई॥

ग्यानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवनमुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन्ह सहस्र महुँ सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिग्यानी॥
धर्मसील बिरक्त अरु ग्यानी। जीवनमुक्त ब्रह्मपर प्रानी॥
सब ते सो दुर्लभ सुर राया। राम भगति रत गत मद माया॥

—(मानस ७-५४-१/४)

यह तो सर्वविदित ही हो गया है कि श्री हंस बाबा सब प्रकार की अहंता और माया से ऊपर उठकर श्री सद्गुरु में ऐसे लीन हो गए हैं कि वे स्वयं 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति से श्री देवराहा-स्वरूप हो गए हैं और इसीलिए उनका नाम भी अब श्री देवराहा हंस बाबा हो गया है। विंध्याचल के स्वर्गाश्रम पर दिन रात राधा-कृष्ण की लीला देखते-करते प्रायः उनकी भाव-विभोर अवस्था रहती है।

विंध्याचल आश्रम का हाई कोर्ट

मैं जब गुरु-पूर्णिमा के अवसर पर स्वर्गाश्रम क्षेत्र में था तो पूज्य हंस बाबा ने मुझे यह भी स्मरण दिलाया कि 'हाई कोर्ट' की परिक्रमा किये बिना स्वर्गाश्रम परिसर को तुम नहीं छोड़ सकते।

इस दिव्य आश्रम का 'हाई कोर्ट' वह पुण्य स्थल है, जहाँ अनंतश्री देवराहा बाबा जी ऋषि-मुनियों के साथ विचार-विमर्श किया करते थे। यही वह स्थल है जहाँ श्री बाबा ने वर्षों तपस्या की थी। सचमुच 'हाई कोर्ट' के स्थल पर पहुँचते ही सूक्ष्म-तरंगों के माध्यम से एक अजीब-सी अनुभूति होने लगती है—लगता है जैसे किसी दिव्य पुरुष का वरद हस्त 'राम-राम' नाम की ध्वनि-तरंगों से कण-कण को आह्लादित कर रहा हो।

'भागदेवर' शब्द का अर्थ परम पुरुष श्री 'देवराहा' द्वारा प्रदत्त भाग्य है। ध्यातव्य है कि अशरीरी होने के कुछ ही मास पूर्व श्री बाबा ने प्रयागराज के महाकुम्भ से यहाँ आकर अपने हाथों श्रीराम-जानकी, लक्ष्मण और हनुमान के साथ श्री राधा-कृष्ण की दिव्य प्रतिमाएँ अपने कर-कमलों से प्रतिष्ठित की थीं। सैंकड़ों एकड़ में फैली गोचर-भूमि यदि एक ओर पहाड़ की उपत्यका से सुशोभित है तो दूसरी ओर

श्री देवराहा बाबा आश्रम स्थानीय प्रस्तर से निर्मित एक विशाल राज-भवन के समान प्रतीत होता है—जिसके एक अंश में सुनियोजित ढंग से निर्मित श्री बाबा द्वारा स्थापित 'गोशाला' है और उस गोशाला के लिए समीप में ही एक रम्य प्राकृतिक सरोवर है तथा दूसरे अंश में उपर्युक्त मंदिर के अतिरिक्त भक्तों के ठहरने के लिए आधुनिक ढंग से निर्मित भवन है, जिसके कमरे काफी हवादार और सुखद हैं। सारा वातावरण पवित्र और मनोरम है। खुली हवा और खुली रोशनी में फैले इस आश्रम परिसर में सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा के लिए निर्मित वह भव्य मंच है, जिसे श्री बाबा ने अपने लिए यह निर्देश देकर बनवाया था कि 'एक ऐसा मच बनाना, जो पन्द्रह वर्षों तक सुरक्षित रहे।' इसी मंच के पास श्री राधा-कृष्ण की बड़ी ही भव्य और आकर्षक मूर्तियाँ हैं, तथा उनके निकट ही श्री हनुमान् जी की भी विशाल मूर्ति है।

आज उक्त मंच पर से ही श्री देवराहा हंस बाबाजी भक्तों को मुक्त भाव से दर्शन, प्रसाद और कृपा बाँट रहे हैं। मुझे इस प्रसंग में गोस्वामी तुलसीदास की निम्नांकित पंक्तियाँ बरबस याद आने लगती हैं—

तुलसी रामहु तें अधिक राम भगत जियँ जान।
रिनिया राजा राम भे धनिक भए हनुमान॥

—(दोहावली, १११)

तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥
सरन गएँ मो से अघ रासी। होहिं सुद्ध नमामि अविनासी॥

—(मानस ७/१२४(क)-४)

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

—(मानस २-१२७/२)

कबीर साहब ने भी कहा है—

राम कबीरा एक हैं, कहन सुनन को दोय।
दोय कर सोइ जाने जे सतगुरु मिला न होय॥

गुरु रामदास जी का वचन है—

'गुरु गोविंद गोविंद गुरु हैं, नानक भेद न भाई ।।'

—(आदिग्रन्थ, ४४२)

पलटू साहब कहते हैं—

संत औ राम को एक कै जानै, दूसरा भेद ना तनिक आनै ।
लाली ज्यों छिपी है मिंहदी के पात में, दूध में घी यह ज्ञान ठानै ।।
फूल में बास ज्यों काठ में आग है, संत में राम यहि भाँति जानै ।
दास पलटू कहै संत में राम है, राम में संत यह सत्य मानै ।।

—(भाग २, रेखता १७)

श्री गुरु अनन्त नाम-महिमा स्तोत्र

सूत्रकार : श्री हंस बाबाजी महाराज

(पृ० १८८ के बीच में उल्लिखित ६० सूत्र)

१. गुरु-प्रणदाता, प्रेम-विधाता । शरणम्-शरणम् प्राण शरणम् ।।
२. गुरु-प्राण नायक, प्रेम प्राण-नायक । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ।।
३. गुरु मम प्राणम् प्रेम प्रदानम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण शरणम् ।।
४. गुरु परेशम्, प्रेम-नरेशम् । शरणम् शरणम्, पूर्ण शरणम् ।।
५. गुरु त्रिरूपम् प्रेम-हर्ष रूपम् । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ।।
६. गुरु त्रिभुवनेश्वरम् प्रेम-प्रेमेश्वरम् । शरणम् शरणम्, पूर्ण शरणम् ।।
७. गुरु त्रिमूर्त्तिध्यानम् प्रेममूर्त्ति-ध्यानम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण शरणम् ।।
८. गुरु त्रिलोकनामकम् प्रेम-प्रदायकम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण शरणम् ।।
९. गुरु पूर्ण त्रिलोचनम् प्रेमपूर्ण-लोचनम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ।।
१०. गुरु-पूर्णानन्दम् प्रेम-पूर्णानन्दम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण शरणम् ।।
११. गुरु-हरिनामम् प्रेमपूर्ण-धामम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण शरणम् ।।
१२. गुरु हरिपददाता सर्वस्व विधाता । शरणम्-शरणम्, पूर्ण शरणम् ।।
१३. गुरु हरियेरवासीम् प्रेम-निवासीम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ।।
१४. गुरु हरिपुर-धामम्, प्रेम-विश्रामम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण-शरणम् ।।

१५. गुरु प्रथम पुरुषम्, प्रेम-सुदर्शनम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण-शरणम् ॥
१६. गुरु आनंदधामम्, प्रेम-प्रदानम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
१७. गुरु नित्येश्वरम्, पूर्णपरमेश्वरम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
१८. गुरु सामीप्यम्, पूर्ण सान्निध्यम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण-शरणम् ॥
१९. गुरु धनेश्वरम्, पूर्ण-परमेश्वरम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२०. गुरु पूर्ण विद्येश्वरम्, पूर्ण-ध्यानेश्वरम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२१. गुरु पूर्ण-ज्ञानेश्वरम्, पूर्ण-ध्यानेश्वरम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२२. गुरु पूर्ण-शान्तेश्वरम्, पूर्ण-प्रेमेश्वरम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२३. गुरु दिव्यधामम् पूर्ण-सत्यधामम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२४. गुरु पूर्णाधारम्, पूर्ण-प्रसारम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२५. गुरु पूर्णरूपम्, दिव्यस्वरूपम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२६. गुरु पूर्ण-सत्यम्, एक पूर्णरूपम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२७. गुरु नित्यसधर्मम्, एक पूर्णरूपम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२८. गुरु सत्य नित्यम्, पूर्ण नित्य ज्ञानम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
२९. गुरु आनन्द नित्यम्, नेम नित्यनित्यम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
३०. गुरु आनन्द एकम्, सर्वदा एकम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
३१. गुरु शान्ति एकम्, सर्वत्र एकम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
३२. गुरु पूर्ण-सत्यम्, पूर्णं नित्य पूर्णम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
३३. गुरु पूर्णानन्दम्, पूर्णं नित्यपूर्णम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
३४. गुरु आनन्द लहरम् प्रेम पूर्ण-लहरम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण शरणम् ॥
३५. गुरु शांति शरणम्, प्रेम पूर्ण शरणम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण शरणम् ॥
३६. गुरु ब्रह्मलीनम्, शान्ति स्वरूपम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
३७. गुरु सरयूवासी, गंगातट वासी । गुरु यमुनावासी, शरणम्-शरणम् ॥
३८. गुरु हिमगिरिमयं, गुरु विंध्याचलम् । गुरु हंस बाबा, शरणम् पूर्ण शरणम् ॥
३९. गुरु सदा एकम् शक्ति स्वरूपम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण-शरणम् ॥
४०. गुरु सत्यवाक्यम् शांतिः स्वरूपम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण-शरणम् ॥
४१. गुरु नारायणम् ज्योतिस्वरूपम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण-शरणम् ॥

४२. गुरु नारायणम् गुरुरामम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण-शरणम् ॥
४३. गुरु ध्यानसर्वम्, दिव्यस्वरूपम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण-शरणम् ॥
४४. गुरु सच्चिदानन्म्, गुरु जगदीश्वरम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
४५. गुरु सदा एकम्, गुरु ब्रह्मलीनम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
४६. गुरु नित्यएकम्, गुपुगोपालकम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
४७. गुरु नित्यनदम् गुरु प्रेमरूपम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
४८. गुरु सर्वप्रियम्, ज्ञान-स्वरूपम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
४९ गुरु शक्तिरूपम्, चैतन्य-रूपम् । शरणम्-शरणम्, पूर्न-शरणम् ॥
५०. गुरु धर्मरूपम्, गुरु नाम-अनंतम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
५१. गुरु रूप एकम्, सर्वत्र एकम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण-शरणम् ॥
५२. गुरु सर्वरूपम्, गुरु दृष्टरूपम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण शरणम् ॥
५३. गुरुवर कृपालु, दीनदयालु । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
५४. गुरु रघुनायकम् सदासुखदायकम् । शरणम्-शरणम् पूर्ण शरणम् ॥
५५. गुरु रघुनन्दनम्, गुरु यदुनन्दनम् । शरणम्-शरणम्, पुर्ण शरणम् ॥
५६. गुरु श्रीरामा, गुरु श्रीकृष्णा । शरणम् शरणम्, पूर्ण शरणम् ॥
५७. गुरु यदु नायकम्, सदासुखदायकम् । शरणम्-शरणम्, प्राण शरणम् ॥
५८. गुरु पूर्न ज्ञानम्, पूर्वोत्तर ज्ञानम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण-शरणम् ॥
५९. गुरु आनन्दवल्लभम्, गुरु प्रेमवल्लभम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण शरणम् ॥
६०. गुरु सर्वेश्वरम् मंगलदायकम् । शरणम्-शरणम्, पूर्ण शरणम् ॥



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', जुलाई १९९३]

पूज्य देवराहा हंस बाबाजी के श्रीचरणों में

डॉ० योगेश्वर प्र० सिंह 'योगेश'

पूज्य हंस बाबा के चरणों में यह मस्तक नत है।
करें कृपा की दृष्टि, पाप में मेरा मन यह रत है।।

करता बहुत प्रयास, किन्तु सब हो जाता निष्फल है।
रहा अकेला मैं, चौतरफा प्रबल शत्रु का दल है।
लोभ-मोह-मत्सर को हममें बहुत पुरानो लत है।।१।।

हुए अवतरित आप प्राणियों को सन्मार्ग दिखाने।
भक्ति-ज्ञान-वैराग्य-दीप से घर-घर ज्योति जलाने।
है मन मेरा मूढ़, छोड़ता नहीं गलत हरकत है।।२।।

करुणामय हैं आप, अगर कुछ करुणा कण बरसायें।
भ्रमित जीव इस भवसागर से पार सहज हो जायें।
सत्संगति की बतला सकता कौन यहाँ कीमत है।।३।।

काल छोड़ता नहीं किसी को, भय का त्रास घना है।
पुत्र-कलत्र-विभव-यश का भी दुर्वह पाश बना है।
एक बार यदि आप विलोकें, फिर किसको हिम्मत है।।४।।

भाग्य पलट सकता है ऐसो प्रबल संत की त्राणी।
संत-कृपा की आशा रखते हैं दुनिया के प्राणी।
अपनाएँ, यह दास कपट सब तज कर शरणागत है।।५।।



[स्रोत ; 'पावन प्रसाद', दिसम्बर १९९३]

श्रीमद्देवराहा हंस गीता

श्री मनिक राज सिंह

गत १० अगस्त (जन्माष्टमी) को जब मैं विंध्याचल-स्थित ब्रह्मर्षि योगिराज देवराहा बाबा आश्रम, महुआरीकलाँ (भागदेबर, विंध्याचल) श्री हंस बाबाजी महाराज के दर्शन में पहुँचा तो वहाँ पता चला कि महाराजजी अन्यत्र (श्री देव-राहा बाबा आश्रम, डेहरी-ऑन-सोन, रोहतास जनपद) चले गये हैं।

पिछले वर्ष भी इसी जन्माष्टमी के अवसर पर मैं विंध्याचल आश्रम पहुँचा था तो मैंने वहाँ कुछ विशेषता देखी थी—वह यह है कि महाराजजी मचान के अन्दर किसी से बातें कर रहे थे और 'देवी! देवी!' ऐसी आवाज आ रही थी। और साथ ही किसी देवी (नारी) की भी मधुर आवाज सुनायी दे रही थी, किंतु वस्तुतः कोई दिखायी नहीं दे रहा था। इससे मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था कि महाराजजी श्री राधाजी (श्रीजी) से ही बातें कर रहे थे।

महाराजजी ने अपने श्रीमुख से भी बताया कि 'बच्चा, यहाँ राधा और कृष्ण की लीला नित्य होती रहती है और राधाजी मुझसे भी बातें करती हैं।'

इसके बाद पूज्य महाराजजी ने श्री देवराहा हंस गीता से १२५ अमोलिखित पद मुझे लिखवाये थे जो व्याकरण की दृष्टि से तो विचित्र लगते हैं, परन्तु इस विचार से कि योगी की अटपटी वाणी में व्याकरण और साहित्य कोई महत्त्व नहीं रखते, जब मैंने इन्हें ध्यान से देखा तो मुझे इनमें कुछ विशेषतायें दीख पड़ीं जो निम्नांकित हैं—

१. ये पद योगी के श्रीमुख से निःसृत परावाणी का रूप रखते हैं।

२. जन्माष्टमी के समय इस दिव्य रचना का प्राकट्य हुआ है।

३. यह रचना गाकर पढ़ी जा सकती है।

४. इस रचना का प्रारम्भ राम शब्द से है।

५. इस रचना में 'इ' शब्द ४७ बार आया है।

मैंने कहीं सत्संग में सुना था कि—गीता में कृष्ण शब्द ९ बार और पार्थ शब्द ३८ बार आया है जिनका योग ४७ होता है।

और इसके बाद मुझे इसमें भगवान् की बड़ी मनोहर झाँकी दीख पड़ी थी।

इस दैव संयोग से मैं अपने को यह समझा सका था कि पारमार्थिक मार्ग में उन्नति, मात्र गुरुकृपा से ही संभव है क्योंकि मैं स्वप्न में भी कभी यह सोच नहीं सका था कि मुझ जैसे अल्पज्ञ, दीन-हीन व्यक्ति को भी भगवान का साक्षात्कार हो सकता है ? केवल इसी विश्वास पर निरन्तर पड़ा रहता था कि—लगा रहूं गुरु चरणों में, किसी जन्म में तो दर्शन होगा ही। और अब मुझे पूर्ण विश्वास हो चुका है योगिराज देवराहा बाबा ही श्री हंस बाबा (श्री देवराहा हंस बाबा) के शरीर के माध्यम से लीला कर रहे हैं।

उक्त रचना आगे हैं।

श्री देवराहा हंस गीता के पद

राम कृष्ण दो रूप हैं एकहि ब्रह्म समान।
या में वा में भेद नहिं एकहि ज्ञान प्रदान ॥१॥

प्रेम-प्रेम का रूप है राम कृष्ण का रूप।
इन रूपन को देख के देख्यो एकहि रूप ॥२॥

गुरु ही ब्रह्म स्वरूप हैं, कण-कण में है एक।
या ही एक को मान के तुम हो जाओ एक ॥३॥

गुरु के ही सत् ज्ञान में सर्वस ज्ञान है एक।
या ही एक को मानिके तुम देखोगे एक ॥४॥

धन्य-धन्य वे शिष्य हैं गुरु भेट्यो हैं पूर्ण।
एकहि एक के पूर्ण से हो गये पूर्णहि पूर्ण ॥५॥

गुरु महिमा को वेद में गाया है एक-एक।
एकहि एक में पाय के पायो एकहि एक ॥६॥

गुरु प्रताप से एक में रहा नहीं कुछ और।
औरन की तो क्या कहें गुरु ने दीयो ठौर ॥७॥

गुरु तो मेरो धन्य हैं जाकर ज्ञान अगाध ।
बार-बार इक पायके दर्शायो निर्बाध ॥८॥

गुरु ने हरि तें कहि दियो मैं जाऊँ ब्रज-धाम ।
या भक्तन के प्राण को दीज्यो प्रभु विश्राम ॥९॥

गुरु जो आयो एक में देवे को ब्रह्म ज्ञान ।
भक्तन ने इस ज्ञान को सर्वस लियो है मान ॥१०॥

गुरु दाता तो एक हैं तीन लोक का दान ।
वृथा और के ठौर को काहे को अज्ञान ॥११॥

गुरुवर सर्वस एक हैं रह-रह आयो एक ।
या ही को तू एक तें मान के रखियो एक ॥१२॥

गुरु की धारा प्रेम की बहुती एक में एक ।
मानो बहती एक में ब्रह्म की धारा एक ॥१३॥

गुरु जो पायो एकहूँ ब्रह्म ज्ञान में निष्ठ ।
या को सर्वस मानिके एकहि में परविष्ठ ॥१४॥

कण-कन में गुरु व्याप्त हैं महिमा अमित अपार ।
जेहि लगि शारद शेषहू एक न पावै पार ॥१५॥

गुरु तराये सकल को सर्वस देके एक ।
शिष्यहूँ सर्वस मानि के गुरु पायो है एक ॥१६॥

गुरु के माने हानि नहिं लाभ ही लाभ देखाव ।
शिष्य को आरत जानि के आप देखाव प्रभाव ॥१७॥

गुरु दाया का पार नहिं शास्त्र वेद यह गाय ।
नेति नेति कर वेद ने महिमा सुजस बनाय ॥१८॥

पृथ्वी को जब भार भयो तब गुरु ने भार उतार्‌यो हैं ।
ब्रह्मा-विष्णु-महेश को निज काय में रूप निखार्‌यो हैं ॥१९॥

पृथ्वी का अति भार देख के बाबा ढंग देखायो हैं ।
हंस रूप में आके अपनी कीरति को फैलायो हैं ॥२०॥

ज्ञान-ध्यान और भक्ति भाव का हंस स्याम में रूप दिखाया ।
एकहि को एक-एक बता के एक ही में निज को बैठाया ॥२१॥

धरि-धरि रूप राम स्याम को अपना ज्ञान देखायो है ।
रूप बनायो एक-एक में एकहि में एक पायो है ॥२२॥

आयो पायो एक-एक में उसको ही एक पायो है ।
एकहि एक के एक-एक में एक ही एक में आयो है ॥२३॥

मुरली बजायो मन को रिझायो एकहि प्रेम में गायो है ।
राम-कृष्ण का रास रचायो प्रेम को ज्योति जगायो है ॥२४॥

× × × ×

आ आ के अब तुम आ जइयो, प्रेम रूप के तुम बन जइयो ।
मेरो ही एक प्रेम में अइयो, एक ही मुरली मिल के बजइयो ॥२५॥

एक-एक में रास रचइयो एकहि एक में गाय चरइयो ।
भक्तजनों पर करुणा करके एक एक को रूप दिखइयो ॥२६॥

× × × ×

प्रेम रँगोली रंग छबीली धरि-धरि रूप जतायो है ।
एकहि एक में स्याम सखा सँग राधा मन बहलायो है ॥२७॥

भक्तों की आशा दर्शन की देखि के देखि मिटायो है ।
आ के बजायो प्रेम मुरलिया एकहि एक को भायो है ॥२८॥

बाबा बाबा प्यास भक्त की तुम ही आके मिटायो है ।
तुम ही आकर ब्रह्म ज्ञान को या जग में फैलायो है ॥२९॥

तेरो रूप में बाबा ही हैं सब भक्तन ने गायो है ।
ठौरि-ठौरि के एक-एक में एकहि ठौर देखायो है ॥३०॥

सब ठौरन में एक विन्ध्य का मंच सभी ने गायो है ।
आ आ के अब तुम आ जइयो हंस रूप में आयो है ॥३१॥

ज्ञान ध्यान और प्रेम मार्ग से भक्ति भाव दरशायो है ।
बाबा दरस की प्यास सबन की क्षण क्षण क्षण में मिटायो है ॥३२॥

आऊँ जाऊँ भोग लगाऊँ मन में यही बसायो है ।
धरि-धरि एकहि ज्ञान ध्यान भव बाधा आन छोड़ायो है ॥३३॥

× × × ×

एकहि एकहि एक में जो देखा है एक ।
एकहि एकहि एक से हुआ एक ही एक ॥३४॥

एकहि एक के ज्ञान से हुआ एक ही ज्ञान ।
एकहि एक के ज्ञान से आया एक ही ध्यान ।।३५।।

प्रेम रूप के रूप में एकहि एकहि रूप ।
एकहि एक के रूप में है उसका ही रूप ।।३६।।

बनते बनते बन गये एक एक में एक ।
जो-जो बने हैं एक में एकहि एक में एक ।।३७।।

आना-जाना एक में एक-एक के साथ ।
जो आया है एक में उसी एक का साथ ।।३८।।

रह-रह-रह के एक में जो रहता है एक ।
एकहि एक के एक से रहता रहा है एक ।।३९।।

जा-जा देखा एक में पा-पा पाया एक ।
एकहि एक के एक में फिर पाया है एक ।।४०।।

रहि रहि आयो एक में एकहि एकहि एक ।
जो-जो रहते एक में वही एक का एक ।।४१।।

प्रेम का पुतला प्रेम का पढ़-पढ़ आया एक ।
एक-एक के प्रेम से पढ़ा है एक ही एक ।।४२।।

आना हुआ है एक में पा के एक ही एक ।
जो आया है एक में पा के एक ही एक ।।४३।।

ज्ञान-ध्यान के रूप में तेरो आयो रूप ।
एकहि एक के रूप में तेरो पायो रूप ।।४४।।

जिनसे हुए हैं एक में ऐकहि ऐक में एक ।
ज्यों-ज्यों गिने हैं एक में वही एक के एक ।।४५।।

तेरे-मेरे एक में जो है तेरा एक ।
एकहि ऐकहि एक में रखियो ऐकहि एक ।।४६।।

प्रेम की पूजा एक में, धरि-धरि एकहि एक ।
जो धार्‌यो है एक को, वही जानता एक ।।४७।।

एक-एक में जो गया, गया गया है एक ।
जा-जा के एक-एक में पाया एक ही एक ।।४८।।

अब बतलाया एक में एकहि एक में एक।
जो बतलाया एक में वही एक ही एक ॥४९॥

एकहि एकहि एक में है तू एकहि एक।
एकहि एकहि एक से पायो एकहि एक ॥५०॥

रोया-रोया एक में गाय-गाय के एक।
जो गाया है एक को, है एकहि में एक ॥५१॥

प्रेम जो उपजा एक में रहि रहि करके एक।
जो उपजा है एक में वही एक ही एक ॥५२॥

चलते-चलते एक में चले हैं जो-जो एक।
चलने में एक-एक के चले हैं एकहि एक ॥५३॥

एक-एक गाना है एक-एक एक में।
एक-एक पाना है एक-एक एक में ॥५४॥

सदा सदा से एक में आया है एक-एक।
आया-आया एक में वह ही एक ही एक ॥५५॥

गाऊँ एक के एक में उसका एक ही गान।
एक-एक के ध्यान में गाया एक ही गान ॥५६॥

जो आऊँ तो एक में एक एक के साथ।
एकहि एकहि साथ में जाऊँ एक ही साथ ॥५७॥

बने हुए हैं एक में एकहि एकहि एक।
एकहि एक के एक में, तू भी बन जा एक ॥५८॥

देखा एकहि एक में वही एक का एक।
वही एक है एक में तू भी है एक-एक ॥५९॥

पा-पा पाया एक में वही एक ही एक।
पा पा के एक-एक में हुआ एक ही एक ॥६०॥

रोया पाया उसको पाया एक में पाया।
एक ही एक में एक को पाया ॥६१॥

रह-रह देखा एकही एक-एक हैं तू।
एक-एक में एक में वही है तू ही तू ॥६२॥

प्रेम को रूप सदा दरसायो।
रहि रहि आवत सुख सरसायो ॥६३॥

रहें निरंतर एक यह, प्रेम विलोकें एक।
लगि-लगि आवें एक में, एकहि को एक-एक ॥६४॥

धरे रूप एक एक में पाय के एकहि एक।
जो पायो है एक को एकहि एक में एक ॥६५॥

प्रेम-प्रेम से एक में प्रेम रूप है एक।
प्रेम जो करता एक में एक-एक ही एक ॥६६॥

अन्दर बाहर एक है वह ही है एक-एक।
एकहि एक के एक में वह आया है एक ॥६७॥

बात जो आयी एक में आयी आयी एक।
जो आयी एक-एक में पायी एक ही एक ॥६८॥

निशिदिन एकहि एक में, तू भी बन जा एक।
एकहि एक के एक से तू आया है एक ॥६९॥

रो रो कर मैं एक में आऊं, एक एक में आऊं।
एकहि एक से एक एक बन एक एक गुन गाऊं ॥७०॥

रह के रहुं मैं एक-एक में पाय पाय के एक।
जो भी पाया एक में पाया तुमको पाया एक ॥७१॥

एक हमारा एक पसारा एक-एक है तू।
एकहि एकहि एक-एक में बना हमारा तू ॥७२॥

तुझको ही एक एक में देखा दूजा न देखा नहीं-कहीं।
जब जब देखा एकहि देखा एकहि देखा सभी कहीं ॥७३॥

प्रेम पियारा एक तू सदा हमारे साथ।
तेरे मेरे साथ में रहता एकहि साथ ॥७४॥

आऊं-जाऊं एक में आऊं बनके एक।
एक एक के एक में आऊं मैं ही एक ॥७५॥

गाऊँ गाऊँ गुण मैं गाऊँ।
एक-एक में जोड़ के गाऊँ ॥७६॥

पाऊँ एक-एक में तुझको तेरा बन के एक।
एकहि एक के एक में सदा तू एक ही एक ॥७७॥

नीचे-ऊपर एक-एक में तू ही सदा लखाया।
जो देखा एक-एक में तुझको तू ही तू तब भाया ॥७८॥

अब गाऊँ गुन एक में तुझ गुन लाऊँ एक।
जो मैं पाया एक में भाया तेरा एक ॥७९॥

इने-गिने हैं सद्गुरु प्रेमी एक ही एक ही एक।
एकहि एकहि एक हैं प्रेमी हुए अनेक ॥८०॥

खोज-खोज के हमने देखा, देखा एक का एक।
एक-एक में सब में देखा, पाया एकहि एक ॥८१॥

आऊँ मैं तो सब में आऊँ।
एकहि एक से एक-एक पाऊँ ॥८२॥

ब्रह्म ज्ञान जब पा गया कुछ न रही तब चाह।
वाही के एक ज्ञान में पाया ज्ञान अथाह ॥८३॥

अगम अगाद्य प्रेम सम्माना।
पावहिं बहुविधि एकहि ज्ञाना ॥८४॥

पावहिं बहुविधि परम निधि गावहिं मंगल गान।
देव सरिस यह रूप लहि पावहिं बहु सम्मान ॥८५॥

देखहिं रूप परस्पर प्रीती।
आवहिं एक सहित बहु रीती ॥८६॥

नयन रूप अब प्रेम बढ़ावा।
देखहिं गावहि रूप बनावा ॥८७॥

रहहिं सराहहिं नीति सुहाई।
प्रेम बिलोकि देखि जदुराई ॥८८॥

गनत प्रेम मँह बहुतहिं भाँती।
प्रीति रीति अस प्रेम सुजाती ॥८९॥

कनक प्रेम मँह कंटक धारा।
रूप विलोकहिं प्रेम पसारा ॥९०॥

जयति प्रेम मानस मँह लेखा।
लेत-देत एकहूँ नहिं देखा ॥९१॥

टहलि टहलुआ एक में रहि-रहि आवे एक।
जो आवै एक-एक में टहलि टहलुआ एक ॥९२॥

पाँय पड़ूँ विनती करूँ एकहि एक में एक।
धरे रूप बहु भाँति से हैं एकहि में एक ॥९३॥

विनती करि एक-एक यह, देखहु नयन सुजान।
पास पड़ो एक-एक सों एकहि प्रेम निधान ॥९४॥

सत्य सरोवर प्रेम का तेरो घाट है एक।
एकहि के एक-एक में तेरा देखा एक ॥९५॥

रूप बनायो प्रेम का पढ़ि-पढ़ि एकहि एक।
जो एकन से भिन्न है तेरो ही है एक ॥९६॥

रूप प्रेम में आइके जब मैं देखा एक।
एकहि एक के एक में तेरा देखा एक ॥९७॥

आऊँ-जाऊँ एक मैं, रूप बना के एक।
एकहि एक में देखके जानो मुझको एक ॥९८॥

गिनती गिनके एक में एकहि एक को पाय।
एक-एक के एक में एकहि एकहि आय ॥९९॥

जब सोऊँ तब प्रेम से पढ़ि-पढ़ि प्रेमी ज्ञान।
एकहि प्रेम के ज्ञान से पायो तेरो ध्यान ॥१००॥

सदा बनाया एक को गा-गा के एक-एक।
जो गाया है एक को एकहि में है एक ॥१०१॥

रोये-सोये एक में भये गये एक-एक।
एकहिं एक को पाय के हमहिं जनायो एक ॥१०२॥

प्रेद सदा से एक में रहि-रहि आया एक।
एकहि एक के एक में प्रेम रहा है एक ॥१०३॥

तेरे प्रेम को पाय के पाया तेरा रूप।
देखत-देखत बस गयो मन में दया अनूप ॥१०४॥

घूम-घूम के एक में जो घूमा है एक।
एकहि एक के एक में घूमा है एक-एक ॥१०५॥

रहहिं सदा एक रीति सुहाई।
प्रेम परस्पर अति सुखदाई ॥१०६॥

गहहिं प्रेम लहि प्रीति पुनीता।
गावहिं सदा श्याम गुन गीता ॥१०७॥

सेवित सकल परम सुखदाई।
रूप मनोहर आवहिं जाई ॥१०८॥

लहहिं एक महँ प्रीति घनेरी।
रहहिं प्रेम महँ संतन केरी ॥१०९॥

कहहिं नीति जीव अघ तारी।
प्रेम मुदित भय श्याम सुखारी ॥११०॥

लेत-देत यह प्रेम प्रतापा।
हरहिं सकल भव संभव तापा ॥१११॥

दवहिं सकल सुन्दर सुयश, मंगल गावहिं गान।
रूप प्रेम महँ एक ते आवहिं श्याम सुजान ॥११२॥

रोवत सोवत एक हि एका।
रूप प्रेम सन पावहिं टेका ॥११३॥

सत्य सुगति लह जिनहिं बिलोका।
भगति प्रेम महँ पाई त्रिलोका ॥११४॥

अनगिन रूप श्याम प्रिय देखा।
प्रेम परस्पर आवहिं लेखा ॥११५॥

प्रेम को सुन्दर नीति यह, ललि-लहि जाहि देखाहिं।
पाइ सुमंगल दान-सम हरिहर चरणन जाहिं ॥११६॥

ध्यानहिं नीतिहिं एक मँह प्रीति बढ़ावहिं एक।
रहहिं सहहिं एक-एक मँह देखहिं एकहि एक ॥११७॥

उगते-उगते एक में उदित हुए सब एक।
जो भी उगते एक में पायेंगे सब एक ॥११८॥

प्रेम हृदय धरि रूप मँह सत्य विलोकहिं जाइ।
जानहिं पावहिं प्रेम सह रूपहिं सत्यहिं पाइ ॥११९॥

सत्यहिं रूपहिं प्रेम सों नित्यहिं देखहिं एक।
ज्यों-ज्यों देखहिं एक मँह एकहिं सो है एक ॥१२०॥

प्रेम सरोवर नेम का पावइ एक को एक।
रहहिं सहहिं एक-एक मँह गावहिं एकहिं-एक ॥१२१॥

हृदय लुभायो प्रेम तें पायो एक ही एक।
एकहि एक के एक में तेरो पायो एक ॥१२२॥

गा के रोऊँ एक में प्रीति प्रतीति में एक।
एकहि एक की नीति में प्रीति को नीति है एक ॥१२३॥

गाते चलियो आते चलियो, प्रेम से गाते चलियो।
एकहिं प्रेम में आते चलियो, चलियो प्रेम से चलियो ॥१२४॥

गुनगुन गाता एक में, एकहि एक को एक।
वह है स्थित एक में, रोया-खोया एक ॥

गाया पाया एक में, एकहि एक में एक।
वह है एकहि एक में, मुझ में तुझ में एक ॥१२५॥

॥ ॐ नमो देवराहाय ॥

प्रस्तुतकर्ता श्री मनिकराज सिंह का विशेष निवेदन है कि "इस रचना (ब्रह्म-वाणी) में भक्त पाठकों को गोता लगाना चाहिए ; संभव है इसमें कुछ और भी गंभीर तथ्य छिपे हों ; इसमें जो भक्त डूबेंगे उनका आभारी रहूँगा, क्योंकि इसमें भाव की ही प्रधानता है।"

★

[साभार : 'पावन प्रसाद', अगस्त १९९३]

पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा जी का पावन दर्शन

श्री रामकृष्ण रामानुजदास (श्री सन्तजी महाराज)

परम पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज की पवित्र गाथा विश्वविख्यात आध्यात्मिक पत्रिका—बिहार की राजधानी पटना से प्रकाशित—"पावन प्रसाद" में बहुत श्रद्धापूर्वक मैं पढ़ता था। आज १० जून (गुरुवार), १९९३ मेरे लिए परम सौभाग्य एवं मंगलानुभूति का दिन था। दोपहर का समय था और मैं पूर्वी चम्पारण से अपने भ्रातृज पवन कुमार के साथ गया लौट रहा था। इस क्रम में मंजुलराज प्रकाशन, पटना में गुरु-भाई स्नेह-मूर्ति श्री ज्ञानेश्वर जी का दर्शन करने की अभिलाषा से मैं पहुँचा।

सृष्टि ब्रह्ममय है। प्रत्येक अणु में उसी की सत्ता व्याप्त है। उच्च कोटि के साधक श्री ज्ञानेश्वर जी ने मेरे हृदय के भावों को समझते हुए मेरी सहज स्वाभाविक वृत्ति के अनुकूल हो उस समय पटना गोलघर के निकट भगवती गंगा के उस पार मंच पर विराजित परम पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा जो का पावन दर्शन प्राप्त कर लेने की सलाह दी। इस प्रकार प्रभु की कृपा का आज विशेष अनुभव होने लगा। यह सत्य है कि जब हृदय का दर्पण स्वच्छ हो और उसका रुख सदा प्रभु की ओर रहे तो प्रभु-कृपा सुअवसर पाकर अवश्य प्रतिबिंबित होगी।

मैं तुरन्त ही निर्दिष्ट स्थान के लिए रवाना हो गया और नौका द्वारा उस पार परम पूज्य श्री बाबा के मंच के निकट जा पहुँचा। प्रथम दर्शन में ही पूज्य बाबा ने मुझे भलीभाँति पहचान लिया और मुझे पूर्ण विश्वास दिलाने के लिए अपना वास्तविक परिचय देते हुए आनन्द में लीन होते हुए दिखाई दिए। उनकी वाणी में अनुपम प्रकाश तथा आनन्द की लहर थी। उनकी दिव्य वाणी के स्वर थे—

"बाबा तेरा आया, आया आया आया।
हंस में ही आया, एक ही एक ही आया॥

देखो देखो देखो, बाबा को तुम देखो ।
देख देख के देखो, एक ही एक ही देखो ॥

हंस में ही देखो, वही वही तुम देखो ।
बाबा को तुम देखो, देख-देखकर देखो ॥

कैसे कैसे तेरा बाबा, आया आया बाबा तेरा ।
हंस में आया तेरा बाबा, एक ही बाबा, बाबा तेरा ॥

मुझे पूज्य श्री हंस बाबा के रूप में परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा ही दीखे। करीब तीन घण्टे तक पूज्य बाबा मुझसे दिव्य बातें करते रहे और परमानन्द की वृष्टि होती रही। पूज्य देवराहा बाबा की आत्मा ही पूज्य श्री हंस बाबा में स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

भारतीय ऋषियों की सबसे बड़ी खोज आत्मा की खोज है। आत्मा ही सब कुछ है। यह ज्ञान-रूप, बल-रूप, गुण-रूप तथा सर्व-रूप है। इसे जान लेने पर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता, अतः आत्मा की साधना तथा आराधना ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है।

गुरु तो आत्म-स्वरूप के प्रत्यक्ष विग्रह होते हैं तथा वे शिष्यों के साथ आत्मीय सम्बन्ध रखते हैं। गुरु के स्मरण से आत्म-ज्ञान सदा बना रहता है। आत्म-ज्ञान से बड़ा कोई ज्ञान नहीं और आत्म-प्रेम से बढ़कर कोई भक्ति नहीं।

परम पूज्य देवराहा बाबा के सर्वात्म-दर्शन की बातें मुझे सदैव याद रहती हैं। सर्वात्म-दर्शन कोई स्वतंत्र दर्शन नहीं है—यह तो सन्तों की रहनी है। ब्रह्मविद्या का मूल प्रतिपाद्य यही है। आज इस दर्शन की सबसे अधिक आवश्यकता है क्योंकि विश्व भौतिक ताप से संतप्त है। विज्ञान की उपलब्धियाँ भौतिक ताप का शमन नहीं कर सकतीं। विज्ञान को अध्यात्म का प्रकाश चाहिए। पूज्य सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी महाराज ने यही कहा था। गीता में भगवान् ने भी स्पष्ट ही कहा है—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ —(गीता ७/२)

अर्थात्—आत्मा एवं परमात्मा के निर्गुण-निराकार तत्त्व का यथार्थ ज्ञान ही ज्ञान है तथा इसका अनुभव प्राप्त करना ही सच्चा

विज्ञान है। ऐसा ज्ञान-विज्ञान प्राप्त होने पर ही मनुष्य का जीवन सफल बन पाता है।

लेकिन भगवान् ने यह भी कहा है कि—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ —(गीता ७/३)

अर्थात्—असंख्य मनुष्यों में कोई एक ही आत्मा तथा परमात्मा की प्राप्ति के लिए साधना करता है तथा साधना-रत सहस्रों जनों में कोई एक ही इस चरम लक्ष्य तक पहुंच पाता है।

निश्चय ही सद्गुरुदेव की कृपा से ही ऐसा परम ज्ञान कोई प्राप्त कर सकता है।

सर्वोत्तम-दर्शन का व्यावहारिक रूप प्राणिमात्र की सेवा है। सेवा से बढ़कर कोई धर्म या पूजा नहीं है। पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज मुझे तीन घंटे तक सेवा का ही महत्त्व बताते रहे। संत श्री तुलसीदास जी ने भी सेवा पर बल देते हुए कहा था—

"सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।"
—(श्रीरामचरित मानस, उत्तर कांड)

मनुष्य का व्यवहार ही पूजा का रूप तब धारण कर लेता है जब उसमें आत्म भावना कूट-कूट कर भर जाती है। आत्मा तथा परमात्मा की भावना आते ही मनुष्य चिन्ताओं से मुक्त हो जाते हैं। अपने प्रत्येक व्यवहार में प्रभु को जोड़ देना ही सबसे ऊंची साधना है। प्रभु का स्मरण करते हुए कर्म-क्षेत्र में उतरना जीवन में सर्वत्र विजय प्राप्त करना है। रैदास जी के जीवन पर विचार कीजिए—चमड़े का काम करते हुए भी वे प्रभु का ही स्मरण करते रहते थे। कबीर दास की भी वैसी ही स्थिति थी—कपड़ा बुनते हुए भी भगवान् के स्मरण में सदैव निमग्न रहना।

पूज्य श्री हंस बाबा जी महाराज ब्रह्मलीन सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा की भाँति ही सदा ईश्वर-चर्चा में लीन रहते हैं। और इसी कारण उनकी परावाणी की शक्ति मैंने अद्भुत देखी है। उनकी वाणी का समस्त रहस्य कोई ऊंचा साधक ही भली-भाँति समझ सकता है। मैंने

पूज्य बाबा का दर्शन १० जून, १९९३ के अतिरिक्त १७ जून तथा १९ जून, १९९३ को भी किया तथा पूज्य बाबा से घण्टों भगवच्चर्चा-श्रवण का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ।

छुट्टी देते समय पूज्य बाबा ने मुझे एक बोरी प्रसाद भक्तों में बाँटने के लिए दिया। नाव पर बैठे सभी लोगों को तो मैंने प्रसाद दिया ही पटना से गया की यात्रा के समय भी रास्ते भर लोगों में मैं प्रसाद बाँटता रहा तथा गया पहुँचने पर भी अनगिनत भक्तों में पूज्य बाबा का प्रसाद वितरित किया। बाद में मगध विश्वविद्यालय पहुँचने पर परिसर में भी लगातार कई दिनों तक पूज्य बाबा का प्रसाद लोगों को दे-देकर उनके आध्यात्मिक जागरण की दिशा मैंने प्रशस्त की।

पूज्य बाबा का स्मरण मुझे निरन्तर होता रहता है—यह उनको अपार कृपा है। उनके दिव्य संदेश लोगों को मैं सुनाता रहता हूँ और आशा करता हूँ कि यहाँ के जन-जन के व्यापक कल्याण के लिए पूज्य हंस बाबाजो गया पधारने की भी कृपा करेंगे।

स्थानीय भगवद्भक्त पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा जी के दर्शन के लिए अत्यन्त समुत्सुक हैं और उनमें अनेक दर्शनार्थ विंध्याचल के स्वर्गाश्रम की भो यात्रा कर चुके हैं जहाँ पूज्य देवराहा बाबाजो के समय का मंच भी अवस्थित है।

सद्गुरु श्री देवराहा बाबा की और श्री देवराहा हंस बाबाजी की जय!

श्री राम जय राम जय जय राम।
श्री राम जय राम जय जय राम॥



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', जून १९९३]

श्री देवराहा हंस बाबाजी महाराज का असीम करुणा-वितान

श्री ओम प्रकाश सिंह

यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि सद्गुरु शिरोमणि योगिराज श्री देवराहा बाबाजी महाराज की तरह ही श्री देवराहा हंस बाबाजी भी सर्वसमर्थ है और दया के सागर हैं।

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणं ।
यमाश्रितो हि बक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र बन्द्यते ।।

पूज्य महाराज जी को सहस्रों बार सीस नवाकर मैं उनकी वन्दना करता हूँ तथा बार-बार बिनती करता हूँ कि परम कृपालु प्रभु इस सम्बन्ध में मेरी स्वानुभूत घटनाओं का यथार्थ चित्रण करने में मेरी सहायता करें एवं मेरे मन-मस्तिष्क के किसी कोने में यदि भक्त होने के अहंकार का बीज अंकुरित हो रहा हो या भविष्य में होने की सम्भावना हो तो उसे तत्क्षण समूल नष्ट भी कर दें।

मैं दिनांक ६ दिसम्बर, १९८२ को सद्गुरुदेव ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबा जी से सरयू-तट स्थित आश्रम पर दीक्षित हुआ और बार-बार उनके दर्शनों में उपस्थित होता रहा। उनके दर्शनों में मुझे विचित्र अनुभूतियाँ मिलीं जिनका वर्णन मैं यथा-प्रसंग फिर कभी करूँगा। सबसे बड़ी बात यह थी कि उनके आश्रम के निकट पहुँचते ही संसार अनायास पीछे छूट जाया करता था तथा चित्त-वृत्तियाँ शान्त होकर श्री चरणों में निमग्न हो जाती थीं। पूज्य सद्गुरुदेव के महा-प्रयाण के पश्चात् उनका दर्शन न पाकर मैं कभी-कभी बड़ा ही व्यथित हो जाता था और चित्त की चंचलता दिनानुदिन बढ़ती हो चली जा रही थी। साथ ही, सांसारिक उलझनों में भी मैं उलझता चला जा रहा था। समस्याओं को मैं जितना ही सुलझाने का प्रयास करता वे उतनी ही उलझती चली जातीं तथा मानसिक यंत्रणाओं के कारण मैं जीवन से निराश होकर अनेक बार भगवान से मृत्यु भी चाहने लगता था। इसी बीच मेरे कुछ सतीर्थ बन्धुओं ने मुझे बताया कि विन्ध्याचल आश्रम पर पूज्य सद्गुरु श्री हंस बाबा जी महाराज मंचासीन हैं और उनकी ही काया में श्री बाबा का अवतरण हो चुका है।

फिर भी मेरे मन में शंका बनी रही—क्योंकि पूज्य श्री बाबा के शिष्य के नाम पर कुछ साधु वेशधारी प्रवंचक भी घूमा करते हैं जो भक्तों की श्रद्धा-भावना का शोषण करते हैं। किन्तु वर्ष १९९३ के आरम्भ में जब श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज का पावन नारायणी-तट पर हाजीपुर (वैशाली, बिहार) में आगमन हुआ तो प्रथम बार मैं सपरिवार उनके दर्शन में उपस्थित हुआ। उनका दर्शन एवं प्रसाद पाकर मेरे मन को आंशिक शांति मिली परन्तु संसार पीछे नहीं छूट सका। तथापि यह धारणा बलवती अवश्य हुई कि योगिराज श्री बाबा की अलौकिक शक्ति का अवतरण इनमें जरूर हुआ है। इसी धारणा से प्रेरित होकर अपने मित्र एवं सहकर्मी श्री राजदेव सिंह को दीक्षा दिलाने हेतु चन्द्रालय, हाजीपुर में पवित्र नारायणी-तट स्थित मंच के सम्मुख मैं पुनः उपस्थित हुआ क्योंकि श्री महाराज जी के अकाय होने के कुछ ही दिनों पूर्व मैंने श्री सिंह को पूज्य बाबा से दीक्षा दिलाने का वादा किया था।

इस बार के दर्शन की विशेषता यह रही कि उनके सम्मुख पहुँचते ही संसार पीछे छूट गया जिसकी अनुभूति के लिए मैं इधर कुछ वर्षों से लालायित रहा करता था। श्री महाराज जी ने परम अनुग्रह करके श्री सिंह का शिष्यत्व स्वीकार किया एवं आशीर्वाद तथा प्रसाद देकर हमें विदा किया। मैं प्रसन्नचित्त होकर मित्रवर सिंह जी के साथ घर वापस लौटा।

इसके कुछ ही सप्ताह बाद जब श्री महाराज जी का पटना आगमन हुआ तब उनकी असीम कृपा मुझपर बरसने-सी लगी एवं मुझ जैसे अकिंचन को उन्होंने अपनी अमित लीलाओं के निग्दर्शन के लिए मानो केन्द्र बिन्दु ही बना लिया। मैं उन सभी लीलाओं का क्रमिक वर्णन करूंगा जिनसे पूर्णतः स्पष्ट होगा कि अमित-विभूति श्री देवराहा हंस बाबा परमगुरु योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज के ही प्रतिरूप हैं और सभी आध्यात्मिक उत्कर्षों से वे युक्त हैं।

२५ मई, १९९३ की रात्रि में मैं अपने द्वितीय पुत्र अतुल प्रकाश के लिए तीव्र कर्ण-व्यथा की दवा लाने जा रहा था कि रास्ते में मुझे पता चला कि श्री हंस बाबा जी महाराज की अगवानी में कुछ सतीर्थ बन्धु गये हुए हैं। मैं भी उस मण्डली में शामिल हो गया और रात भर जागकर श्री महाराज जी की प्रतीक्षा करता रहा। करीब साढ़े तीन बजे रात्रि में श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज का आगमन हुआ और हम सभी जनों ने नौका से गंगा पार कर श्री महाराज जी का दर्शन एवं पूजन किया। श्री महाराज जी ने अपूर्व स्नेह और करुणा का प्रदर्शन करते हुए उपस्थित सभी भक्तों को इच्छा भर प्रसाद पाने का आदेश दिया तथा अपनी परावाणी में उपदेश देते हुए सबको छुट्टी देने लगे। वे एक-एक व्यक्ति को नाम

लेकर पुकार रहे थे और प्रसाद दे रहे थे जिनमें कुछ, यथा श्री विश्वनाथ जायसवालजी, ब्रजेश बाबू, दयाशंकर बाबू आदि तथा श्री नागेन्द्र तिवारी जी, डा० हनुमान साहु आदि श्री महाराज जी के पुराने भक्त लग रहे थे। परन्तु जब मेरी बारी आई और श्री महाराज जी ने मेरा पूरा नाम लेकर 'आओ ओम प्रकाश, प्रसाद लो' कहकर सम्बोधन किया तो मैं एक पल के लिए ठिठक गया कि कहीं इस नाम के कोई और व्यक्ति तो नहीं हैं! किन्तु पुनः श्री महाराज जी ने मुझे संकेत करते हुए बुलाया कि 'अरे आओ न, प्रसाद ले लो!' इन शब्दों ने मेरे मन-मस्तिष्क के तार-तार झंकृत कर दिये और आत्म-विभोर-सी दशा में मैं घर वापस आया। इसके पूर्व न तो मेरा पूरा नाम लेकर श्री महाराज से किसी भक्त ने मेरा परिचय कराया था और न ही वहाँ उपस्थिति के दरम्यान किसी व्यक्ति ने मुझे मेरा नाम लेकर सम्बोधित ही किया था! इससे मुझे लगा मानो श्री महाराज जी सर्वथा सर्वज्ञ हों और बहुत पहले से इस अकिंचन का स्मरण उन्हें हो।

जब मैं घर वापस लौटा तो पता चला कि रात में मेरे पुत्र का कर्ण-शूल असह्य हो गया था और मेरी पत्नी मेरी अनुपस्थिति में उसे डाक्टर से दिखाने ले गयी हैं। मैं स्नानोपरांत पूजा से निवृत्त होकर श्री महाराज जी का दिया हुआ प्रसाद प्रेम-पूर्वक ग्रहण कर रहा था कि मेरी पत्नी वापस लौटीं। रात भर घर से अनुपस्थित रहने के कारण मुझे पत्नी की जली-कटी भी सुननी पड़ी जो स्वाभाविक था। चिकित्सक डा० के० पी० सिन्हा के अनुसार बालक के कान के भीतरी हिस्सों में काफी मात्रा में मवाद का जमाव होने के कारण कान की झिल्ली के फटने की पूरी सम्भावना थी। इसके लिए चिकित्सक अभिभावक को दोषी ठहरा रहे थे कि काफी विलम्ब से चिकित्सा हेतु आये। उसका दर्द तो असह्य था ही साथ-ही-साथ वह कान बिल्कुल बन्द हो गया था तथा उसकी श्रवण शक्ति समाप्त-प्राय हो चुकी थी। जाँच के क्रम में ही बालक बेहोश हो गया था, इसलिए इंजेक्शन न चलाकर कैप्सुल द्वारा ही घाव सुखाने की दवा देकर तीन दिनों के बाद पुनः जाँच हेतु लाने का निर्देश चिकित्सक ने दिया था और इस बात की सम्भावना व्यक्त की थी कि कान की झिल्ली फाड़कर ही मवाद बाहर निकलेगा। उक्त बातें मेरी पत्नी रो-रोकर मुझे बता रही थीं और मैं भी एक पिता के कर्तव्य का पालन नहीं करने के अपराध-बोध से दुःखी था।

दवा के प्रभाव से कान की पीड़ा तो ठीक होने लगी परन्तु कान के बन्द रहने तथा सुनाई नहीं पड़ने की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। मैं भी दो दिनों तक श्री महाराज जी के दर्शन में नहीं जा सका। तीसरे दिन संध्या समय मैं

कार्यालय से सीधे मंच के पास पहुँचा तो पाया कि मेरी पत्नी भी उस बालक के साथ श्री महाराज जी के पास खड़ी हैं और श्री महाराज जी बालक से बातें कर रहे हैं। मैं भी पास ही खड़ा हो गया। आश्चर्य कि देखते-देखते बालक की श्रवण-शक्ति लौट आई और कान का भारीपन बिल्कुल समाप्त हो गया !

उसी दिन श्री महाराज जी ने मेरी पत्नी से पूछा कि तुम्हारी गायें कैसी हैं ? यहाँ मैं यह बता दूँ कि उस समय मेरे पास छोटी-बड़ी मिलाकर तीन गायें थीं जिनमें कोई-न-कोई हमेशा अस्वस्थ रहा करती थी। उनमें एक जो घर में ही पली है और जिसका नाम सरस्वती है, उसकी पाचन-क्रिया हमेशा खराब रहा करती थी तथा चिकित्सक के अनुसार उसका लीवर कमजोर हो गया था। अतः उसके बारे में हम दोनों पति-पत्नी चिंतित रहा करते थे। श्री महाराज जी के उपर्युक्त प्रश्न ने मेरी पत्नी को भी चौंका दिया कि आखिरकार मेरी गायों के बारे में उन्हें कैसे जानकारी हुई ? उन्होंने सरस्वती के बारे में पूज्य बाबा को बताया। तत्पश्चात् श्री महाराज जी ने असीम दया के साथ मेरे परिवार के सभी लोगों को अलग-अलग प्रसाद देकर तथा गाय के लिए अलग प्रसाद देकर इस निर्देश के साथ हमारी छुट्टी की कि पुनः दर्शन में आना तथा तत्क्षण मुझे भी मेरे पूरे नाम से सम्बोधित करते हुए प्रसाद देकर छुट्टी दे दी।

यहाँ यह बताना अप्रासंगिक नहीं होगा कि मैं उस समय सारे लोगों के बीच में खड़ा था और मैं अपनी पत्नी अथवा पुत्र से कोई बात भी नहीं कर पाया था जिससे यह पता चले कि हमलोग एक ही परिवार के सदस्य हैं। मेरी पत्नी भी श्री महाराज जी से काफी प्रभावित हुईं और उनका गुणानुवाद करते हुए हम सभी घर वापस लौटे। दूसरे दिन गाय को प्रसाद खिलाया गया और उसका पाचन ठीक होने लगा। उसी दिन पुत्र अतुल प्रकाश को डा० के० पी० सिंह ने जाँच के लिए बुलाया था सो मैं पत्नी को यह निर्देश देकर कार्यालय चला गया कि चिकित्सक से भी परामर्श लेने में हर्ज ही क्या है ? तदनुसार मेरी पत्नी उसे चिकित्सक के पास ले गयीं और चिकित्सक ने जाँच के उपरान्त यह पाया कि मवाद बिल्कुल सूख गया है और अब दवा की कोई जरूरत नहीं है। फिर भी उन्होंने सलाह दी कि चूँकि अभी टौंसिल की शिकायत है—जिसके कारण ही यह बीमारी पैदा हुई तथा आगे भी होने की सम्भावना है—इसलिए शल्य-क्रिया आवश्यक होगी। उन्होंने तदर्थ एक्स-रे कराने को भी कहा। यहाँ मैं यह भी उल्लेख कर दूँ कि उक्त चिकित्सक ने ही तीन दिन पूर्व कहा था कि यदि कान को झिल्ली फटने से बच गई तब भी मवाद को पुरी तरह सूखने में कम-से-कम दस दिन लगेंगे !

उसी दिन सन्ध्या हम सपत्नीक श्री महाराज जी के दर्शन में पहुँचे। जैसे ही साष्टांग दण्डवत् करके उठे कि श्री महाराज जी ने मुझे बुलाया और पूछने लगे कि तुम्हारा बालक कैसा है, तुम्हारी गायें कैसी हैं? मैंने पूरी बात बताई और चिकित्सक की सलाह का भी जिक्र किया। श्री महाराज जी हँसते हुए बोले— 'अरे, तू तो बड़ा चतुर है, मुझसे भी दिखलाता है और डाक्टर से भी चुपके से दिखला लेता है।' मैं इस बात पर झेंपने लगा किन्तु श्री महाराज जी ने मुझे आश्वस्त करते हुए कहा—"कोई हर्ज नहीं है बच्चा! तुमने अच्छा ही किया जो डाक्टर से दिखला लिया। अरे बच्चा, डाक्टर अपनी पढ़ाई करता है। तुम उसका ऑपरेशन मत करवाना। उसके लिए यह अलग से प्रसाद लो और थोड़ा-थोड़ा रोज पाने को कहो। इसी से सब ठीक हो जायेगा।"

मैंने भी उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया और शल्य-क्रिया की बात कौन कहे उसका एक्स-रे तक नहीं करवाया। प्रसाद से ही उसकी खाँसी एवं टौंसिल की शिकायत जाती रही। उपर्युक्त घटनाओं से श्री बाबा की सर्वज्ञता एवं सर्वसमर्थता का स्पष्ट बोध मुझे होता रहा।

जैसा कि मैं पूर्व में चर्चा कर चुका हूँ, पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा जी के पटना अवस्थान के समय मेरे पास तीन गायें थीं जिनमें दो दुधारू थीं। जब मुझे ज्ञात हुआ कि एक गौ के दूध की आवश्यकता मंच की सेवा के लिए है, तब उनमें से एक गौ लक्ष्मी का एक समय का दूध पवित्रता के साथ वहाँ भेजने का निश्चय मैंने किया और इस सेवा के लिए अपने छोटे पुत्र कक्षा पाँच के विद्यार्थी अनुपम प्रकाश को नियुक्त किया। वह प्रतिदिन सबेरे उठकर स्नान-पूजा करता तथा दूध लेकर श्री महाराज की सेवा में चला जाया करता। श्री महाराजजी उसे घन्टों तपती रेत पर खड़ा रखते तथा अंत में ढेर सारा प्रसाद देकर बिदा करते। माँ गंगा की उछलती तरंगों पर नौका में बैठा वह छोटा बालक तनिक भी भयभीत नहीं होता और पूरी निष्ठा के साथ नियमित रूप से मंच की सेवा में लगा रहता। उस पर श्री महाराज जी ने अपना ऐसा मोहक प्रभाव डाल रखा था कि इस कार्य में वह परिवार के किसी दूसरे सदस्य का सहयोग नहीं लेना चाहता था। वैसे मेरी पत्नी तथा मैं भी नियमित रूप से संध्या समय श्री महाराज जी के दर्शन में जाते रहे तथा काफी रात व्यतीत होने पर घर वापस आते। श्री महाराज जी के पास मुझे अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती तथा उनके दर्शन एवं प्रवचन का भरपूर लाभ उठाता रहता। मेरे जीवन पर के घोर निराशा के बादल छँट चुके थे और आशा की नयी किरणें सुख और शान्ति के साथ जीवन को आह्लादित करने लगी थीं।

एक दिन अत्यधिक व्यस्तता के कारण मैं कार्यालय से विलम्ब से छूटा और सीधे गंगा-तट जाकर बैठा रहा पर नौका नहीं आई। मैं काफी व्यग्रता के साथ श्री महाराज जी का स्मरण करता रहा और विलम्ब से आने के कारण अपने आपको कोसता रहा। निराश होकर घर आया किन्तु मैं पूरी रात सो नहीं सका। दूसरे दिन जब पुत्र अनुपम प्रकाश दूध पहुँचाकर वापस लौटा तो उसने बताया कि श्री महाराज जी ने आपके लिए अलग से प्रसाद दिया है और कल आपके नहीं पहुँचने के बारे में पूछ रहे थे। उसी दिन शाम को जब मैं श्री महाराज जी के दर्शन में जा रहा था तो नौका पर श्री दयाशंकर जी ने बताया कि विगत रात बार-बार श्री महाराजजी कह रहे थे कि ओम प्रकाश बच्चा आज नहीं आ सका ! यह सुनकर मैंने मन-ही-मन उनकी करुणा दृष्टि के लिए उन्हें बार-बार अपना प्रणमन निवेदित किया।

मंच के पास पहुँचकर दण्डवत् के पश्चात् मैं मौन भाव से रामधुन कह ही रहा था कि श्री महाराज जी ने मुझे बुलाया और पैर के नीचे के सिकता कण के बारे में अनुभव करने को कहा। उसकी उष्णता उस समय सामान्य थी, परन्तु देखते-देखते उसकी गर्मी बढ़ने लगी और कुछ ही देर में बालू इतना तप्त हो गया कि उसपर अधिक खड़ा रहना मुश्किल हो गया। मैंने श्री महाराज जी को जब यह बताया तब बालू धीरे-धीरे ठंढा होने लगा। आश्चर्य कि कुछ ही देर में उस गर्मी के मौसम में भी वह इतना शीतल हो गया कि बड़ा ही सुखद लगने लगा। श्री महाराज जी की इस लीला का अनुभव मेरे साथ-साथ अनेक अन्य भक्त भी कर रहे थे। इसी क्रिया को श्री महाराज ने दुहराया। इस बार उन्होंने पवन के स्पर्श का अनुभव करने को कहा। हवा उस समय सामान्य गति से चल रही थी। धीरे-धीरे उसकी गति धीमी पड़ने लगी और कुछ समय के बाद वह बिलकुल बन्द हो गई। सारा शरीर पसीने से सराबोर हो गया और बेचैनी इतनी बढ़ गयी कि अवज्ञा कर वहाँ से भाग जाने को जी चाहने लगा। पूछने पर मैंने श्री महाराज जी को जब यह बताया तो स्थिति सत्वर बदल गयी और पुनः शीतल हवा के झकोरे तप्त तन को शीतलता प्रदान करने लगे। तत्पश्चात् पूज्य-चरण बाबा ने साँस की क्रिया पर ध्यान देने का आदेश दिया और व्याकुलता बढ़ने पर बताने को कहा। शनैः-शनैः साँस की गति मन्द पड़ने लगी और एक समय आया कि साँस टूटने की सी स्थिति आ गयी। तब घबड़ाकर मैंने श्री महाराज को यह स्थिति बतायी। बस क्या था, सब कुछ पुनः सामान्य हो गया।

वाक् शक्ति का विलय

इन्हीं लीलाओं का दिग्दर्शन श्री महाराज जी कुछ अन्य भक्तों को भी करा रहे थे और बारी-बारी से पूछते थे कि तुम मिथ्या तो नहीं बोल रहे हो ? उन्हीं भक्तों के बीच एक श्री कृष्ण कुमार गुप्त भी थे जो शायद पटना सिटी के रहने वाले थे। उन्हें तो इन लीलाओं के साथ-साथ एक और लीला का अनुभव कराया गया। श्री महाराज जी ने उनकी वाक् शक्ति का ही लोप कर दिया जिसके चलते श्री महाराज जी के बार-बार पूछने पर भी गुप्तजी बोलना चाहकर भी बोल नहीं पा रहे थे। यह स्थिति श्री गुप्त ने स्वयं श्री महाराज जी को बाद में बतायी। जहाँ तक मैं समझता हूँ, कुछ भक्तों के माध्यम से उक्त लीलाओं के दिग्दर्शन द्वारा श्री महाराज जी उपस्थित समुदाय को यह उपदेश देना चाह रहे थे कि मनुष्य का अहंकार व्यर्थ है, जड़ पदार्थों के स्वामीपन की बात कौन कहे, उसका तो अपने शरीर की क्रियाओं पर भी कोई नियंत्रण नहीं है। एकमात्र सर्वसमर्थ सद्गुरु या परमात्मा ही हैं जो समस्त जड़-चेतन समुदाय को संचालित-नियंत्रित करते हैं।

सांध्य भोजन की समस्या

मेरी पत्नी रात्रि का भोजन सन्ध्या समय ही बनाकर श्री महाराज जी के दर्शन में चली जाया करती थीं क्योंकि रात्रि में आरती के पश्चात् ही हमलोग वापस आते थे और तब तक अमूमन दस-साढ़ेदस बज चुके होते थे। एक दिन खाना बनने में थोड़ा बिलम्ब हो गया और कुछ पहले ही नाव खुल चुकी थी। नाव के दुबारा आने की प्रतीक्षा में हमलोग गंगा-तट पर बैठे रहे। तब तक सूर्यास्त हो चला था और मेरी पत्नी व्यग्र भाव से कह रही थीं कि सब्जी खरीदने के पश्चात् रसोई तैयार करने में बिलम्ब हो जाया करता है। किन्तु कुछ काल बाद ही नौका वापस आ गयी और हमने गंगा पारकर श्री महाराज का नित्य की भाँति दर्शन किया और आरती के उपरान्त वापस लौटे। दूसरे दिन जब पुत्र अनुपम प्रकाश दूध पहुँचाकर वापस लौटा तो यह देखकर हमारे आश्चर्य की सीमा न रही कि अन्य प्रसाद के साथ-साथ श्री महाराज जी ने करीब साढ़े तीन किलो हरा एवं ताजा परवल भी प्रसाद के रूप में हमें भेज दिया था। निष्कर्ष यह कि विगत सन्ध्या को गंगा के तट पर हुई हमलोगों के वार्तालाप को श्री महाराजजी जान चुके थे और मेरी पत्नी की सब्जी की चिंता का तात्कालिक निवारण उन्होंने इस प्रकार कर दिया था।

पुत्री की नेत्र-पीड़ा

एक दिन मेरी द्वि-वर्षीया नन्हीं दत्तक पुत्री सुकीर्ति श्री महाराज जी के मंच के पास बालुका राशि पर बड़े आनन्दपूर्वक खेल रही थी। संध्या का समय था और वातावरण बड़ा ही सुहावना लग रहा था। शीतल पवन भी प्रवाहित था तथा उसके झकोरे तन को आह्लादित कर रहे थे। इसी बीच बच्ची रोने लगी और आँखों को मलने भी लगी। उसकी आँखों में बालू का कण चला गया था और फलतः वह उन्हें खोल नहीं पा रही थी तथा जोर-जोर से चिल्ला रही थी। उस समय श्री महाराज जी मंच से उतरकर ओट में नीचे चले गये थे। बच्ची की आवाज सुनकर श्री महाराज जी ने अन्दर से ही उसके रोने का कारण जानना चाहा। कारण बताये जाने पर वे फौरन मंच पर वापस आ गये और सुकीर्ति को बुलाकर प्रसाद दिया। आश्चर्य कि बच्ची ने चुप होकर, आँखे खोल-कर श्री महाराज जी के हाथों से प्रसाद लिया और प्रेम-पूर्वक प्रसाद पाने में मग्न हो गई तथा उसकी नेत्र-पीड़ा भी क्षण भर में जाने कैसे दूर हो गयी। बाद में हमलोगों ने देखा कि उसके दोनों नेत्रों के किनारे से ढेर सारा गीला बालू बाहर आकर गिरा।

नारियल के प्रसाद की कथा

मुझे कुछ सूत्रों से पता चला कि महाराज जी डाभ ग्रहण करते हैं। मेरे घर में नारियल के दो पौधे थे जिनमें प्रथम बार फल आया था। मुझे ऐसा भाव आया कि क्यों न इन फलों को श्री महाराज जी की सेवा में अर्पित कर दिया जाय। दोनों वृक्षों में कुल मिलाकर १८ फल थे। मेरी पत्नी ने भी मेरे उक्त विचारों का अनुमोदन किया। चूंकि मैं अक्सर कार्यालय से सीधे ही मंच के पास पहुंचा करता था, अतः फल ले जाने की जिम्मेदारी पत्नी पर ही थी। मैंने उनको यह भी निर्देश दे दिया था कि वह फल अर्पित करते समय श्री महाराज जी को यह बता दें कि यह नारियल का फल अपने गोशाले का है, ताकि श्री महाराज जी उसकी शुद्धता जानकर उसे ग्रहण कर लें। वह प्रतिदिन एक फल ले जाती रहीं परन्तु उक्त तथ्य का जिक्र नहीं किया। इस बीच एक-दो दिन मैंने भी फल स्वयं ले जाकर अर्पित किया, परन्तु मैं भी कुछ नहीं कह सका। किन्तु पाँच-छः दिनों के बाद जब एक दिन मैं फल अर्पित करने को अपना झोला हाथ में लिए हुए ही था कि श्री महाराज जी ने बड़े ही स्नेहपूर्वक पूछा : "इस झोले में तुम कैसा-कैसा फल लाते हो ?" मैंने बिना उत्तर दिये ही सारे फल श्री महाराज जी को अर्पित कर दिये।

पूज्य बाबा ने तब पुनः प्रश्न किया—"ये सब फल कहाँ से लाते हो?" मुझे बाध्य होकर कहना पड़ा कि अन्य फल तो बाजार से खरीदे गये हैं परन्तु नारियल का फल अपने घर का है। इतना सुनते ही श्री महाराज जी ने प्रश्नों की बौछार कर दी। तुमने अभी तक बताया नहीं था कि यह तुम्हारे घर का फल है? तुम्हारी घरवाली ने भी नहीं बताया, किसी अन्य ने भी नहीं बताया? अच्छा है बच्चा, बहुत अच्छा है!"

यह सुनकर मैं आनन्द-मिश्रित आश्चर्य से चकित था कि इस प्रकार श्री महाराज जी मेरे अन्दर के भावों की तुष्टि कर रहे थे। उसके बाद भी प्रतिदिन एक फल अर्पित करने का क्रम चलता रहा और श्री महाराज जी स्वीकार करते रहे। अन्ततः जब वृक्ष में चार फल शेष रह गये तो श्री महाराज जी ने उस दिन कहा—"अरे बच्चा, कुछ अपने लिए भी तो रख! वृक्ष के सारे फल मुझे ही दे देगा?" मैंने कहा—"भगवन्! आपका दिया हुआ ही आपको अर्पित कर रहा हूँ।" बाबा कुछ नहीं बोले किन्तु उसी प्रकार शेष चारों फल भी मैंने श्री चरणों में ही अर्पित किये। मुझे आश्चर्य हुआ कि नारियल के वृक्ष में कितने फल हैं, इसकी जानकारी बिना देखे किसी को कैसे हो सकती है और वह भी समाप्त-प्राय होने की स्थिति का अनुमान-ज्ञान तो और भी आश्चर्यजनक है। वृक्ष के फलों की समाप्त-प्राय स्थिति के महाराज जी के पूर्व अभिज्ञान ने हमें विस्मित तो किया ही, उनकी परोक्षदृष्टि ने हमें और भी संभ्रम से भर दिया।

सुगन्ध का विकिरण

एक दिन जब मैं दण्डवत् ही कर रहा था कि श्री महाराज जी ने मुझे बुला लिया। पहले से ही दो भक्त मंच के पास खड़े थे जिनमें एक श्री लाला रायजी थे और दूसरे को मैं नहीं पहचानता था। मैं जाकर श्री राय जी के पास खड़ा हो गया। श्री महाराज जी ने हमलोगों को कुछ अनुभव करने को कहा। मैं कभी अपने श्वास पर ध्यान देता तो कभी रेत की गर्मी पर तथा कभी हवा की गति पर क्योंकि इधर कुछ दिनों से इसी प्रकार की लीलाओं का दर्शन या अनुभव विभिन्न भक्त करते आ रहे थे। श्री महाराज जी बार-बार पूछ रहे थे कि कुछ प्रतीत हो रहा है? परन्तु मुझे सब कुछ सामान्य-सा ही लग रहा था, इसलिए मैं नकारात्मक उत्तर ही दे रहा था। अचानक मुझे भीनी-भीनी खुशबू की अनुभूति हुई और मैंने अपना अनुभव श्री महाराज जी को बताया। इसके अनन्तर तो सभी खड़े एवं अग्रिम पंक्ति में बैठे भक्तों को इसकी अनुभूति

होने लगी। उपस्थित जन समुदाय में से कुछ को अगरबत्ती की खुशबू का मान हुआ और फलतः सभी जगह जलती अगरबत्ती की खोज होने लगी। परन्तु कहीं भी कोई जलती अगरबत्ती नहीं पाई गई। इसके बाद तो पूरे वातावरण में खुशबू-ही-खुशबू छा गई। सुदूर बैठे लोगों तक ने खुशबू का आनन्द लिया। किन्तु यह खुशबू क्षण-क्षण बदलने लगी। कभी गुलाब की सुगन्ध तो कभी केवड़ा की। और आश्चर्य यह कि पास ही बैठे दो व्यक्तियों में एक व्यक्ति सुखद सुगन्ध का अनुभव कर रहा होता तो दूसरा व्यक्ति नहीं और जब दूसरा व्यक्ति अनुभव कर रहा होता तो पहला व्यक्ति नहीं; और कभी-कभी एक ही साथ सभी लोग सुगन्ध का आनन्द लेने लगते। उस दिन श्री महाराज जी की यह विशेष लीला देखकर सभी चकित-विस्मित और आनन्दित थे।

विद्युत् संकट का निवारण

एक दिन सन्ध्या समय पूज्य महाराज जी के दर्शनार्थ जाते हुए हम सपत्नीक जिस नौका पर सवार हुए उसी नौका से मेरे एक सम्बन्धी श्री रुद्रनाथ सिंह जी पूज्य बाबा का दर्शन कर लौट रहे थे। जब उन्होंने देखा कि ये दोनों पति-पत्नी श्री महाराज जी के दर्शन में जा रहे हैं तो उन्हें मेरे आवास पर जाने की कोई संगति नहीं थी। फिर भी बाबा की प्रेरणा से वे मेरे घर चले आये, जहाँ उस समय सिर्फ बच्चे ही थे। मेरे घर के पीछे गोशाला है जिसका रास्ता घर की बगल से गलियारे के रूप में है। मेरे पड़ोस के एक व्यक्ति का बिजली कनेक्शन इधर से ही था। उसी पोल से तार बांधकर कपड़े सुखाने का कार्य भी लिया जाता था। श्री रुद्रनाथ सिंह जी मेरे बच्चों के साथ बरामदे में बैठकर बातें कर रहे थे और इसी बीच गाय को खिलाने हेतु बिचाली (कुट्टी) पहुँचाने मजदूर जा रहा था। तार में बिजली के स्पर्श करते ही चिनगारियाँ निकलने लगीं जिसे श्री सिंह ने देख लिया। तत्क्षण एक बिजली मिस्त्री बुलाया गया तो मालूम हुआ कि मेरे बरामदे में लगे ग्रिल में भी विद्युत् आवेश आ गया है। अतः विद्युत् सम्पर्क तत्क्षण काटा गया। यह घटना रात के करीब आठ बजे की थी। उसी समय श्री महाराज जी ने मुझे एकांत में बुलाया और अजीब-से प्रश्न करते रहे—"बच्चा, तुम्हारी गोशाला कितनी बड़ी है? उसमें कितने आदमी बैठ सकते हैं? उसमें कितने वृक्ष हैं? उसका रास्ता किधर से है? तुम्हारे आस-पास में दूसरे मकान है या नहीं?"—इत्यादि। मैं बारी-बारी से प्रश्नों का उत्तर देता जाता और वे पुनः-पुनः प्रश्न कर देते। मेरी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि आखिर श्री महाराज जी ऐसे प्रश्न क्यों कर रहे हैं? बीच-बीच में वे आसमान की ओर

भी देख लेते थे। करीब पन्द्रह मिनटों तक उन्होंने मुझे इस वार्ता में उलझाये रक्खा और पुनः वापस जाकर बैठने का आदेश दिया। जब मैं रात्रि में ग्यारह बजे घर वापस लौटा तो मुझे बच्चों ने उपर्युक्त घटना की सूचना दी। इस आसन्न संकट के समय का मिलान करने पर मुझे श्री बाबा जी की बातों का रहस्य समझ में आया और अश्रुपूर्ण नेत्रों से मैंने मन-ही-मन उनका नमन किया।

सेवा-व्रती बालक की सुरक्षा

जैसी कि मैं पहले चर्चा कर चुका हूँ, नित्य सवेरे मंच पर दूध पहुँचाने का कार्य मेरा छोटा पुत्र अनुपम प्रकाश किया करता था। वह जब वापस आता और प्रसाद लाता तो उसे पाकर ही मैं कार्यालय जाया करता था। इसमें मेरे दो भाव थे। एक तो प्रसाद पाना और दूसरा बच्चे के सकुशल वापस लौट आने का संतोष पा लेना। मात्र ११ वर्ष का बालक गंगा की उच्छल तरंगों को पार कर रोज आता-जाता था। एक दिन हवा बहुत तेज बह रही थी तथा फलतः धारा में तरंगें बहुत उठ रही थीं। बालक के लौटने में विलम्ब हो रहा था और मेरी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। जब तपती दोपहरी के साढ़े ग्यारह बजे तक भी वह नहीं लौटा तो मैं काफी चिंतित हो गया और पता लगाने के लिए घर से निकल पड़ा। किन्तु भगवत्कृपा से रास्ते में ही उससे मुलाकात हो गयी और मैं निश्चिंत होकर कार्यालय चला गया। सन्ध्या समय जब मैं श्री महाराज जी के दर्शन में गया तो उन्होंने कहा—"बच्चा, बालक को बहुत देर तक रोक लेते हैं, उसे तपाते हैं। तप से उसका संस्कार बनेगा। वास्तव में बालक जब घर से चल देता है तो उसका दायित्व मुझपर आ जाता है और जबतक वह घर वापस नहीं पहुँच जाता वह मेरी दृष्टि में बना रहता है।" मैं तो यह सुनकर अवाक् रह गया और मुझे परम आश्चर्य हुआ कि आज ही दिन में बालक की सुरक्षा के प्रति मेरी उठी चिंताओं का निवारण किस प्रकार श्री महाराज जी ने किया! उसके बाद बालक की तरफ से मैं सर्वथा निश्चिंत हो गया।

पूज्य बाबा का विंध्याचल प्रत्यावर्त्तन

दिनांक २५-६-९३ को श्री महाराज जी के विन्ध्याचल आश्रम लौटने का कार्यक्रम तय हुआ था। उसके एक दिन पूर्व से ही पावस ऋतु की प्रथम फुहारें शुरू हो गयी थीं। घनघोर घटायें घिरतीं किन्तु श्री महाराज जी उन्हें भगा देते ताकि दर्शनार्थी भक्तों को कोई कष्ट न हो। उस दिन श्री महाराज जी की विदाई हेतु हम सपरिवार गये थे। किन्तु किसी कारणवश श्री महाराज जी के जाने का

कार्यक्रम उसके दूसरे दिन सवेरे तय हुआ और सभी की छुट्टी कर दी गई। तथापि कुछ भक्त वहीं रुक गये ताकि रातभर उपस्थित रहकर सवेरे श्री महाराज जी के प्रस्थान काल तक आवश्यक सेवा के लिए लभ्य रहें। मैं भी अपने परिवार को विदा कर वहीं रुक गया था परन्तु थोड़ी देर बाद ही हम सबों को भी जाने का निर्देश मंच से हो गया। मैं भारी मन से घर लौटा क्योंकि श्री महाराज जी के प्रस्थान का दृश्य मैं पूरी तरह मन में और आँखों में समेट लेना चाहता था।

मेरे साथ मेरे मित्र श्री राजदेव सिंह भी उस रात मेरे निवास पर ही रुक गये। रात भर मैं पूरी तरह सो नहीं सका और सवेरे चार बजे ही मैं तथा श्री सिंह तैयार होकर गंगा तट की ओर चल दिये। मैंने अपने परिवार वालों को भी कह दिया था कि सभी लोग पाँच बजे तक गंगा-तट पर अवश्य पहुँच जायें। जिस समय मैं श्री सिंह जी के साथ गंगा-तट पर पहुँचा उसी समय एक अन्य भक्त श्री लाला राय जी का भी आगमन हो गया। परन्तु एक भी नाविक का पता नहीं था। हमारी व्यग्रता बढ़ती जा रही थी कि कैसे श्री महाराज जी के समक्ष तत्क्षण उपस्थित हो जायें! इसी बीच पूज्य महाराज जी की कृपा से जो नाविक रात में हमलोगों को लेकर आया था वह अनाशित रूप से लभ्य हो गया और हमलोग उस पार पहुँच गये।

सभी नौकायें उस पार ही लगी थीं और उनपर सामान रखा जा रहा था। मैं मंच के समक्ष दण्डवत् ही कर रहा था कि श्री महाराज जी ने मुझे अन्दर बुलाया और योगिराज सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी महाराज का बड़ा-सा चित्रपट मेरे हाथों में थमाते हुए आदेश दिया कि इसे नौका पर रखकर आओ। मैं भावाभिभूत होकर दौड़ता हुआ गया और नौका पर स-संभ्रम उस सुविशाल चित्र को रखकर उसी शीघ्रता से पुनः श्री महाराज जी के समक्ष उपस्थित हो गया। उन्होंने इस बार एक गठरी थमाते हुए आदेश दिया कि अब इसके साथ जाओ और शीघ्रताशीघ्र नौका खुलवा दो, मैं पीछे से अकेले नौका द्वारा आ रहा हूँ, विलम्ब मत करना। सामान और हमारे साथ अन्य भक्तों को भी लेकर नौका जैसे ही नगर वाले तट पर पहुँची और निर्दिष्ट मोटर यान में सामान रखा गया कि श्री महाराज जी की नौका भी उस पार से खुली और कुछेक पलों में ही तीव्र गति से इस पार पहुँच गई।

बड़ा ही अद्भुत था वह दृश्य। श्री महाराज जी खड़े होकर पाल की डोर थामे ऐसे लग रहे थे मानो श्री रामचन्द्र जी धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाये हुए हों। जैसे ही नौका तट को स्पर्श करने को हुई कि उपस्थित भक्त समुदाय श्री महाराज

जी की तरफ उनका चरण स्पर्श करने को दौड़ा। परन्तु, श्री महाराज जी तो इन्हीं कतिपय क्षणों में पवन की गति से नौका से उतरकर गाड़ी में जा विराजे थे। वह दृश्य अविस्मरणीय तथा अद्भुत था। जिन लोगों ने उस दृश्य को देखा वे धन्य हो गये।

भगवत्स्वरूप श्री बाबा

श्री महाराज जी के प्रस्थान करते ही ऐसे जोरों की वर्षा होने लगी कि दौड़ते-भागते भी लोग भींग गये। लगातार दो दिनों तक मूसलाधार वृष्टि होती रही। परिणाम यह हुआ कि माँ भागीरथी ने भी अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार किया तथा तीन दिनों के बाद जहाँ श्री महाराज जी का मंच था वह स्थान भी जलमग्न हो गया। और फलतः मेरी अपनी स्थिति तो द्यूत में अपना सर्वस्व हारे हुए वणिक की-सी हो गई—निपट अवलम्ब-विहीन और उद्भ्रान्त !

लगातार एक माह तक श्री महाराज जी के सान्निध्य से प्राप्त अलौकिक आनन्द में अचानक व्यतिक्रम आ जाने से मैं काफी व्याकुलता महसूस करने लगा। फलतः चार दिनो बाद ही मैं अपनी पत्नी एवं बड़े पुत्र उज्ज्वल प्रकाश तथा मित्र श्री राजदेव सिंह के साथ गुरु पूर्णिमा से दो दिन पूर्व ही विंध्याचल पहुँच गया। माँ विन्ध्यवासिनी के दर्शन-पूजन के पश्चात् हमलोग अमरावती रोड, भागेश्वर स्थित श्री देवराहा बाबा स्वर्गाश्रम पहुँचे। इस परमरम्य स्वर्गाश्रम की यह मेरी पहली यात्रा थी। वहाँ पहुँचते ही मुझे बड़ी आह्लादकर अनुभूति होने लगी और श्री महाराज जी का दर्शन करके तो हृदय और भी अभिभूत हो गया। उस समय तक बहुत कम भक्त ही वहाँ पहुँच पाये थे, अतः एकान्त में श्री महाराज जी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी और दिनांक ३-७-९३ को गुरु पूर्णिमा के अवसर पर तो भक्तों की संख्या हजारों में पहुँच गई। मंच से थोड़ी दूर पर अवस्थित सुन्दर सरोवर है जिसमें श्री बड़े महाराज जी स्वयं स्नान किया करते थे। उसे अब भक्तों के स्नानार्थ भी सुलभ कर दिया गया था। उस सरोवर का जल भागीरथी के जल की तरह निर्मल है और श्री महाराज जी के दिव्य शरीर का बार-बार स्पर्श पाने के कारण उसकी पवित्रता का तो कहना ही क्या ! चारों ओर उल्लास का वातावरण था। चतुर्दिक् पहाड़ियो से घिरा वह सुरम्य एवं शान्त सिद्ध स्थल, सैकड़ों की संख्या में उन्मुक्त विचरती गायों का समूह, आँवले का उद्यान एवं मंच के पास ही थिरकती मयूरी का नयनाभिराम स्वरूप इतने मनभावन थे कि लगता था जैसे द्वापरयुगीन श्री वृन्दावन धाम ही

आज विन्ध्याचल में उतर आया हो ! और ऐसा हो भी क्यों नहीं —"अवध तहाँ जहँ राम निवासू ।"

विंध्याचल में गायों का भंडारा

श्री महाराज जी सवेरे से ही बड़ी प्रसन्न मुद्रा में भक्तों को दर्शन दे रहे थे तथा गुरु-कृपा रूपी प्रसाद उन्मुक्त भाव से अनवरत लुटा रहे थे। सभी नर-नारी तन्मय होकर गुरु की पूजा-अर्चना कर रहे थे एवं आरती उतार रहे थे। श्री महाराज जी के श्रीमुख से ब्रह्म-वाणी की निर्झरिणी स्वतः निःसृत हो रही थी जिसमें अवगाहन कर सभी भक्त आनन्दित हो रहे थे। इस शुभ अवसर पर कुछ श्रद्धालु भक्तों के सहयोग से एक बृहत् भण्डारे का आयोजन किया गया था।

श्री महाराज जी के आदेश से सर्वप्रथम गायों का भण्डारा कराया जाने लगा। मंच के पास ही करीब ढाई-तीन सौ गायें एकत्रित थीं। श्री महाराज जी स्वयं अपने हाथों से शुद्ध घी का बना लड्डू फेंक रहे थे और उपस्थित नर-नारी एवं बच्चे उन्हें लूट-लूटकर गायों को खिला रहे थे। मैं भी बार-बार श्री महाराज जी से लड्डू प्राप्त करता और गायों को खिलाता जाता। इसी क्रम में मैं थोड़ी दूर चला गया। श्री महाराज जी ने मेरा नाम सम्बोधित कर मुझे बुलाया और कहा—" बच्चा ओम प्रकाश, गायों को सिर्फ लड्डू ही खिलाओगे, पूड़ी नहीं खिलाओगे ? जाओ, जल्दी से आश्रम से पूड़ी भी ले आओ।"

स्मरणीय है कि मंच से आश्रम की दूरी करीब आधा किलोमीटर है। मैं अपने पुत्र उज्ज्वल प्रकाश एवं मित्र श्री राजदेव सिंह को लेकर दौड़ता हुआ आश्रम पहुँचा। तीन-चार भक्त बाहर के भी थे जिन्हें मैं नहीं पहचानता था। पाकशाला में इस समय तक तैयार सभी पूड़ियों को टोकरियों में सँजोकर तथा माथे पर उठाकर सभी जन मंच के पास आये और उन टोकरियों को श्री महाराज जी के पास मंच पर रख दिया गया। श्री महाराज जी स्वयं दोनों हाथों से पूड़ियों को लुटाने लगे और भक्त जन लूट-लूटकर गायों को खिलाने लगे। वह अविस्मरणीय क्षण बड़ा ही मनोज्ञ था। मैं भी श्री महाराज जी से पूड़ियाँ प्राप्त करता और तन्मयतापूर्वक गायों को खिलाता जाता और इसी क्रम में मैं दूसरे छोर तक पहुँच गया। वहाँ से पुनः पूड़ी प्राप्त करने के लिए मैं वापस आ ही रहा था कि अचानक मेरी दृष्टि अपनी पत्नी पर पड़ी जो आँचल में ढेर सारी पूड़ियाँ लेकर गायों को खिला रही थीं। मैं भी उनके आँचल से ही पूड़ियाँ ले ही रहा था कि पीछे से एक सुमधुर आवाज आई—" इन्हें खिलाइये, ये बड़े

महाराज जी हैं।" मैंने पलटकर देखा कि एक १०-११ वर्ष का साँवला सलोना बालक होठों पर मधुर मुस्कान लिए तथा हाथ में छड़ी सँभाले खड़ा है। वेश-भूषा से वह चरवाहा ही लग रहा था। परन्तु, जैसे ही मेरी दृष्टि उसकी दृष्टि से मिली, मैं कुछ पल के लिए सम्मोहित हो गया ! उसकी आँखों में विचित्र चमक थी। पास ही खड़े एक भीमकाय परन्तु शान्त वृद्ध साँढ़ की ओर संकेत करते हुए उस बालक ने पुन: उक्त बातें दुहरायीं। मैं साँढ़ की ओर हाथ बढ़ाना ही चाहता था कि वह स्वत: मेरे पास आया और मेरे हाथ से पूड़ियाँ ले लीं। तत्पश्चात् उक्त बालक ने पुन: मुस्कराते हुए कहा—"और मुझे भी खिलाइये, मैं सबसे बड़ा महाराज हूँ।" पूज्य बाबा के आदेश का स्मरण कर मैंने उत्तर दिया—'तुम लोग तो पाओगे ही। अभी तो गायों की बारी है।" इतना कहकर मैं शेष पूड़ियों को दूसरी गायों को खिलाने में तल्लीन हो गया।

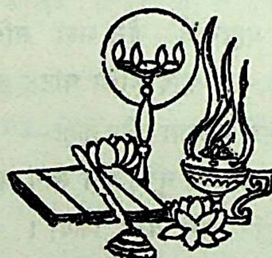
वह बालक—'सबसे बड़ा महाराज'—क्या स्वयं श्याम सुन्दर थे?

कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् हाथ धोकर जैसे ही श्री महाराज जी के मंच के सम्मुख हम बैठे कि कुछ देर पहले घटी उक्त घटना की स्मृति ने मेरे मस्तिष्क को विचलित कर दिया। मानस पटल पर नाना प्रकार के प्रश्न उमड़ने लगे। उक्त बालक के स्मित हास्य, मनोहर नेत्र एवं उसके वे मधुर शब्द जिनमें 'बड़े महाराज' एवं 'सबसे बड़े महाराज' जैसे शब्द सन्निहित थे, मुझे बार-बार सोचने पर विवश कर रहे थे कि यह कोई लीला घटित हुई या मेरा मति-भ्रम है ! इसी बीच श्री महाराज जी ने मुझे बुलाया और कहा—"बच्चा ! तुम अब कितनी तपस्या करोगे ? गायों को तो खिला ही चुके, अब स्वयं जाकर आश्रम पर पाओ।" इतना कहकर प्रसाद देकर उन्होंने हमें विदा किया।

श्री महाराज जी के ये शब्द मुझे और भी विचलित करने लगे। जहाँ सैंकड़ों व्यक्ति गायों को खिला रहे थे वहाँ श्री महाराज जी ने मुझे ही क्यों पूड़ी लाने का आदेश दिया जबकि मैं मंच से काफी दूरी पर था। पुन: 'गायों को तो खिला ही चुके' जैसे शब्दों का प्रयोग मेरे लिए ही क्यों किया गया जबकि इस कार्य में सैंकड़ों लोग सम्बद्ध थे। इन्हीं अनुत्तरित प्रश्नों को संजोये मैं दो दिन वहाँ रहा और हम दोनों पति-पत्नी गोशाला में उस बालक की तलाश करते रहे। परन्तु उसका पता नहीं चल सका और श्री महाराज जी से विदाई लेकर अन्य भक्तों के साथ सपरिवार हम पटना लौट आये।

परन्तु, वे अनुत्तरित प्रश्न मुझे चैन नहीं लेने दे रहे थे। अतः दस दिनों के ही बाद पुनः पुत्र अनुपम प्रकाश के साथ सपत्नीक हम श्री महाराज जी के निकट यह सोचकर उपस्थित हुए कि मात्र वे ही उन प्रश्नों का सही उत्तर दे सकते हैं। मैंने सुयोग पाकर डरते-डरते श्री महाराज जी से पूछा—"सरकार, गुरु पूर्णिमा के दिन घटी घटना कोई लीला थी अथवा मेरा भ्रम था?" श्री महाराज जी ने पास ही स्थापित श्री श्याम सुन्दर के विग्रह की ओर संकेत किया तथा मुस्कराते हुए कहा—"अरे, यही तो थे!" मैंने कहा—"ये थे अथवा आप?" उन्होंने कहा—"एक ही बात है!"

मेरे प्रश्नों का उत्तर मिल चुका था और मेरा चित्त शान्त होकर श्रीचरणों में अर्पित हो रहा था। यह भगवत्स्वरूप श्री महाराज जी की असीम कृपा का ही फल था कि मुझ जैसे अधमाधम पर उन्होंने दया कर ऐसी झांकी दिखलाई जो मेरे जीवन की सबसे अमूल्य निधि बन गई, यद्यपि इसके लिए मैं सर्वथा अयोग्य था!



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', नवम्बर १९९३]

पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा जी की परा-वाणी

★ श्री ओम प्रकाश सिंह

[पूज्यचरण श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज की महती कृपा से उनके सान्निध्य में ही प्राप्त अपने अनुभवों का विवरण परम भक्ति-भावित श्री ओम प्रकाश सिंह जी ने विगत पृष्ठों में प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया है कि उनके अनुभवों की यह शृंखला और भी दीर्घतर है जिसका विवरण 'पावन प्रसाद' के माध्यम से वे आगे भी देंगे। पूज्य बाबा के दर्शन के लिए वे सदैव अधीर तो रहते ही हैं, किन्तु सरकारी सेवा का दायित्व उनके लिए बंधन बना रहता है। तथापि, उनकी उत्कट निष्ठा के समक्ष ऐसी सारी शृंखलायें भग्न होती रहती हैं और उनकी इस सदिच्छा की पूर्ति प्रभु-कृपा से सदा होती ही रहती है। इसी क्रम में वे पूज्य महाराज जी के दर्शन में विगत विजयादशमी के अवसर पर धनबाद जनपद के निरसा में भी उपस्थित हुए थे जहाँ उन दिनों पूज्यपाद हंस बाबा जी महाराज का दर्शन-क्रम चल रहा था। वहीं विगत २५ अक्तूबर (१९९३) को श्री महाराजजी अपनी परा-वाणी के कुल २४ सूत्र भक्तजनों के लाभार्थ उन्हें लिखाये थे जो निम्नांकित हैं। प्रस्तुत परा-वाणी के अन्त में श्री ओम प्रकाश जी ने तत्संबंधी अपने निष्कर्ष भी दिये हैं जो विशेष रूप से ध्यातव्य हैं। —सम्पादक]

सत्य ही प्रेमहि रूप है, बाबा का है एक।
अब देखो तुम आय के, हंसहि में ही एक ॥१॥

देख-देख के देख लो, वही एक ही एक।
बैठा है एक-एक ही, बाबा तेरा एक ॥२॥

कैसा-कैसा बन के तू, बैठा है तू एक।
एक ही बाबा एक ही, मेरा बाबा एक ॥३॥

तू ही एक ही एक है, देवराहा बाबा एक।
एक ही एक ही एक है, हंसहि में है एक ॥४॥

बना हुआ है कैसा-कैसा, मेरा बाबा तू।
तू है एक ही एक हैं, हंसहि में ही तू ॥५॥

आता-आता तू रहा, बनके तू-तू एक।
एक-एक बन आ गया, हंसहि में तू एक ॥६॥

तू बाबा तू बाबा तू, मेरा बाबा तू।
तू ही बैठा एक है, हंसहि में अब तू ॥७॥

पूरा पूरा तू रहा, तू ही एक ही एक।
एक तू मेरा अब रहा, हंसहि में तू एक ॥८॥

जब भी पूछो पूछो तुम, बाबा को अब एक।
एक ही एक ही पूछ के, हंस ही से एक-एक ॥९॥

हंस ही एकहि एक है, ऐसा है एक एक।
जो है एक ही एक से, एक बनाया एक ॥१०॥

एक बनाया एक ही, बाबा को एक एक।
बनके बनके बन गया, देवराहा बाबा एक ॥११॥

धूम मचाया ऐसा ऐसा, बैठ के मंचहि एक।
कह कह के सब कह रहे, हंस देवराहा एक ॥१२॥

एक एक तू एक है, देवराहा बाबा एक।
एकहि तू एक एक ही, हंसहि में तू एक ॥१३॥

तू तो बना है एक ही, एक ही एक ही एक।
एक-एक तू एक ही, हंस ही में तू एक ॥१४॥

बोल के बोल के बोलो तुम, अब बोलो तुम एक।
एक ही बोलो देवराहा, देख हंस को एक ॥१५॥

तू तू बाबा तू तू तू है, तू है एक ही एक।
एक ही तू तू एक है, हंसहि में अब एक ॥१६॥

बैठ के बैठा तू बैठा है, बैठा बैठा एक।
एक एक ही एक है, हंस ही में तू एक ॥१७॥

सदा बना है तू बना, एक ही एक ही एक।
एक एक ही बनके तू, आया हंस में एक ॥१८॥

बाबा मेरा तू है मेरा, प्यारा तू-तू एक।
कैसा बनके बैठ गया, हंस ही में तू एक ॥१९॥

बोला-बोला बोला तू, है बोला तू एक।
एक तू बोला अब अबहिं, हंसहि में तू एक ॥२०॥

एक तू बाबा मेरा मेरा, मेरा प्यारा एक।
एक रहा है एक हीं, तू है एक ही एक ॥२१॥

अब मैं बोलूँ जब-जब बोलूँ, बाबा ही को एक।
एक ही बोलूँ देख के, हंस में ही एक ॥२२॥

तू बाबा तू है है है, अब तू है है है।
हंस ही में तू एक ही, है है है है है ॥२३॥

ग्यारह में ग्यारे, ले ले अवतारे।
हंसहि में हैं अब, बाबा तेरे प्यारे ॥२४॥

उपर्युक्त परावाणी के प्रत्येक सूत्र से स्पष्ट होता है कि ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबा का ही आविर्भाव श्री देवराहा हंस बाबाजी महाराज के वर्तमान रूप में हुआ है। अपने इस नये स्वरूप के माध्यम से ही उनकी अमित लीलाओं का अब विस्तार हो रहा है और आगे भी होगा। परावाणी के सभी सूत्र अमूल्य मंत्र हैं जिनका गूढ़ार्थ तो विद्वज्जन ही लगा सकते हैं। शब्दों की आवृत्ति भी रहस्यात्मक है। उदाहरणार्थ सूत्र संख्या २३ में कुल ग्यारह बार 'है' शब्द की आवृत्ति हुई है। हमारे शास्त्रों में ग्यारह रुद्रों की चर्चा है जिसमें ग्यारहवें रुद्र स्वयं श्री हनुमान जी हैं। सूत्र संख्या २४ से उपर्युक्त बातों की पुष्टि होती है। परावाणी का प्रत्येक सूत्र भाषा-विज्ञानियों के लिए शोध का विषय हो सकता है, पर साधारण अर्थों में उपर्युक्त सूत्रों का मूलगत मंतव्य उनके द्वारा पूज्य सद्गुरु योगिराज श्री देवराहा बाबा जी के अपार भक्तों को गुरु-तत्त्व का दिग्दर्शन कराना एवं उन्हें एक-सूत्र में आबद्ध रहने के निमित्त उद्बोधित करना ही है।



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', नवम्बर १९९३]

ब्रह्मवेत्ता श्री देवराहा हंस बाबा लीलामृत

★ श्री अमरनाथ ओझा

विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम के सिद्ध योगी ब्रह्मवेत्ता श्री हंस बाबा में स्वयं अकाय हुए श्री देवराहा बाबा अपनी समग्र योग विभुता के साथ लीला रूप में प्रकट होकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में लोक-कल्याण के साथ कलियुग में सतयुग के आविर्भाव का अध्याय प्रारंभ कर चुके हैं। ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा की परम्परा को निरन्तर गतिशील रखने का ही ईश्वरीय विधान श्री हंस बाबा जी महाराज के माध्यम से अब फलित हो रहा है।

श्री हंस बाबा ने बिहार के मोतीहारी, हाजीपुर, बेतिया, बेगूसराय, पटना, डेहरीऑन-सोन तथा धनबाद के निरसा तथा झरिया के क्षेत्रों का भ्रमण कर लोक-कल्याण के पुनीत कार्य का सूत्रपात कर दिया है तथा नवम्बर-दिसम्बर के दर्म्यान उनका दर्शन राँची क्षेत्र के अध्यात्मानुरागी जनों को हो रहा है। इसी क्रम में वे पालकोट भी पधारे जहाँ पूज्य देवराहा बाबा जी ने एक बार रीछों का भंडारा कराया था।

श्री देवराहा हंस बाबा जी के मंच से लोक-कल्याण के साथ-साथ योगिराज देवराहा बाबा के विन्ध्याचल आश्रम की गायों की भी सेवा हो रही है। उपर्युक्त स्थानों के भ्रमण के क्रम में सैकड़ों भक्तों के असाध्य रोगों का निवारण भी श्री हंस बाबाजी महाराज की कृपा से हुआ। शारीरिक व्याधि का निवारण श्री हंस बाबा की दिशा नहीं है, किन्तु भक्त जन अपनी भावना के अनुरूप कल्याण पा रहे हैं—ऐसा ही करुणामय श्री बाबा का कथन है। ग्रन्थों में शारीरिक व्याधियों का निराकरण भिन्न-भिन्न योग क्रियाओं द्वारा बताया गया है, परन्तु श्री हस बाबा की परा-वाणी से ही असाध्य कष्टों का निवारण भी हो जा रहा है। यह अपने आप में एक अद्भुत आध्यात्मिक लीला है।

योगिराज श्री देवराहा बाबा की दया भक्तों पर निरन्तर बरसती रहती थी और वही परम्परा अब पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा जी के माध्यम से चल रही है।

पूज्य योगिराज देवराहा बाबा जी की ही तरह श्री देवराहा हंस बाबा जी भी कहते हैं कि तुम अपनी सारी चिन्ता मेरी कुटी में ही डाल दो तथा निश्चिंत हो जाओ; उसके बाद तुम्हारे लोक-परलोक दोनों का दायित्व मुझ पर ही आ जाता है।

विंध्याचल की गोशाला और संत-निवास

गायों की सेवा के प्रति पूज्य हंस बाबा जी निरन्तर उद्बोधन करते रहते हैं। साथ ही श्री देवराहा बाबा के सभी पीठों पर इनकी दृष्टि है तथा सबके उत्थान के लिए आप भक्तों को प्रोत्साहित करते हैं। जिस रूप से श्री देवराहा बाबा जी सभी पीठों के संतों, गायों एवं ठाकुर जी को सेवा के लिए आर्थिक सहायता दिया करते थे उसी के अनुरूप पूज्य हंस बाबा ने भी उन स्थानों में सेवा भिजवाना प्रारम्भ कर दिया है। स्वर्गाश्रम विन्ध्याचल में श्री देवराहा बाबा के द्वारा छोड़े गये कार्यों को प्रथम चरण में पूरा करने का संकल्प आपने ले रखा है और कार्य प्रारम्भ भी हो गये हैं। उनमें मुख्य कार्य गोशाला और संत-निवास के अधूरे कार्यों को पूरा कराना तथा ठाकुर जी के मन्दिर के जीर्ण भाग का नव निर्माण करना है। आशा है ये कार्य शीघ्र ही पूरे हो जायेंगे।

श्री देवराहा बाबा जी महाराज ने कहा था कि 'बच्चा, हंस दास सिद्ध संत है' और उन्होंने इनको 'रामानुजाचार्य प्रपन्नाचार्य' नाम से सम्बोधित किया था। परन्तु परिस्थिति-वश उस समय उन्होंने कहा था कि 'बच्चा, अभी इन्हें हंस दास ही रहने दो।'

पूज्य बड़े महाराज जी-- योगिराज श्री देवराहा बाबा जी—के उस शरीर के कुछ अधूरे कार्यों को पूरा करने के बाद ही उसी शरीर के नये कार्यों का भी प्रारम्भ श्री हंस बाबा जी महाराज द्वारा होगा।

'ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबा गीता-मानस मंदिर' का निर्माण

सन् १९६६ में योगिराज श्री देवराहा बाबा जी जब विन्ध्याचल पधारे थे, उस समय श्री हंसदास बाबा भी वहाँ उपस्थित थे। उसी काल योगिराज श्री देवराहा बाबाजी विंध्याचल मच से उत्तर कुछ संतों के साथ भ्रमण में गये थे एवं उन लोगों ने निर्णय लिया था कि मंच के उत्तर जो ५०-६० एकड़ भूमि है उसमें गीता-मानस मन्दिर बनना चाहिए।

श्री हंस बाबाजी अब उस संकल्प को भी पूरा करने का अनुष्ठान प्रारम्भ करने जा रहे हैं। उन्होंने गत दशहरे के समय अपने इस संकल्प को भी दुहराया तथा भक्तों से कहा कि 'बच्चा, वहाँ ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबा गीता-मानस मन्दिर' बनेगा जिसमें गीता के सभी अठारह अध्यायों के श्लोकों के साथ पूरा रामचरित मानस भी अंकित

रहेगा। यह काशी के मानस मन्दिर के जैसा होगा किन्तु उससे भी भव्यतर होगा। यह मन्दिर तीन खण्डों में रहेगा—एक खण्ड में श्री देवराहा बाबा का विग्रह रहेगा, दूसरे में श्री राधा-कृष्ण के विग्रह एवं तीसरे में श्री राम लक्ष्मण तथा श्री सीता जी और हनुमानजी के विग्रह होंगे। मन्दिर के चतुर्दिक् १०८ कमरे रहेंगे जो माला स्वरूप होंगे तथा श्री देवराहा बाबा का मंच उसके केन्द्र में माला की सुमिरनी सदृश होगा। यह श्री देवराहा बाबा योग संस्थान के नाम से भी जाना जायेगा।

पूज्य श्री देवराहा हंस बाबा ने जब मुझे बताया कि विंध्याचल आश्रम पर 'ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबा गीता मानस मन्दिर' बनेगा तो मुझे सबसे प्रथम यह बात खटकी कि इतने द्रव्य की व्यवस्था कैसे होगी? इस सम्बन्ध में मैंने श्री महाराज जी से अपनी शंका जब व्यक्त की तो उन्होंने कहा कि एक-एक ईंट से मकान बनता है, उसी तरह भक्तों के सहयोग से यह कार्य हो जायेगा। फिर भी मुझे इस उत्तर से सन्तुष्ट नहीं देखकर श्री महाराज जी ने कहा—"बच्चा, विंध्याचल मंच के पास जो श्रीकृष्ण का विग्रह है वहाँ से संकेत मिला कि 'अगर मेरा पूरा विग्रह सोने का हो जाय तो तुम्हारा मन्दिर बन जायेगा क्या?' और उत्तर में मैंने निवेदन किया था कि इसकी आवश्यकता नहीं होगी, मनमोहन!"

हरिद्वार शंकराचार्य पीठ के संत

श्री देवराहा हंस बाबा के निरसा (धनबाद) अवस्थान के समय एक बहुत बड़े संत भी दर्शन में आये जो हरिद्वार के शंकराचार्य पीठ से थे। उन्होंने बताया कि श्री हंस बाबा का दर्शन कर वे धन्य-धन्य हो गये। उन्होंने कहा कि आपकी तुरीया स्थिति है। उन्होंने यह भी कहा कि आप श्री देवराहा बाबा ही हैं। उन्होंने श्री देवराहा हंस बाबा से प्रसाद साग्रह प्राप्त कर उसे पाया। उन्होंने मृगछाला एवं माला भी श्री महाराज से प्रसाद रूप में चाही जो उन्हें मिली। श्री हंस बाबाजी से उनकी वार्ता पुरानी परम्परा के अनुसार घन्टों चलती रही। इन आगत संत की आयु १३० वर्ष बतायी गयी। उनकी जटा नीचे तक आ गयी थी जिसे चलते समय उनके शिष्य संत उठाये रहते थे।

अन्त में मैं सभी भक्तों से सादर अनुरोध करता हूँ कि श्री देवराहा हंस बाबा श्री देवराहा बाबा के ही स्वरूप हैं, अतः उनके पुनीत कार्यों में हर सम्भव सहयोग देकर ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबा की परम्परा को आगे बढ़ाते चलें ताकि इसका प्रभाव विश्व स्तर तक पहुँच जाय एवं कलियुग में सतयुग के आगमन का अपेक्षित क्रम द्रुत गति से सम्पन्न हो!

[सूत्र : 'पावन प्रसाद', दिसम्बर १९९३]

श्री देवराहा हंस बाबा और मंच चमत्कार

ऋषिकुल दिवाकर ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा मंचासीन ऋषि थे। उनके सूक्ष्मीकरण के बाद उनके ही प्रतिरूप सिद्धयोगी श्री देवराहा हंस बाबा के तेज से पुनः मंच मंदिर में आध्यात्मिक ज्योति जगमगा उठी है। श्री देवराहाहंस के काया मंदिर में देवराहा देव की ब्रह्मलीन आत्मा वेद रचना के रूप में अभिव्यक्त हो रही है। इस अद्‌भुत ब्रह्म-चमत्कार का रहस्यमय अनुभव इन पंक्तियों से पाया जा सकता है।

मंच—प्रसंग

बाबा देवराहा एक रह्‌यो, ज्ञानी त्यागी एक।
देवराहा हंस में आ गये विध्यमंच पै एक॥

मंच रह्‌यो एक त्यागी को एक ही में एक एक।
धर्म दिखायो एक का त्याग में हो एक एक॥

त्यागी ज्ञानी ध्यान ही रह्‌यो एक ही एक।
एक ही एक दिखायके फैलायो है एक॥

एक हो देवराहा एक रह्‌यो मंच ही पै एक एक।
एक ही एक ही रहि के ज्ञान फैलायो एक॥

या को एक ही ज्ञान है नित्य निरंतर एक।
प्रेम रूप में पूजि के पूजा है एक एक॥

एक पूजवइया एक है देवराहा हंस में एक।
आ गयो आ गयो आ गयो देवराहा हंस में एक॥

बैठि बैठि के एक ते एक ही मंच पै एक।
ज्ञान दिखायो एक का एक ही एक ही एक॥

एक ही मेरो एक रह्‌यो हंस ही मेरो एक।
हंस ही में मैं एक हूं देवराहा हंस ही एक॥

बैठि बैठायो विध्य मंचपै एक ही एक ही एक॥
एक ही एक ही एक में देवराहा हंस है एक।
मंच ही एक ही एक रह्‌यो देवराहा का एक एक॥

वा तन छाड़िके आ गयो हंस ही में फिर एक।
आके एक ही एक ही ज्ञान दिखायो एक॥

ध्यान दिखा के एक से एक बतायो एक।
एक ही मेरो रूप है हंस ही मेरा रूप ॥

हंस ही में एक एक ही देवरहा का है रूप।
देवराहा आयो देवराहा आयो हंस ही में देवराहा आयो ॥

विन्ध्यमंच पर देवरहा आयो आके एक ही एक फैलायो।
एक फैलायो एक फैलायो एक में एक धूम मचायो ॥

एक ही एक ही राम ही एक ही।
एक ही में एक श्याम ही एक ही ॥

श्याम ही राम ही एक दिखायो।
दिखा दिखा के एक बतायो ॥

आके अइयो देख के अइयो देवरहा हंस ही रूप को।
रूप दिखायो एक दिखायो एक ही बाबा रूप को ॥

एक ही रूप देवरहा रूप ही।
हंस ही में एक देवरहा रूप ही ॥

विन्ध्य मंच पै बैठि बैठि के।
एक ही ज्ञान ही देखि देखि के ॥

कह्यो कह्यो है एक एक के।
एक ही में है एक एक के।

एक एक के एक एक के।
एक एक में एक एक के।

एक ही एक ही एक एक के।
एक ही में है हंस एक के ॥

हंस एक के हंस एक के।
देवरहा है एक हंस एक के।

एक ही एक ही एक एक के।
विन्ध्यमंच पै एक ही एक के ॥

ज्ञान दियो है एक ही एक के।
एक ही में एक श्याम एक के।

श्याम ही में हैं राम एक के।
राम ही श्याम ही एक एक के ॥

एक ही में एक राधा रानी।
आयो आयो राधा रानी ॥

आके आयी राधा रानी।
श्याम प्रिया है राधा रानी।

खेल खिलायो राधा रानी।
बोलि बोलि के राधा रानी ॥

राधा में सीता है जानी।
सीता सीता है एक मानी।

मानि मानि के एक ही मानी।
एक ही में सीता राधा मानी ॥

सीता राधा एक ही एका।
एक ही में राम श्याम ही एका ॥

एक ही एक ही है एक एका।
विन्ध्यमंच पै है एक एका ॥

देवरहा हंस में है एक एका।
एक ही में एक ज्ञान ही एका ॥

आके आइयो देखा के जइयो श्याम ही राम ही ज्ञान को।
दे रह्यो ही एक ही एक ही ब्रह्म ही वाणी प्राण को ॥

या बाबा की अद्भुत लीला एक ही एक दिखायो है।
एक ही एक एक एक में राम ही श्याम ही आयो है ॥

आप आप के एक एक में देवरहा ज्ञान फैलायो है।
विन्ध्यमंच पर आके देखियो देवरहा हंस आयो है ॥

नित्य ही सत्य हि मार्ग पै तू चलियो धरि धाय।
धाय पाय के एक में सत्य ही मार्ग दिखाय ॥

सत्य ही रूप निरंजन राम हि का है एक।
राम ही छाय रह्यो है एक में ही एक एक ॥

राम हि को एक एक रह्यो बाबा ही एक एक।
आयो आयो आ गयो विन्ध्यमंच पर एक ॥

आके ज्ञान फैलायो राम हि का एक एक।
रामहि के एक रूप में आपु दिखायो एक ॥

रामहि मेरो एक है मैं हूँ राम ही एक।
राम ही में रट रह्यो एक ही एक ही एक ॥

एक ही राम ही राम है मेरे हिय में एक ।
एक ही एक ही श्याम हैं एक ही एक ही एक ।।

राम ही श्याम ही एक हैं एक ही एक ही एक ।
एक ही एक ही एक रह्यो सदा सदा से एक ।।

आयो है विन्ध्यमंच पै देवै को ब्रह्म ज्ञान ।
एक ही में एक एक रह्यो बाबा का एक ध्यान ।।

बाबा ही एक एक रह्यो श्याम ही राम ही एक ।
एक ही एक ही एक में बाबा ज्ञानी है एक ।।

एक ही ज्ञान दे रह्यो विन्ध्यमंच पर एक ।
एक ही एक ही एक में हंस दिखायो एक ।।

हंस ही में आ-आ गयो बाबा एक ही एक ।
एक ही एक ही एक में हंस ही बाबा एक ।।

बाबा तू मेरो दयारो प्यारो ।
हंस ही में तू आयो प्यारो प्यारो ।।
प्यार - प्यार में एक दिखायो ।
एक ही में एक हंस बनायो ।।

हंस ही मेरो प्यारो प्यारो प्यारो ।
वाही प्यार में आयो प्यारो प्यारो ।।
प्यारो में एक बाबा प्यारो ।
प्यारो प्यारो बाबा मेरो प्यारो ।।

आयो आयो आयो बाबा मेरो प्यारो ।
हंस रूप में आयो प्यारो प्यारो ।।

आ आ के एक एक ही में एक ही ध्यान दिखायो है ।
दिखा-दिखा के एक एक में एक ही एक बतायो है ।।

हंस ही राम ही श्याम ही बाबा ।
एक ही एक ही एक में आवा ।।

आप-आप एक ही एक एक गावा ।
गाय गाय एक ही एक पावा ।।

एक ही में एक एक एक बाबा ।
विन्ध्यमंच पै एक ही एक बाबा ।।



एक ही में एक हैं हंस बाबा ।
हंस ही में एक देवरहा बाबा ।।

[सूत्र : 'देवराहा हंस दर्शन' पृ० ७७-८०]

पालकोट का तीर्थाटन : योगिराज और श्री हंसबाबा जी के दिव्य दर्शन

श्री ओम प्रकाश सिंह

मंजुलराज प्रकाशन, पटना द्वारा प्रकाशित 'योगिराज श्री देवराहा बाबा : उपदेशामृत और भक्तों के अनुभव' के खण्ड-४ में पालकोट में पूज्य सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा द्वारा रीछों को भी घी-युक्त खिचड़ी का भण्डारा दिये जाने की घटना पढ़कर मुझे रोमांच होने लगता था और उस पवित्र स्थल का दर्शन करने को तीव्र उत्कंठा होने लगती थी। परन्तु, न तो उस स्थल की भौगोलिक स्थिति की जानकारी मुझे थी और न ही वहाँ पहुँचने का सुयोग ही मिल रहा था। किन्तु जब अमित-विभूति श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज का अवस्थान राँची में हुआ तो सतोर्थ बन्धु श्री विश्वनाथ जायसवाल जी से मुझे ज्ञात हुआ कि कुछ ही दिनों के अनन्तर पूज्य श्री हंस बाबाजी महाराज पालकोट पधारने वाले हैं। तब मेरा मन मयूर नाच उठा कि संभवतः अब मेरे लिये 'एक पंथ दो काज' वाली कहावत चरितार्थ होने वाली है। दो-तीन दिनों के पश्चात् पूज्य श्री महाराज जी का दर्शन करने का कार्यक्रम बनाकर उस स्थल तक पहुँचने सम्बन्धी विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से सतीर्थ बन्धुओं में ज्येष्ठ "पावन प्रसाद" के प्रधान सम्पादक श्रद्धेय ज्ञानेश्वर बाबू के समक्ष मैं उपस्थित हुआ। मैंने अपनी जिज्ञासा उनके सामने प्रकट की परन्तु उन्होंने भी पालकोट जाने के मार्ग के बारे में पूरी जानकारी देने में अपनी अशक्यता जतायी। तथापि उन्होंने इतना अवश्य कहा कि चूँकि प्रत्येक माह के "पावन प्रसाद" की कुछ प्रतियाँ श्री महाराज जी के मंच के लिए वे भेजते रहे हैं और मैं उनके दर्शनार्थ जाने का संकल्प कर ही चुका हूं इसलिए नवम्बर माह के अंक मैं ही लेता जाऊँ। किन्तु उस समय तक उक्त अंक का प्रकाशन नहीं हो पाया था इसलिए एक-दो दिन बाद उन्हें दे सकने की बात उन्होंने कही। 'पावन प्रसाद' की प्रतियाँ मंच की सेवा के निमित्त ले जाना भी गुरु-सेवा का ही एक पुनीत माध्यम समझते हुए मैंने अपना कार्यक्रम बदल दिया। तथा इसी बीच मेरे मन में एक नया भाव भी

उदय हुआ कि चूँकि चार दिन बाद ही दिनांक ३ दिसम्बर को मेरा जन्म दिन पड़ रहा है इसलिए क्यों न ऐसा कार्यक्रम बनाऊँ कि वह दिन भी श्री महाराज जी के सान्निध्य में ही व्यतीत हो! फलत. दिनांक १-१२-'९३ को मैं तीन दिनों के लिए कार्यालय से छुट्टी लेकर संध्या समय सम्पादक जी के समक्ष उपस्थित हुआ।

श्री ज्ञानेश्वर जी जो पूज्य सद्गुरुदेव के प्रति पूर्णत: समर्पित हैं तथा जिनका जीवन श्री बाबा सम्बन्धी उत्कृष्ट साहित्य के सम्पादन एवं प्रकाशन के माध्यम से श्री बाबा की कीर्ति पताका फहराने में दंड का काम करता रहा है, और जो अस्सी से भी अधिक की वर्तमान उम्र में 'पावन प्रसाद' के प्रकाशन का कार्य स्वयं अपनी देख-रेख में कराने हेतु सदैव सन्नद्ध रहते हैं, उक्त अंक के सभी पृष्ठों का मुद्रण उस समय तक भी नहीं करा पाये थे। किंतु चूँकि जन्म-दिन ३ तारीख को पूज्य महाराज जी के सान्निध्य में बिता सकने के लिए मेरा २ तारीख को पटने से प्रस्थान कर जाना अनिवार्य था इसलिए मैंने उस दिन के लिए बस में अपनी सीटें सुरक्षित करा ली थीं और वह ८ बजे रात को खुलने वाली थी। ज्ञानेश्वर बाबू भी काफी व्यग्र थे कि उक्त अंक आज किसी प्रकार तैयार हो जाय और कम-से-कम २०-२५ प्रतियाँ श्री महाराजजी की सेवा में भेज दी जा सकें। मेरे साथ मेरी पत्नी तथा मेरे मित्र श्री राजदेव सिंह जी भी जाने वाले थे और स्थान सभी के लिए सुरक्षित थे। किंतु जब पूज्य बाबा के मंच के लिए 'पावन प्रसाद' की प्रतियाँ लगभग ८ बजे तक भी नहीं तैयार हो सकीं तो अपने सम्बन्धित बस का हवाला देकर बिना उसकी प्रतियाँ प्राप्त किये ही मुझे स्टैन्ड पर आ जाना पड़ा जो मंजुलराज प्रकाशन से लगभग डेढ़ मील दूर है। पत्नी को बस में बैठाकर तथा सामान रखकर मित्र श्री राजदेव सिंह तथा मैं बस के बाहर ही रहकर यह प्रतीक्षा अब करने लगे कि शायद ऐसी भगवत्कृपा हो कि 'पावन प्रसाद' का पैकेट अब भी आ जाय। गाड़ी स्टैण्ड से बाहर निकल चुकी थी परन्तु नियत समय साढ़े आठ के बावजूद करीब सवा नौ बजे तक भी वह नहीं खुल पायी थी। अस्तु, मैं निराश होकर अब स्वयं बस में जा बैठने ही को था कि अचानक 'पावन प्रसाद' कार्यालय के दो कर्मचारी (श्री महेश प्रसाद और श्री शिवशंकर प्रसाद) 'पावन प्रसाद' का पैकेट लेकर मुझे खोजते हुए पहुँच गये। यह देखकर हमें स्वभावत: अत्यन्त प्रसन्नता हुई और उन कर्मचारी द्वय ने भी बड़े

तुष्ट भाव से कहा कि पूज्य बाबा की कृपा से हमारा परिश्रम भी सार्थक हुआ। और इधर मैंने उनके हाथों से 'पावन प्रसाद' का पैकेट लिया कि गाड़ी तत्क्षण खुल गई। ऐसा लगा मानो महाराज जी की कृपा से बस भी 'पावन प्रसाद' की ही प्रतीक्षा कर रही थी।

दूसरे दिन दिनांक ३-१२-'६३ को भगवत्कृपा से हमलोग प्रातः साढ़े छै बजे रांची बस पड़ाव पहुँच गयें। किंतु पालकोट कहाँ अवस्थित है, इसकी जानकारी हमें अब भी नहीं थी। मालूम हुआ कि सामने खड़ी बस राउरकेला तक जाती है। और उसके चालक से पूछने पर पता चला कि वह पालकोट होकर ही जायेगी! स्वभावतः इसे भी हमने भगवत्कृपा-प्रसूत सुयोग माना तथा उसी पर आसीन हो गये। चालक से यह भी पता चला कि रामरेखा धाम उससे आगे यानी सिमडेगा के पास ही है और उसने आश्वस्त किया कि पालकोट में श्री हंस बाबाजी महाराज का पता लगाकर यदि वे वहाँ नहीं होंगे तो उसी बस से हम सिमडेगा के समीप के रामरेखा धाम तक जाकर पूज्य बाबा का सान्निध्य प्राप्त कर सकेंगे। जब करीब पौने बारह बजे पालकोट हम पहुँचे तो बस चालक ने ही पता लगाकर बताया कि वहीं पर राजा पालकोट के किले के पास पूज्य हंस बाबाजी मंचासीन हैं! इस सुखद सूचना से हमारी सारी थकान और अनिश्चितता सद्यःविलुप्त हो गयी।

हमलोग वहीं उतर गये और करीब एक किलोमीटर चलकर पूज्य श्री महाराज जी के दर्शन में उपस्थित हुए। श्री महाराज जी का दर्शन पाते ही हम कृतार्थ हो गये और पूज्यपाद बाबा ने भी असीम वात्सल्य जताते हुए कहा—"तुमलोग मुझे खोजते-खोजते कहाँ जंगल-पहाड़ों में भी चले आते हो! अभी तक तुमलोग कुछ पाये भी नहीं होगे। जाओ, तुरंत स्नान वगैरह करके पुनः वापस आओ, तब मैं प्रसाद दूंगा।" आदेशानुसार, हमलोग शीघ्रातिशीघ्र स्नान, ध्यानोपरांत श्री महाराज जी के सम्मुख पुनः उपस्थित हुए। तब तक तीन बज चुके थे। सर्वप्रथम महाराज जी ने मंच के पास ही बिठाकर हमें ढेर सारा प्रसाद पाने को दिया तथा असीम स्नेहिल बचनों से कुशल-क्षेम पूछते रहे—मानो कोई लौकिक पिता एक लम्बे अन्तराल के बाद अपनी बिछड़ी संतति से मिल रहा हो। इसी बीच राजा साहब के यहाँ से भोजन का बुलावा भी आ गया और इच्छा न रहते हुए भी श्री महाराज जी

के आदेश से हमने जाकर भोजन किया तथा थोड़ा विश्राम कर पुनः श्री महाराज जी के दर्शन में उपस्थित हुए।

वह स्थल बड़ा ही शान्त एवं रमणीक था। पहाड़ी की तलहटी में स्थित राजा पालकोट का पुराना किला तथा उससे सटे एक खुले मैदान में पूज्य महाराज जी का मंच—समग्र दृश्य बड़ा ही आकर्षक लग रहा था। पूज्य महाराज जी ने पास ही अवस्थित पहाड़ी की ओर संकेत करते हुए कहा—"वह छोटा कैलाश है, बच्चा! बड़ा ही सिद्ध स्थल है। इसमें एक-से-एक बड़ी-बड़ी गुफायें हैं, जहाँतक सर्व साधारण की पहुँच नहीं है। समझ लो, हिमालय का ही एक छोटा रूप है यहाँ। कल तुमलोग अवश्य भ्रमण करना किन्तु अधिक ऊँचाई पर या गुफा के अन्दर विशेष दूरी तक मत जाना।"

इस प्रकार अपने जन्म दिन पर श्री महाराज जी के दर्शन एवं सान्निध्य का सुयोग पाकर मैं धन्य-धन्य हो रहा था। आरती के पश्चात् श्री महाराज जी का पुनः आदेश हुआ कि राजा साहब के यहाँ रात्रि का भोजन करने जाओ। चूँकि दिन का भोजन हमने विलम्ब से करीब चार बजे ग्रहण किया था इसलिए मैंने अनिच्छा जाहिर की। फिर भी उन्होंने आदेश दिया कि 'जाओ, टूँगो।' सन्तों की भाषा भी बड़ी रहस्यात्मक होती है– इसका तात्पर्य था धीरे-धीरे भोजन करने का। कहते हैं कि जब छोटा बालक खाना सीखता है तो वह खाता नहीं, बल्कि 'टूँगता' है। हमने अन्ततः श्री महाराज जी के आदेश को शिरोधार्य किया और इच्छा नहीं रहने पर भी भोजन कक्ष में पहुँचे। पर आश्चर्य यह हुआ कि आसन पर बैठते ही भूख इतनी तीव्र हो गई कि हमने अपनी नियमित खुराक से ज्यादा ही भोजन ग्रहण कर लिया और इसे भी श्री महाराज जी की ही अद्‌भुत लीला जाना-माना।

दूसरे दिन दिनांक ४-१२-'९३ को श्री महाराज जी के निर्देशानुसार राजा साहब श्री बाल गोविन्द शाह देव जी ने हमलोगों को पहाड़ी घुमाने के लिए एक पथ प्रदर्शक दिया। सर्वप्रथम हमलोग हनुमान भाण्डा गये जो एक गुफा है। उस गुफा में थोड़ी दूर आगे जाने पर एक अति संकीर्ण रास्ता है जिसे कोई भी व्यक्ति चाहे वह कितना ही कृशकाय क्यों न हो, पार नहीं कर सकता। पथ प्रदर्शक के निर्देशानुसार भगवान श्री राम एवं श्री हनुमान का जयघोष करते हुए तथा शरीर के अंगों को

तीन बार तीन कोणों पर मोड़ते हुए हमलोग अन्ततः उसमें प्रवेश करने में सफल हुए। अन्दर में गुफा का क्षेत्रफल काफी बड़ा था।

यहाँ मैं यह भी बता दूँ कि उक्त पहाड़ की बनावट बड़ी ही विचित्र है। पूरा पहाड़ यूँ लगता है मानो अनेक शिलाओं को किसी कुशल कलाकार ने सजाकर रख दिया हो। सारी शिलायें बिलकुल एक दूसरे से अलग प्रतीत होती हैं—मानो वे अभी ही लुढ़ककर गिरने वाली हों। परन्तु, स्थानीय लोगों का कहना है कि भूकम्प के तेज झटकों में भी आजतक एक पत्थर भी अपने स्थान से नहीं हिल पाया है। जो भी हो, हमलोग हाथों एवं पैरों का सहारा लेकर एक शिला से दूसरी शिला को पार करते हुए गुफा के अन्दर जब बढ़े तो थोड़ी ही दूर पर एक विशाल सिंहासननुमा चबूतरा मिला जिसके बारे में यहाँ के निवासियों का कहना है कि इसी स्थल पर श्री हनुमान जी कपीश्वर श्री सुग्रीव के रक्षार्थ निवास किया करते थे। हमने उस पावन स्थल का नमन किया और आगे बढ़े जहाँ पहाड़ के अन्दर ही अन्दर शीतल जल का एक छोटा झरना भी है। उसका जल शीतल तो था ही, सुस्वादु भी है। उपरान्त हमलोग उसी संकीर्ण रास्ते उसी प्रकार गुफा से बाहर आये और पहाड़ी पर कुछ और ऊपर गये जहाँ शीतलपुर कुण्ड है। उस स्थल की यह विशेषता है कि कोई भी व्यक्ति जो पसीने से सराबोर ही क्यों न हो, उस गुफा में थोड़ी देर बैठने के पश्चात् ठंढक का अनुभव करने लगेगा। गुफा के अन्दर से ही शीतल हवा आती है और शायद इसीलिए उसका नाम शीतलपुर कुण्ड पड़ा हो। उसके बाद थोड़ी और ऊँचाई पर मलमलपुर कुण्ड है। यहाँ भी अन्दर से हल्की-हल्की ठंढी हवा आती है जो बहुत ही सुखद लगती है। चूँकि उससे ऊपर की चढ़ाई अब और दुर्गम थी तथा पथ-प्रदर्शक ने आगे बढ़ना हितकर नहीं समझा, अतः श्री महाराज जी के पूर्व में दिये गये आदेश का स्मरण कर हमलोग वापस लौट आये। परन्तु यात्रा इतनी रोमांचकारक थी तथा दृश्य इतने मनमोहक थे कि जी चाहता था, ऊँचाइयों पर चढ़ते ही चले जायं !

स्थानीय लोग उस सुदर्शन स्थल को पम्पापुर कहते। जनश्रुति यही है कि यह वही स्थल है जहाँ महाबली बालि के भय से सुग्रीव अपने विश्वस्त सेवकों एवं श्री हनुमान के साथ रहा करते थे तथा यहीं

भगवान श्रीराम एवं श्री सुग्रीव का मिलन हुआ था। भौगोलिक दृष्टि-कोण से वस्तुस्थिति जो भी हो, परंतु, पहाड़ की बनावट, अनेकानेक अगम्य गुफाओं की विद्यमानता एवं रीछों की बहुलता—कुल मिला-कर श्रीराम-युगीन पम्पापुर की छवि मानस पटल पर चित्रित अवश्य हो जाती है।

सन्ध्या समय राज परिवार के श्री जितेन्द्र नाथ शाहदेव जी से श्री बड़े महाराज जी के सम्बन्ध के कुछ अविस्मरणीय प्रसंग सुनने को मिले। उन्होंने बताया कि १९५५-५६ में पूज्य सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज का उनके पटना अवस्थान के तुरंत बाद पालकोट में ही मंच लगा था। यद्यपि वह स्थल यहाँ से थोड़ी दूर था, परन्तु पूज्य श्री बाबा ने अपनी अहैतुकी दया की वर्षा करते हुए राजमहल के प्रत्येक स्थल को अपने पावन चरणों से पवित्र किया था। इसी क्रम में उन्होंने यह भी बताया कि पूज्य बड़े महाराज जी यहाँ के वनवासियों को भी असीम प्यार देते थे एवं कहा करते थे कि 'बच्चा, ये सभी योगी ही समझने योग्य हैं, इनकी वेशभूषा, इनका शान्त, सरल एवं निष्कपट जीवन एक योगी के सदृश ही है।' प्रसंग में इतनी रोचकता थी कि मैं उत्सुकतावश एक के बाद दूसरा प्रश्न किये जा रहा था और वे पूज्य श्री बाबा के तत्कालीन अवस्थान के प्रत्यक्ष-दर्शी एवं सेवाव्रती होने के कारण मेरी जिज्ञासा को शान्त कर रहे थे। इसी क्रम में मैंने पूज्य श्री बड़े महाराज जी द्वारा रीछों का भण्डारा कराने का उल्लेख किया और उन्होंने उसकी पुष्टि की।

बाद में जब हमलोग श्री हंस बाबा जी महाराज के सम्मुख उपस्थित हुए तो मैंने उनसे पूर्व के मंच स्थल की परिक्रमा करने की इच्छा व्यक्त की। श्री महाराज जी ने बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में स्वीकृति दी—"अच्छा है बच्चा, बहुत अच्छा है! अवश्य जाना चाहिये, पर जाओगे कैसे? यहाँ से तो वह दूर है। अच्छा, कल सबेरे इन्तजाम हो जायेगा।"

दूसरे दिन प्रातः ज्योंही हमलोग स्नानादि से निवृत्त हुए कि श्री महाराज जी ने आवाज देकर मुझे बुलाया और कहा - "उस स्थल पर जाना नहीं है? समय कम है—जल्दी करो, 'रेंगो'। मैं पीछे से किसी संत को स्थल-परिचय के लिए भेजता हूँ।"

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ—मेरी यात्रा का एक प्रयोजन अपना जन्म दिन भी पूज्य महाराज जी के ही सान्निध्य में मनाने का था—यद्यपि कि इस बात को मैंने उनसे गुप्त ही रखा था। पर वे तो हैं सर्वान्तर्यामी, उनसे कौन-सी बात छिपी रह सकती थी। उन्होंने भी स्पष्टतः तो कुछ कहा नहीं परन्तु, उनके मुखारविन्द से 'ठूंगने' और 'रेंगने' जैसे शब्दों का प्रयोग मेरे लिए सर्वप्रथम किया जाना इस बात का द्योतक था कि चूंकि मैं लौकिक जन्म दिन मनाने के विचार से उनके पास पहुँचा था, इसलिए एक शिशु की तरह 'रेंगना' प्रारम्भ करूँ। ज्ञातव्य है कि छोटा बालक जब चलना सीखता है तो वह चलता नहीं बल्कि 'रेंगता' है और अपना भोज्य भी खाता नहीं 'ठूंगता' है।

योगिराज देवराहा बाबा जी का पावन मंच-स्थल

जो हो, हमलोग यथा-निर्देश अनजान पथ पर जंगलों के बीच भ्रमण करते तथा स्थानीय लोगों से पूछताछ करते हुए पिंजड़ा नदी के तट पर पहुँचे। वह स्थान पालकोट से छः किलोमीटर दूर गुमला जाने के मार्ग में अवस्थित है। नदी में स्नान करते हुए एक वनवासी युवक से पूछने पर पता चला कि वह स्थल पास ही है जहाँ पूज्य सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज कभी मंचासीन रहे थे। वह व्यक्ति पूज्य श्री बाबा का दर्शन तो नहीं कर पाया था पर, उनके बारे में अपने पूर्वजों से सुना अवश्य था। विस्तृत जानकारी के लिए उसने थोड़ी दूरी पर गायों को चरा रहे एक वृद्ध चरवाहे की ओर इशारा किया। उन वृद्ध से पूछने पर उन्होंने पास ही के एक टीले की ओर संकेत करते हुए बताया कि वही वह स्थल है जहाँ पूज्य श्री बाबा विराजमान रहे थे। वृद्ध ने अनेक बार पूज्य श्री बाबा के दर्शन किये थे और प्रसाद पाया था। भाव-विभोर होकर हमलोग उस पावन-स्थल की ओर बढ़ ही रहे थे कि अचानक श्री महाराज जी के अनन्य सेवक श्रद्धेय श्री वायुनन्दन जी दूसरी दिशा से हमलोगों को खोजते हुए पहुँच गये।

पिंजड़ा नदी की दो धारायें आपस में मिलकर संगम का दृश्य उपस्थित करती हैं। संगम पर ही वह पावन टीला है जहाँ भगवत्स्वरूप पूज्य श्री बाबा महीनों मंचासीन रहे थे और अपने असीम स्नेह एवं आशीर्वाद से वनवासियों का दिल जीता था। हम सभी ने उस पवित्र स्थल का साष्टांग दण्डवत् किया एवं परिक्रमा कर कुछ काल तक

रामधुन कहा। परन्तु, उस परम पवित्र स्थल की दुरवस्था देखकर दुख भी हुआ क्योंकि उस पर जँगली घासों ने अपना आधिपत्य कर लिया है और डर है कि लगातार हो रहे मिट्टी के क्षरण से कहीं कुछ वर्षों में वह स्मृति स्थल लुप्त न हो जाय। लौटते वक्त भी मार्ग में मिलने वाले वनवासियों से हमलोग पूज्य श्री बाबा की चर्चा छेड़ दिया करते और वे सभी बड़ी ही श्रद्धा के साथ पूज्य-चरण श्री बाबा की लीलाओं का स्मरण और बखान करते नहीं थकते थे।

जब हम पुनः श्री महाराज जी के पास पहुँचे, तो उन्होंने हमें मंच के पास ही बैठाकर सुमधुर प्रसाद पाने को दिया और हमारी छुट्टी करने लगे। मेरी इच्छा थी एक दिन और वहाँ रुक जाने की—परन्तु, उनका आदेश हुआ—"नहीं बच्चा, कल कार्यालय नहीं छूटना चाहिये।" उस समय अपराह्न के चार बज चुके थे और वहाँ से करीब तीस किलोमीटर दूर गुमला से पाँच बजे ही पटना के लिए बस प्रस्थान करती थी। साथ ही मंच से सड़क की ही दूरी करीब एक किलोमीटर थी और पालकोट से गुमला के लिए बस भी सभी समय लभ्य नहीं थीं। मेरी समझ में बात नहीं आ रही थी कि निर्धारित समय पर पहुँचकर मैं बस कैसे पकड़ पाऊँगा। किन्तु श्री महाराज जी तो पटना के भक्तों के लिए प्रसाद की पोटली बाँधने में तल्लीन थे तथा अपनी परावाणी द्वारा उपदेश भी करते जाते थे—और इधर घड़ी की सूई सवा चार पर पहुँच चुकी थी। मैं सोच रहा था कहीं ऐसा न हो कि यहाँ से छुट्टी भी हो जाय और बस भी नहीं मिले, तो फिर 'न घर का न घाट का' वाली कहावत चरितार्थ हो जायगी। महाराज जी स्वयं भी बार-बार मुझसे समय पूछते और कहते—"बच्चा, यहाँ से जाओगे कैसे ? बस कब खुलती है ? समय बहुत कम है !' मैं यथासम्भव इन प्रश्नों का उत्तर देता जाता था। इसी बीच महाराज जी ने विक्रम नामक एक युवक को बुलाया जो राजा साहब के यहाँ ठहरे हुए थे और जो मध्य प्रदेश के जैसपुर के रहने वाले थे। श्री महाराज जी ने उनसे पूछा—"तुम्हें जैसपुर कब जाना है ?" उनके द्वारा आज और अभी कहने पर श्री महाराज जी ने आदेश दिया कि इन लोगों को भी अपनी गाड़ी में बैठाकर गुमला छोड़ देना। इस प्रकार श्री महाराज जी ने हमलोगों को ढेर सारा प्रसाद तथा चरण स्पर्श देकर विदा किया। उक्त महोदय ने हमें गुमला चौक के पास जब पहुँचाया उस समय सवा पाँच बज चुके थे। पूछने पर

लोगों ने बताया कि पटना वाली बस चूँकि ठीक पाँच बजे प्रस्थान कर जाती है इसलिए उसके अब मिलने की सम्भावना नहीं के बराबर है। और वहाँ से बस पड़ाव भी कोई एक किलोमीटर दूर था। फिर भी हमलोग रिक्शा कर बस पड़ाव गये तथा साढ़े पाँच बजे वहाँ पहुँचे। और अभी रिक्शे पर ही हम थे कि बस खुल गई! तथापि किसी तरह उसे रुकवाया गया। वैसे तो उस पर खड़े होने की भी जगह नहीं थी, किन्तु कोई अन्य विकल्प न देखकर उसी पर हमलोगों को सवार होना पड़ा। तथापि, जब संवाहक को यह सूचना मिली कि हमलोग पटना जायेंगे, उसने आगे की तीन सीट खाली कराकर हमलोगों को दी और हम सानन्द प्रातःकाल पटना पहुँच गये।

इस प्रकार इस यात्रा में यह स्पष्ट बोध हमें हुआ कि इधर से जाने के वक्त तो बस 'पावन प्रसाद' मासिक पत्र की प्रतीक्षा कर रही थी और उधर से आते वक्त श्री महाराज जी द्वारा पटना के भक्तों हेतु प्रदत्त 'पावन प्रसाद' की। यद्यपि कि उस दिन मुझे कार्यालय जाने की इच्छा नहीं थी किन्तु श्री महाराज जी के उस आदेश का स्मरण कर कि कार्यालय नहीं छूटना चाहिये, मैं कार्यालय गया और उसी दिन विभाग के उच्चाधिकारी द्वारा कार्यालय का औचक निरीक्षण किया गया! मैंने मन ही मन श्री महाराज जी की त्रिकालज्ञता पर बार-बार उनका नमन किया।

पूज्य हंस बाबा जी की परा-वाणी

इसी यात्रा क्रम में दिनांक ४-१२-'९३ को पालकोट मंच से पूज्य हंस बाबा जी महाराज ने अपनी परा-वाणी के कुछ अमूल्य सूत्र मुझे लिखवाये जो भक्तों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। यों तो इन वाणियों का सही भावार्थ लिख पाना मुझ जैसे अल्पज्ञों के लिए सर्वथा असम्भव ही है, परन्तु अपनी टूटी-फूटी भाषा में भी जगत्पिता की स्तुति करने का अधिकार तो मुझे भी है ही, अतएव मैं क्षमार्थी हूँ। प्रस्तुत परावाणी के सूत्रों का भावार्थ भी मैंने यथामति देने की जो धृष्टता की है उसके लिए भी पूज्य महाराजजी मुझे कृपया उसी प्रकार क्षमा करें 'ज्यों बालक कह तोतरि बाता, सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता।'

पूज्य-चरण श्री महाराज जी की परा-वाणी में भक्त, भगवान एवं भवखेवनहार (सद्गुरु) के भावों की त्रिवेणी सतत प्रवाहित रहती है। उनके मुखारविन्द से कभी तो पूज्य सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा की वाणी ध्वनित होती है तो कभी लीला-विहारी श्री श्याम सुन्दर की वाणी निःसृत होती है और कभी भक्तों की भावनायें प्रस्फुटित होती हैं। इसी दिव्य आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में निम्नांकित सूत्र भी द्रष्टव्य हैं —

पूर्ण आनन्द ज्ञाने न विद्यतस्य ते तास्तु ज्ञानेन पूर्ण दायक हंस देवराहा ॥१॥

[जो परम पिता परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं तथा जिनके ज्ञान से पूर्णानंद की प्राप्ति होती है, उनका सम्यक् ज्ञान श्री देवराहा हंस बाबा जी से प्राप्त किया जा सकता है।]

तास्तु मान्यो रूपम् प्रिय वदन्ते ते तस्य ज्ञानेन प्रिय रूपेण दायकः हंस देवाराहा ॥२॥

[सन्तों एवं शास्त्रों ने जिस परमात्मा की छवि को अनुपम एव अद्वितीय कहा है, उसके स्वरूप का पूर्ण ज्ञान श्री देवराहा हंस बाबा की वाणी से प्राप्त होता है।]

सर्वत्र तु ते तस्य रूपम् विद्यते सत्येन ज्ञानेन दायकः हंस देवराहा ॥३॥

[जो सभी रूपों में सभी जगह विराजमान हैं, उन परमात्मा का सच्चा ज्ञान श्री देवराहा हंस बाबा से प्राप्त होता है।]

आनन्द ज्ञानेन प्रिय वाक्यम् तिष्ठते ते तास्तु प्रिय रूपम् दायकः हंस देवराहा ॥४॥

[जिस परमानंद की अनुभूति कर सन्तों एवं भक्तों ने विशाल वाङ्‌मय की सर्जना की है, उस परमानंद स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति श्री देवराहा हंस बाबा से होती है।]

तु ते तास्तु वाक्यम् सर्वत्र दृश्यते सर्वत्र ज्ञानेन पूर्ण प्रदायकः हंस देवराहा ॥५॥

[सभी शास्त्रों में जीव मात्र पर जिस ईश्वर की अहैतुकी दया की चर्चा हुई है, उसकी पूर्ण अनुभूति श्री देवराहा हंस बाबा की सन्निधि से प्राप्त होती है।]

एतद्धि सर्व रूपेण प्रिय वदन्ते ते तास्तु नान्यो ज्ञानेन प्रिय रूपेण प्रवन्ते तास्तु रूपम् दायकः हंस देवराहा ।।६।।

[शास्त्रों के मतानुसार जो सर्वरूप हैं तथा जिनके सम्यक् ज्ञान के बिना उनके स्वरूप का दर्शन नहीं हो सकता, उस ज्ञान की प्राप्ति श्री देवराहा हंस बाबा से होती है ।]

प्रिय वाक्यम् ते तास्तु नान्यो ज्ञानम् प्रिय वदन्ते सर्वत्र तिष्ठते हंस देवराहा ।।७।।

[शास्त्रों के मतानुसार जो सर्वत्र विराजमान है तथा जिसके सम्यक् ज्ञान के पश्चात् और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता, उस ज्ञान की प्रतिमूर्ति श्री देवराहा हंस बाबा हैं ।]

आनन्द वाक्यम् पूर्ण रूपम् परिवर्तत ते तास्तु नान्यो ज्ञानेन पूर्ण प्रदायकः हंस देवराहा ।।८।।

[जो परमात्मा भक्तों को आह्लादित करने हेतु भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न स्वरूपों में प्रकट होता हैं (जैसी कि शास्त्रों में विशद चर्चा हुई है), उसका पूर्ण ज्ञान श्री देवराहा हंस बाबा से ही प्राप्त हो सकता है ।]

प्रिय वाक्यम् तेन रूपम् तिष्ठते तास्तु नान्यो ज्ञानेन प्रिय द्रवन्ते प्रिय रूपम् हंस देवराहा ।।९।।

[सभी धर्म शास्त्रों में जिनका निरूपण किया गया है तथा पूर्ण ज्ञान के बिना जिनकी आकृति दृष्टिगोचर नहीं होती है, वह प्रिय स्वरूप श्री देवराहा हंस बाबा ही हैं ।]

आनन्द द्रवन्ते वेन ज्ञानेन गच्छते तास्तु प्रिय रूपेण द्रवन्ते तास्तु आनन्द दाता हंस देवराहा ।।१०।।

[जिनके समीप आते ही अलौकिक छवि दृष्टिगोचर हो तथा आनन्द विकीर्ण होने लगे, वह आनन्दकंद श्री देवराहा हंस बाबा ही हैं ।]

सर्वत्र तु ते तास्तु वाक्यम् प्रिय वदन्ते सत्येम रूपेण दृष्टवा हंस देवराहा ।।११।।

[सभी धर्मशास्त्रों में जिन परम विभु का सर्वत्र वर्णन किया गया है, उनके सत्य स्वरूप का सच्चा ज्ञान श्री देवराहा हंस बाबा को है।]

आनन्द ज्ञानेन तेन रूपम् तिष्ठते प्रिय वाक्यम् दायक हंस देवराहा ॥१२॥

[श्री देवराहा हंस बाबा की प्रिय परा-वाणी में सच्चिदानंद घन परमात्मा सदैव प्रतिष्ठित रहते हैं ।]

सर्वत्र तु ते तास्तु प्रिय वाक्यम् दयन्ते तेन रूपम् तिष्ठते सर्वत्र विद्यते हंस देवराहा ॥१३॥

[जिनकी प्रिय वाणी में सभी के लिए सभी समय दया की वर्षा होती रहती है तथा जो आत्म-स्वरूप में सभी जगह विराजमान हैं, वह श्री देवराहा हंस बाबा में मुखर है ।]

आनन्द प्रिय वाक्यम् ते तास्तु वाक्यम् विद्यते पूर्ण विधाने गच्छते तास्तु रूपम् हंस देवराहा ॥१४॥

[जिस शब्द ब्रह्म के नाद से सम्पूर्ण सृष्टि की रचना हुई, वही शब्द ब्रह्म श्री देवराहा हंस बाबा की प्रिय एवं आनन्ददायक वाणी में प्रस्फुटित है ।]

सर्वत्र तु ते तस्य ज्ञानेन प्रिय दायकः सर्वत्र शान्ति रूपेण दयन्ते ते सर्वत्र प्रिय वाक्यम् तिष्ठते हंस देवराहा ॥१५॥

[जो सर्व व्यापक है तथा जिसके ज्ञान से आनन्द एवं शान्ति की प्राप्ति होती है – जैसा कि सभी संतों एवं शास्त्रों ने एकमत से कहा है--वह परमात्मा श्री देवराहा हंस बाबा में सदा ही प्रतिष्ठित है ।]

आनन्द देवः प्रिय रूपम् तिष्ठते ते तास्तु वाक्यम् दयन्ते हंस देवराहा ॥१६॥

[जिनका प्रिय स्वरूप देवताओं को भी आनन्दित करने वाला है तथा जिनकी वाणी में सभी जीवों के लिए दया झलकती है, वह श्री देवराहा हंस बाबा ही हैं ।]

आनन्द प्रिय दृष्टान्ते तेन रूपेण गच्छते तास्तु प्रिय रूपम् दृष्टा हस देवराहा ॥१७॥

[श्री देवराहा हस बाबा के दर्शन में उस सगुण साकार ब्रह्म की अनुभूति होती है जो निराकार रूप में लौकिक चक्षुओं से ओझल है ।]

ते तास्तु प्रिय वाक्यम् सत्येन तिष्ठते प्रिय ज्ञानेन दायकः हंस देवराहा ॥१८॥

[जिनकी प्रिय वाणी में सदैव वही सत् तत्त्व उद्भूत है जिससे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है, वही श्री देवराहा हंस बाबा हैं ।]

सत्येन प्रिय ज्ञानेन वर्तंत सत्यम् प्रिय वाक्यम् दृष्टवा हंस देवराहा ॥१९॥

[सत् शास्त्रों में जिस ज्ञान-स्वरूप तथा सत्-स्वरूप सत् तत्व का निरूपण किया गया है, उसके प्रत्यक्षदर्शी श्री देवराहा हंस बाबा ही हैं।]

आनन्द पूर्ण रूपम् तिष्ठते ते तास्तु प्रिय रूपम् तिष्ठते हंस देवराहा ॥२०॥

[सच्चिदानंद घन परमात्मा जो सर्वदा एक रस हैं, वह ही श्री देवराहा हंस बाबा के प्रिय स्वरूप में साकार हो गये हैं।]

आनन्द पूर्ण ज्ञानेन सर्वत्र शान्ति रूपम् दायकः हंस देवराहा ॥२१॥

[जो आनन्द एवं ज्ञान से परिपूर्ण हैं तथा जिनके स्वरूप के दर्शन से परम शान्ति की प्राप्ति होती है, वह श्री देवराहा हंस बाबा ही हैं।]

परावाणी—२

हिन्दी में परावाणी के कुछ निम्नलिखित सूत्र नितांत पठनीय एवं मननीय हैं जिनमें भक्तों के भाव प्रस्फुटित हो रहे हैं।

अब तो अब तो देख के, देखा मैंने एक।
एक ही देखा एक ही, वह ही बाबा एक ॥१॥

वही हैं बाबा वही हैं बाबा, वही हैं बाबा बाबा।
है बाबा है बाबा बाबा, देवराहा मेरा बाबा ॥२॥

बैठ बैठ के एक ही हंस में हंस ही में है बाबा।
वही है मेरा प्यारा बाबा, देवराहा एक बाबा ॥३॥

बोल बोल के बोला है, वही है मेरा बाबा।
प्यारा बाबा प्यारा बाबा, देवराहा मेरा बाबा ॥४॥

पालकोट के मंच पर, बैठा मेरा बाबा।
वही वही हैं मेरा बाबा, देवराहा प्यारा बाबा ॥५॥

बोल के बोला बोला बोला, हंस ही में से बाबा।
बाबा मेरा बाबा मेरा, है एक देवराहा बाबा ॥६॥

मान के माना मैंने माना, हंस ही में एक बाबा।
वही वही है एक ही बाबा, देवराहा एक बाबा ॥७॥

बाबा बाबा तू बाबा है, मेरा प्यारा बाबा ।
वही वही तू है मेरा, देवराहा एक बाबा ।।८।।

बोला बोला तू बोला है, मेरा प्यारा बाबा ।
वही वही तू एक ही है, देवराहा मेरा बाबा ।।९।।

आया आया तू आया है, हंस ही में तू बाबा ।
वही वही तु मेरा है, देवराहाप्यारा बाबा ।।१०।।

बाबा बाबा बाबा है तू है बाबा बाबा ।
वही वही तू एक ही है, देवराहा प्यारा बाबा ।।११।।

अब तू अब तू अब तू है, हंस ही में बाबा ।
तू ही तू ही तू ही है, देवराहा मेरा बाबा ।।१२।।

तू तू है बाबा तू बाबा है, तू बाबा है बाबा ।
वही वही है तू बाबा है, देवराहा मेरा बाबा ।।१३।।

अब तो आया अब तो आया, हंस ही में अब बाबा ।
तू ही दादा तू ही बाबा, देवराहा है है बाबा ।।१४।।

कैसे मनाऊँ कैसे गाऊँ, मैं तुझको अब बाबा ।
मेरा मेरा बन जा तू, देवराहा मेरा बाबा ।।१५।।

आता तू है आता तू है, तू आता है बाबा ।
बनके एक ही तू आता है, देवराहा एक बाबा ।।१६।।

अब तू आया एक ही आया, बनके एक ही बाबा ।
हंसहि में तू एक ही है, मेरा प्यारा बाबा ।।१७।।

प्यारा बाबा प्यारा बाबा, है तू देवराहा बाबा ।
वही वही तू बोल रहा है, हंस ही में तू बाबा ।।१८।।

मंच बना है पालकोट में, तेरा सुन्दर बाबा ।
वहीं पे तू बोल के बोला, हंस ही में तू बाबा ।।१९।।

तेरा ज्ञान कैसा है, नित्य निरंजन एक ।
एक ही दे रहा है, हंसहि में से एक ।।२०।।

हस ही में तू बैठ के बैठा, एक ही बैठा एक ।
एक ही है एक ही है तू, देवराहा बाबा एक ।।२१।।

गाऊँ गाऊँ मैं गाऊँ अब, गाऊँ गाऊँ मैं ।
तेरा गाऊँ गुण को गाऊँ, मैं गाऊँ मैं मैं ।।२२।।

तू ने कैसा राच रचाया, वन के श्याम ही में ।
कैसा कैसा रूप देखाया, हंस ही तन में ।।२३।।

बना हुआ है कैसा तू, श्याम में ही तन में ।
तू है तू है तू है तू है, हंस ही तन में ।।२४।।

बोल के बोला तू बोला, मधुरी वाणी में ।
रखि रखि रखा है तू, श्याम ही तन में ।।२५।।

तब तेरो है एक एकहि, हंस ही तन में ।
हंसहि तन ही वनो भयो है, श्याम हो तन में ।।२६।।

रह के रह के रहे रह्योहैं, श्याम ही तेरो एक ।
एक ही श्याम हो तेरा हैं, हंस ही तन में एक ।।२७।।

बोल के वोले वोले बोले, श्याम ही तेरे एक ।
श्याम ही तेरो एक वने हैं, हंस ही में एक ।।२८।।

आ जइयो तू आ जइयो तू, आ जइयो तू एक ।
बन के तू तू आ जइयो तू, श्याम में बाबा एक ।।२९।।

नटराज बनके तू देखइयो, अपनो रास एक ।
जाही को ही कृष्ण ने, रास रचायो एक ।।३०।।

वही वही तू रूप में, श्याम ही बनियो एक ।
श्याम ही वन के एक ही, हंस ही में एक ।।३१।।

मेरी धारणा है कि उपर्युक्त परा-वाणी के सूत्र संख्या २१ से ३१ तक में मेरे साथ विन्ध्याचल आश्रम पर घटी घटना का ही प्राकट्य हैं जो 'पावन प्रसाद' के नवम्बर १९९३ अंक में 'श्री देवराहा हंस बाबा जी का असीम करुणा-वितान' शीर्षक के अन्तर्गत पृष्ठ २३ एवं २४ पर प्रकाशित हुआ है।

श्री सद्गुरुदेव के चरण कमलों में सादर समर्पित।



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', जनवरी १९९४]

'पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न सन्ता'

★ श्री प्रेम प्रकाश

पुण्य पुंज के साथ भगवत्कृपा होने पर ही सन्तों का सान्निध्य अर्थात् सत्संग प्राप्त होता है।

मैं 'पावन प्रसाद' आध्यात्मिक मासिक कभी-कभी अपने पिताश्री से लेकर पढ़ लिया करता था। धीरे-धीरे रुचि अध्यात्म की ओर बढ़ती गयी, ब्रह्मर्षि योगिराज श्री देवराहा बाबाजी महाराज के पावन दर्शन के लिये उत्सुकता लगी तथा देवरिया सरयू-तट आश्रम पर और वाराणसी में भी दर्शन किया। दीक्षा लेने की भावना बनी रहती थी, परन्तु बाबा का आदेश नहीं मिल रहा था।

पूज्य बाबा के दर्शनार्थ दिनांक १३-१०-१९८९ को हमने अपने अग्रजों के साथ वृन्दावन के लिये प्रस्थान किया। उसके दूसरे दिन शरद-पूर्णिमा को छः बजे सायं हम वृन्दावन पहुँचे। उस दिन वहाँ भगवान श्री कृष्णजी एवं राधाजी के दर्शन का विशेष माहात्म्य था। सभी मन्दिरों में श्री राधा-कृष्ण की झाँकी और अर्चा-पूजा का क्रम चल रहा था।

सद्गुरु योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज के दर्शनार्थ दिनांक १५-१०-१९८९ को सवेरे यमुनाजी में स्नानोपरांत हम नाव से उनके आश्रम पर गये। मंच के पास घेरे के अन्दर आये दर्शनार्थी नाम-कीर्तन कर रहे थे और उसमें हमलोग भी सम्मिलित हो गये। बाबा एकाएक मंच पर प्रकट हुए और भजन-कीर्तन जारी रहा। प्रसाद-वितरण के बाद सभी भक्तगण को जाने का आदेश हुआ। हमलोग भी चलने को उद्यत ही थे कि पूज्य महाराजजी की आज्ञा हुई कि पटना से जो लोग आये हैं वे रुक जायँ। तदनुसार हमारे परिवार के पाँचों सदस्य घेरे के अन्दर ही रुक गये। इस प्रकार गुरुदेव की असीम दया की वर्षा हमलोगों पर हुई।

करुणामय श्री बाबा से श्री राम-मंत्र की दीक्षा मुझे उस दिन मिल गयी। आशीर्वाद की मुद्रा में पूज्य बाबा ने कहा—'बच्चा, दया है, असीम दया है।' तदुपरान्त हम सभी श्री चरणों में प्रणाम निवेदित कर वापस वृन्दावन आ गये। और तीसरे दिन ब्रजभूमि की यात्रा के उपरान्त हम पटना लौटे।

बाद में १९ जून, १९९० को योगिनी एकादशी के पावन दिन वृन्दावन धाम में ही महान योगी, सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी महराज ब्रह्मलीन हो गये। समाचार पढ़कर हम सभी स्तम्भित हो गये तथा बहुत समय तक अनाथ की-सी स्थिति बनी रही। धीरे-धीरे शान्ति मिली—'पावन प्रसाद' पढ़ते-पढ़ते। सम्पादक श्री ज्ञानेश्वर जी को मैं उच्च कोटि का सन्त मानता हूँ; उन्होंने 'पावन प्रसाद' द्वारा बाबा की वाणी के प्रचार-प्रसार का क्रम अबाध जारी रखा है। उसके अंक जब डाक से आते हैं तो आशीर्वादी मुद्रा में बाबा का चित्र देखकर नतमस्तक होकर प्रसाद ग्रहण करता हूँ और आध्यात्मिक शक्ति का जागरण अनुभव करसा हूँ।

'पावन प्रसाद' के अंकों में इधर विन्ध्याचल-स्थित सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी महराज के स्वर्गाश्रम का वर्णन आता रहा है। मुझे अपने पिताश्री के साथ २०-११-१९९२ को विन्ध्याचल आश्रम जाने का सौभाग्य मिला था। विन्ध्याचल में गंगाजी में स्नान कर देवी के दर्शनोपरान्त हम स्वर्गाश्रम सुबह ७ बजे पहुँचे थे।

आश्रम लगभग ६०० एकड़ भूमि मे है तथा चारों ओर विन्ध्य पर्वत माला से घिरी घाटी में है। मुख्य द्वार के निकट श्री राम, लक्ष्मण, सीताजी की तथा श्री राधा-कृष्ण की मूर्तियाँ है। प्राण-प्रतिष्ठा संभवतः बड़े महाराज जी (योगिराज श्री देवराहा बाबा जी) ने मार्च १९८९ में प्रयाग के कुम्भ से आकर की थी। रास्ते में गोशाला है एवं एक भव्य तालाब भी है जिसे संभवतः बड़े महाराज जी ने ही जीव जन्तुओं के जल पीने के लिये खुदवाया था।

मंच के नजदीक हमलोग पहुँचे और नमन-दण्डवत् निवेदित किया। मंच के नजदीक भी श्री राधा-कृष्ण जी एवं श्री हनुमान जी की प्रतिमाएँ हैं। स्नान कुंड भी नजदीक में है जो बड़ महाराज जी के स्नान के लिए ही विशेष रूप से निर्मित हुआ था।

कुछ समय के बाद श्री देवराहा हंस बाबा जी मंच पर आसीन हुए। उन्होंने नाम-पता जानने के बाद जब आने का विशेष प्रयोजन पूछा तो हमलोगों ने बताया कि दर्शन और दया के लिये आये हैं।

यह बहुत ही बड़े सुयोग की बात थी कि एकादशी के दिन श्री गुरु महाराज के दिव्य विशाल मंच पर श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज का पावन दर्शन हमें हुआ। श्री हंस बाबा साक्षात् बड़े महाराज जी की प्रतिमूर्ति लग रहे थे।

अवधी भाषा में उस स्थान की तथा राधा-कृष्ण जी की महिमा का एवं उस स्थान की रास लीला का वर्णन करते-करते पूज्य बाबा भाव-विभोर हो जाते थे।

बाबा ने प्रसाद-स्वरूप केला, सेव और दूध का मटका दिया और उन्होंने कहा—'बच्चा आज एकादशी है, स्नान कुंड के समीप जाकर प्रसाद ग्रहण करो।

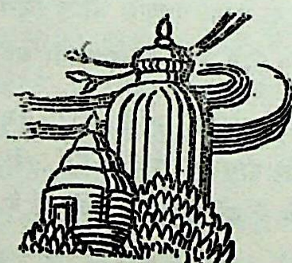
संध्या हो चली थी ; श्री बाबा ने 'प्रसाद' की एक गठरी हमारे सर पर देकर कहा—"देखो बच्चा प्रेम प्रकाश , चिन्ता की गठरी यहीं छोड़कर जाओ—असीम दया है, कल्याण है।"

इस प्रकार आदेश पाकर हमलोग पटना लौटने के लिये विन्ध्याचल स्टेशन के लिए चल पड़े।

हमारी यह दृढ़ धारणा अब बनी है कि विन्ध्याचल-स्थित स्वर्गाश्रम ही पूज्य ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा के भक्तों का परम पावन तीर्थ स्थल अब है।

सद्गुरु श्री देवराहा बाबा जी महाराज की जय !

श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज की जय !



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', जनवरी १९९४]

विंध्याचल स्वर्गाश्रम पर बाल-रूप श्रीकृष्ण का दर्शन

★ श्री श्रीराम दूबे

मैं २१ अगस्त, १९९२ को अपने परम प्रिय गुरु भाई एवं मित्र श्री मनिक राज सिंह के साथ श्री हंस बाबा जी महाराज के दर्शनार्थ विन्ध्याचल-स्थित स्वर्गाश्रम (योगिराज देवराहा बाबा आश्रम) गया था।

वहाँ हम दोनों चार दिनों तक महात्मा हंस बाबा जी के चरण-कमल का दर्शन करते रहे और इस बीच हमलोगों पर श्री बाबा की कृपा-वृष्टि होती रही। और अन्ततः जब हम दोनों को पूज्य बाबा ने घर जाने की अनुमति प्रदान की तथा बाबा से विदा लेने के लिए दर्शनार्थ उनके पावन मंच के नीचे हम उपस्थित हुए तो उन्होंने हमें विपुल प्रसाद देकर आशीर्वचन देते हुए हमारी छुट्टी कर दी। किन्तु हम दोनों गुरु भाई अभी दो-चार कदम ही चले थे कि श्री हंस बाबा जी के मुखश्री से अकस्मात् निकला—'बच्चा श्रीराम, मैं तुझे दर्शन दूँगा।' तब तक हमारे मित्र श्री मनिक राज सिंह ने—(जो दो कदम मुझ से आगे निकल गये थे)—पीछे घूमकर पूज्य बाबा को प्रणाम करते हुए निवेदन किया—'महाराज, क्या मैं ही सबसे बड़ा अभागा हूँ!'

तब बाबा ने कुछ मुस्कराते हुए उनसे कहा—'बच्चा, तुझे भी दर्शन दूँगा।'
तब उसी क्षण हम लोगों की आखें एक साँवले-सलोने लगभग दस वर्षीय बालक पर पड़ी जो धीरे-धीरे आकर बाबा के मंच के सन्निकट खड़ा हो गया था। उस बालक के मुख-मण्डल पर एक अनोखा आकर्षण एवं तेज था। हम दोनों व्यक्ति अपलक नेत्रों से उसे दो मिनट तक निहारते रहे।

तत्पश्चात् मनिक राज सिंह की तरफ देखते हुए मेरे मुख से अनायास निकल पड़ा कि यह तो साक्षात्...।

तब उसके अति मनोरम छवि को देखकर सम्मोहित होते हुए-से श्री मनिक राज सिंह ने उस बालक से पूछा—'क्या-तुम कृष्ण हो?' उस बालक ने उत्तर दिया—'हाँ।'

बालक के उस उत्तर को सुनकर कुछ विस्मित हुए-से श्री मनिक राज सिंह ने पुनः उस बालक से पूछा—'क्या सचमुच कृष्ण ही हो तुम ?' पुनः अति गम्भीर भाव से उसने उत्तर दिया—'हाँ' ! मेरे मित्र ने तब पूछा – 'क्या काम है ?'

उसने कुछ ठिठकते हुए उत्तर दिया—'मेरे पिताजी ने खेत में काम किया था, बाबा से पैसा लेना है।'

श्री मनिक राज सिंह ने पुनः पूछा—'कितना।'

उत्तर मिला—'सौ रुपये'।

इतने प्रश्नोत्तर के बाद हमलोग उस बाल-रूप की गम्भीरता, शालीनता एवं माधुर्य की चर्चा करते हुए आश्रम से रवाना हुए। लेकिन घर आने के बाद भी रह-रहकर जब हम दोनों व्यक्ति आपस में मिलते थे तो उस बालक के मनोहारी स्वरूप की चर्चा हो जाया करती थी। हम दोनों व्यक्ति एक-दूसरे से मात्र ४ किलोमीटर की दूरी पर हैं।

इसके कुछ बाद श्री मनिक राज सिंह दुबारा श्री हंस बाबा जी के दर्शनार्थ विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम पर सपरिवार पधारे। इस बार श्री मनिक राज सिंह ने उस बालक की बात को गम्भीरता से लेते हुए पूज्य हंस बाबा से हाथ जोड़ते हुए विनम्रता पूर्वक पूछा—'सरकार मेरे मन में एक उथल-पुथल बनी हुई है कि पहली बार जो बालक हम लोगों के प्रस्थान के समय अकस्मात् उपस्थित हो गया था, वह क्या वास्तव में श्री कृष्ण ही बाल-रूप में थे।'

पूज्य बाबा ने तब उत्तर दिया—'तु ठीक समझता है, वह वही (कृष्ण) थे।'

पूज्य बाबा से प्राप्त इस सम्पुष्टि की बात मेरे मित्र ने दुबारा आश्रम से लौटने के बाद मुझे बतायी। फलतः अब मैं भी उस अति सुदर्शन बालक को ईश्वराकृति में ही देखता हूँ और अपने को कृतकृत्य हुआ मानता हूँ ! *

---

* इस लेख को 'पा० प्र०' के नवम्बर '९३ अंक में श्री ओम प्रकाश सिंह के निबन्ध के अंतिम प्रकरण में वर्णित घटना के संदर्भ में पढ़ना उत्तम होता।

—(सम्पादक)

(सूत्र : 'पा० प्र०' जनवरी, १९९३)

योगिराज देवराहा बाबा और श्री हंस बाबा जी का अभेद

श्री ओम प्रकाश सिंह

विगत ११ और १२ सितम्बर, १९९३ को मैं विन्ध्याचल अमरावती रोड स्थित श्री देवराहा बाबा स्वर्गाश्रम पर अमित-विभूति श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज के दर्शनों में उपस्थित था। मंचासीन दिव्य-रूप श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज अपनी अहेतुकी दया की वर्षा कर रहे थे। उनके मुखारविन्द से ब्रह्मवाणी की अजस्र धारा निःसृत हो रही थी जिसमें अवगाहन कर तन-मन को अपूर्व विश्राम मिल रहा था तथा उनके स्वरूप में बार-बार पूज्य सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा महाराज की छवि दृष्टिगोचर हो रही थी।

पूज्य हंस बाबा की वृत्तियाँ अपने सद्गुरु श्री देवराहा बाबा जी से तदाकार हो चुकी हैं। उन्होंने अपने स्व को अपने गुरुदेव में पूर्णतः विलीन कर दिया है और वे स्वयं श्री देवराहा बाबा-स्वरूप हो चुके हैं। वस्तुतः गुरु-तत्त्व एक ही है और वह चिरन्तन एवं शाश्वत है। दिनांक १२ सितम्बर को श्री महाराज जी ने अपनी परा-वाणी के कुछ अमूल्य सूत्र मुझे लिखवाये तथा 'पावन प्रसाद' में प्रकाशनार्थ भेजने का आदेश दिया। तदनुसार परा-वाणी के सूत्र, जो सरल एवं ज्ञेय हैं, यथा-स्वरूप प्रस्तुत कर रहा हूँ।

निम्नांकित सूत्र संख्या १ से ३१ द्वारा स्पष्ट परिलक्षित होगा कि अकाय योगिराज श्री देवराहा बाबा से भिन्न उनका अपना कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है तथा सूत्र संख्या ३२ से ४४ में उनके मुखारविन्द से स्वयं श्री देवराहा बाबा के उनमें प्राकट्य की उद्घोषणा है। आशा है, पाठक वृंद इस परा-वाणी का भरपूर लाभ उठायेंगे एवं पूज्य सद्गुरुदेव श्री देवराहा बाबा जी महाराज के कोटि-कोटि भक्त अपने को निराश्रित नहीं समझकर श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज का दर्शन कर गुरु सान्निध्य एवं मार्ग-दर्शन का परम सौभाग्य प्राप्त करेंगे।

तू-तू एक ही तू रहा, तू मेरा एक-एक।
बनके तू एक-एक का, हो गया तू भी एक।१।

आने में तू आ गया, मेरा तू ही एक।
एक-एक से तू हुआ, मेरा ही एक-एक।२।

एक-एक में रम रहा, तू तो है एक-एक।
एक-एक से तू हुआ, रम के एक ही एक।३।

मेरा बनके तू हुआ, निज में ही एक-एक।
तू आने में आ गया, तू ही है एक-एक।४।

तू तो आता है सदा, एक ही एक ही एक।
एक-एक से एक से, तू तो हुआ है एक।५।

पाते-पाते तू रहा, निज में एक ही एक।
तू आया है एक तू, एक-एक तू एक।६।

आने में तू आ रहा, बन के तू ही एक।
एक तू आता रह गया, मेरा बाबा एक।७।

एक-एक में तू रहा, तू-तू है एक-एक।
एक-एक से तू हुआ, हंसहि में तू एक।८।

जाना यह एक-एक से, तू ही है एक-एक।
आया भी तो एक है, तुम से ही एक-एक।९।

एक में तू तो है वही, तू ही एक ही एक।
एक में तू तो हो गया, मेरा ही एक-एक।१०।

जाते-जाते तू मेरा, होके तू ही एक।
एक में तू तो रह रहा, तू ही एक ही एक।११।

आ के तू गाया रहा, तू ही है एक-एक।
एक-एक में तू गया, है भी तू एक-एक।१२।

गाना सीखो एक से, एकहि में एक-एक।
पाके एक ही एक को, सीखो एक ही एक।१३।

हो के एक ही एक से, होना है एक-एक।
एक-एक में एक से, है एकहि एक-एक।१४।

पाऊँ-पाऊँ पा गया, एक ही पाऊँ एक।
एक-एक ने पाय के, तुझको पाऊँ एक।१५।

जाऊँ जाऊँ एक से, तेरा-मेरा एक।
एकहि में मैं आ गया, मेरा-तेरा एक।१६।
बाबा-बाबा तू ही बाबा, तू तो एक ही बाबा।
तू ही हंस ही बाबा, तू तो एक ही बाबा।१७।
वही-वही तू वही-वही है, तू हीं ऐकहिं एक।
रहता तू-तू कहता तू-तू, तू ही तू है एक।१८।
तू ही बाबा मेरा बाबा, बैठ के बैठा एकहि तू।
एक ही बैठा एक बैठता, तू तो एकहि तू।१९।
तू बाबा है, तू बाबा है, मेरा बाबा तू।
मेरा बाबा तू ही तू है, तू तो ऐक ही तू।२०।
रहने में रहता हम में रहता, तू तू बाबा तू।
वही वही देवराहा बाबा, तू ही है तू-तू।२१।
तू है एक ही तू है एक, एक-एक तू बाबा एक।
एक हैं बाबा तू ही एक, हंसहि में हैं बाबा एक।२२।
बाबा तू ही, है तू एक, वही है तू-तो बाबा एक।
बैठ के तू ही बोल रहा है, तू ही तू है एक ही एक।२३।
बैठ के ऊपर आया है तू, एक ही तू है एक ही एक।
हिमगिरि से तू बन के आया, हंसहि में तू एक ही एक।२४।
एक ही तू तो है तू मेरा, मेरा तू है बाबा एक।
वही वही तू है एक बाबा, श्री देवराहा बाबा एक।२५।
है तू है तू वही वही तू, मेरा बाबा एक।
सत्य ही तू है सत्य ही तू है, हंसहि में तू ऐक।२६।
बाबा तू ही, तू ही बादा, तू बाबा है एक।
एक हैं बाबा तू है बाबा, श्री देवराहा बाता एक।२७।
तू ही तू ही एक ही तू है, हंसहि में तू एक।
है तू मेरा बाबा मेरा, श्री देवराहा बाबा एक।२८।
बोल-बोल के है तू बोला, तू बोला है एक।
एक ही बोला तू है बोला, हंस ही में तू एक।२९।
एक एक ही, है तू, तू है, मेरा बाबा एक।
एक ही होके तू बैठा है, हंस ही में तू एक।३०।

तू ही तू है, तू ही तू है, तू है मेरा बाबा तू।
तू है एक ही, है तू एक ही, हंसहि में है तू।३१।

आके देखो तुम-तुम आके, तुम देखो बाबा को एक।
वही वही तुम देख के देखो, एक ही बाबा एक।३२।

है बाबा ही, बाबा तेरे, बाबा एक ही एक।
वही हैं बैठे, प्रेम से बैठे, हंस में होके एक।३३।

अब तुम आओ, प्रेम से गाओ, देख के एक ही एक।
बाबा को देखो, प्रेम से देखो, वही वही हैं एक।३४।

एक ही एक ही, वही हैं एक ही, हैं बाबा देवराहा एक।
हैं बाबा ही, एक ही बाबा, हैं बाबा देवराहा एक।३५।

कैसे कैसे बोल रहे हैं, एक ही हो के एक।
कहके कहके कहते रहे हैं, हंस में मैं हूँ एक।३६।

मैं हूँ मैं हूँ वही वही हूँ, तेरे बाबा एक।
बैठ के पहले बैठे थे, मंच पर एक ही एक।३७।

एक ही हो के फिर हूँ आया, मंच पर एक ही एक।
एक-एक ही कहता रहा है, मैं हूँ हंस में एक।३९।

एक ही हो के अब तुम मानो, मेरा मानो एक।
मैं हूँ, मैं हूँ, मैं ही मैं हूँ, हंसहि में हूँ एक।४०।

एक ही एक ही, एक ही हूँ मैं, वही हूँ एक ही एक।
वही-वही हूँ, वही-वही हूँ, तेरे बाबा एक।४१।

हूँ मैं एक ही, सत्य ही हूँ मैं, हंसहि में हूँ एक।
वही वही मैं बोल रहा हूँ, हंस में होके एक।४२।

अब तुम आओ प्रेम से आओ, मिलके होके एक।
एक ही होके अब तुम पाओ, हंस में मुझको एक।४३।

बाबा आया बाबा आया, मेरा बाबा था जो एक।
बनके आया वही जो आया, हंसहि में एक-एक।४४।

॥ श्री सद्गुरुदेव भगवान् की जय ॥



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', सितम्बर १९९३]

'सोहं-सोहं' करते करते जप 'हंसो' हो जाता है

गोपाल भारतीय

इह-पर दोनों सुख मिलते हैं, बाबा के आशीष पर ।
रहे छत्र-सा वरद हस्त वह, सदा हमारे शीश पर ।।

सोहं-सोहं करते-करते, जप "हंसो" हो जाता है ।
गुरु सत्ता तद्रूप बना, शिष्यत्व सफलता पाता है ।
साध्य में साधक विलय यही अभिलषित सुसाधक द्वारा है ।
लघु-विभु परम विसर्जन, परिवर्तन की अन्तिम धारा है ।।१।।

पाते सत्परिणाम भरोसा जो रखते गुरु-ईश पर ।
इह-पर दोनों सुख मिलते हैं बाबा के आशीष पर ।।

वही देवराहा बाबा हैं गुरुमय 'हंस देवराहा' ।
तन मन प्राण एकमय होकर, परिलिक्षित होते आहा ।
देवरिया का विन्ध्याचल में यह परिवर्तन न्यारा है ।
जहाँ भगवती दुर्गा का करुणामय अंचल प्यारा है ।।२।।

वहाँ भक्त न्योछावर होते, परम हंस वागीश पर ।
इह-पर दोनों सुख मिलते हैं बाबा के आशीष पर ।।

भोजन और भजन दोनों का मेल जहाँ पर होता है ।
जीवन समर कठिनतम प्राय: खेल वहाँ पर होता है ।
प्रभु पर सारा भार सौंपकर, वे हल्के हो जाते हैं ।
अनायास निष्काम कर्म का योग साध वे पाते हैं ।।३।।

हैं समदृष्टि सदा रखते वे रंक और अवनीश पर ।
इह-पर दोनों सुख मिलते हैं बाबा के आशीष पर ।।

भक्ति-भाव से परम भक्त जब उनका ध्यान लगाते हैं ।
जीवन में अविचल निष्ठा का वे अनुपम वर पाते हैं ।
श्रद्धामय निज हृदय सजाकर जीवन सफल बनाते हैं ।
हर प्राणी में ईश्वर का आभास सदा वे पाते हैं ।।

कदम-कदम पर होता है, विश्वास उन्हें जगदीश पर ।
इह-पर दोनों सुख मिलते हैं बाबा के आशीष पर ।।४।।



[स्रोत : 'पावन प्रसाद' मासिक, अनुभव विशेषांक, जनवरी '९४]

जय श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज

★ डा० हनुमान साहु

मैं अपने आप में चकित हूँ क्योंकि रात्रि के लगभग सवा बजे मुझे स्वप्न हुआ कि 'पावन प्रसाद' का अनुभव विशेषांक छपकर लगभग तैयार भी हो गया किन्तु अभी तक कोई अपना निजी अनुभव तुमने लिखकर प्रकाशनार्थ नहीं दिया। मुझे लगा कि कोई शक्ति मुझे भी अपने इस कर्तव्य-पालन के लिए उद्बोधन दे रही है।

मैं अपनी धर्मपत्नी तथा बच्चों के साथ गत २६ दिसम्बर को विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम गया था। उस समय मंचासीन दिव्य-रूप श्री देवराहा हंस बाबाजी महाराज लौकिक कल्याण का अभियान भक्तों के बीच चला रहे थे। हमलोग साष्टांग दण्डवत् कर जब उनकी ओर देखने लगे तो प्रभु बोले कि ठीक से दर्शन कर लो! पुनः कुछ ही क्षणों में महाराज जी ने कहा—'हनुमत् तुझे लीला दिखाऊँ!' मैं उत्साहित होकर बोला—'महाराज जी सबों को दिखलाइए, कृपा होगी।' तब प्रभु ने वही लीलाएँ दिखाईं जिन्हें अपने पूर्व के योगिराज देवराहा बाबा के शरीर से सरयू-तटवर्ती आश्रम पर १९६८ तथा १९८७ में हमें देखने का सौभाग्य हुआ था।

१९८७ में सरयू-तटवर्ती आश्रम पर रात्रि के १० बजे हम चार अन्य भक्तों के साथ श्री महाराज जी के दर्शन में थे। उस समय प्रभु के दोनों पैर मंच के नीचे लटक रहे थे और प्रभु योग पर प्रवचन दे रहे थे। हम उस प्रवचन को टेप करते जा रहे थे। इस प्रकार मंच से मात्र एक फीट की दूरी पर हम टेप के साथ देर तक रहे। हमने निवेदन किया कि 'प्रभु, चरण-स्पर्श भी देने की कृपा की जाय।' प्रभु बोले—'अभी नहीं, समय आने पर दूँगा।'

अक्तूबर, १९८९ में हम महाराज जी के दर्शन में सरयू-तट पर ही जब थे तो वहीं पर एक दूसरे भक्त को कम्बल मिला और मुझे मात्र एक अम्बर में प्रसाद प्राप्त हुआ। मेरे मन में विचार आया कि अम्बर बहुत छोटा है। मैंने अपना यह भाव किसी को बताया नहीं, परन्तु मन में झंझावात चल रहा था क्योंकि हम लगभग चालीस भक्तों के कतार में खड़े थे।

वह छोटा अम्बर मेरे पास अभी तक है। प्रसाद मिलने के बाद जब छुट्टी हो चुकी तभी महाराज जी सबों के सामने बुलाकर मुझे बोले कि 'बच्चा, बड़ा अम्बर भी समय आने पर मिल जाएगा।' यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ क्योंकि इससे स्पष्ट हो गया कि महाराज जी मेरी हीन भावना भी इस क्रम में जान गये हैं!

जब सद्गुरुदेव महाराज जी वृन्दावन में यमुना नदी के किनारे निवास कर रहे थे, तो हम उनके दर्शन में पहुँचे। महाराज जी ने मुझे तीन दिन तक रुकने का आदेश दिया। उस समय होली का समय था। प्रभु ने दया करके मुझे योग की कुछ क्रिया बतायी और आदेश हुआ कि फिर शीघ्र दर्शन में आ सको तो कुछ पूरक अन्य क्रियाओं की दीक्षा देंगे। किन्तु अभाग्यवश शीघ्र हम पुनः दर्शन में उपस्थित नहीं हो सके। और हम पुनः वृन्दावन जाने का कार्यक्रम बना ही रहे थे कि दूरदर्शन पर यह अत्यन्त विक्षोभ और शोक का समाचार आया कि योगिराज श्री देवराहा बाबा शरीर त्याग दिया। इस समाचार ने हमें सहसा अनाथ बना दिया और हम रोने लगे। प्रभु के आदेशानुसार उनके समक्ष शीघ्र पुनः उपस्थित होकर उनका आशीर्वाद नहीं पा सकने का हमें दीर्घ समय तक खेद रहा।

बाद में अन्य भक्तों के माध्यम से हमें मालूम हुआ कि प्रभुवर ब्रह्मर्षि श्री देवराहा बाबाजी का अपने विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम के ही संत शिष्य श्री हंस बाबाजी की काया में प्रत्यावर्त्तन हुआ है। यह सुनकर विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम मैं गया और श्री देवराहा हंस बाबाजी महाराज का दर्शन कर कृत-कृत्य हुआ। २७ दिसम्बर, १९९२ को विन्ध्याचल आश्रम पर जब १ बजे दिन में मेरी छुट्टी हो गयी तो मैं साष्टांग दण्डवत् कर और प्रसाद लेकर दस कदम ही आगे बढ़ा था कि योगिराज-स्वरूप श्री हंस बाबा ने फिर मुझे लौटाया और बोले—'बच्चा, प्रसाद नहीं लोगे ?' तब मैंने उत्तर दिया कि 'महाराज, चादर तो प्रसाद से भरा हुआ है।' तब क्षणेक बाद चरण नीचे करके श्री हंस बाबा बोले कि चरण-स्पर्श बाकी है, इस बार वह भी ले लो। तब हम पत्नी सहित चरण माथे पर लेकर पुनः कृत-कृत्य हो गये और सरयू-तट आश्रम की उस बात को स्मरण किया कि पूज्य बाबा ने उस समय अपना चरण देना स्थगित कर दिया था।

हम जब पुनः चलने को हुए तो देखा कि मंच से धोती में प्रसाद मिला और साथ ही आदेश हुआ कि यह बड़ा अम्बर है, इसे पहनना। हम इस अम्बर को भी पूर्व के योगिराज द्वारा प्रदत्त छोटे अम्बर के साथ बड़े भक्ति-भाव से पूर्ववत् पूजा स्थल पर रखे हुए हैं। और बाबा की बात सुनकर पूर्व स्मृति के उद्‌बुद्ध हो जाने से उस समय मेरी आंखों से आँसू की धारा भी बहने लगी थी।

इस प्रकार मुझे यह पूर्ण विश्वास हुआ कि श्री हंस बाबा में योगिराज श्री देवराहा बाबा का ही प्रवेश है और अब दोनों अभेद हैं। अतएव हम साहस जुटाकर

बोले कि प्रभु, एक वस्तु और बाकी है। जल्द ही जवाब मिला कि वह तेरे घर पर ही सम्पन्न हो जायेगा, तेरे पटना निवास स्थान पर हो। मुझे हर्ष और विषाद दोनों हो रहा था। हर्ष इसका कि महाराज जी श्री देवराहा हंस बाबा के रूप में आ गये हैं तथा विषाद इसका कि इस तथ्य का बोध हमें देर में हुआ।

विगत १३-७-१९९३ को जब पूज्य श्री वैरागी बाबा हमारे पटना निवास स्थान पर पधारे तो उन्होंने श्री देवराहा हंस बाबाजी महाराज के निर्देशानुसार ही मुझे वे शेष योग-क्रियाएँ भी बतायीं जिनका पूर्ण अभिज्ञान पूज्य योगिराज बाबा से प्राप्त करने में स्वयं विलम्ब कर देने के कारण मैं समर्थ नहीं हो सका था।

गीता के १२वें अध्याय में भगवान् कृष्ण में अपने प्रिय भक्तों के लक्षण विस्तार से बताये हैं। उन्होंने कहा है कि योगियों में भी जो श्रद्धावान भक्त तन-मन से मुझे भजता है, वह अत्यन्त श्रेष्ठ है।

जो भक्त आत्मा-विषयक ज्ञान से तृप्त है, जो मिट्टी, लोहा और सोना रत्न को एक समान समझने वाला है वह श्रेष्ठतम योगी माना जाता है। ये सारे भाव श्री हंस बाबाजी में पूर्णतः भरे हुए हैं। अपने आप में दिगम्बर-स्वरूप रह-कर भी वे भक्तों में तीनों लोकों की सम्पदा लुटाते हैं।

योगिराज अपने आदेशों में हमेशा कहा करते थे कि योगी की कोई निश्चित आयु नहीं होती, उनकी सदा-सर्वदा ब्रह्मलीन अवस्था रहती है। अब हम सबों के बीच योगिराज देवराहा बाबा ही हंस बाबा के रूप में आकर विश्व का कल्याण कर रहे हैं तथा सभी भक्तों को सनाथ कर रहे हैं।

जय गुरुदेव, जय श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज !

हरिः ओ३म तत्सत् !



[सूत्र : 'पावन प्रसाद', अनुभव विशेषांक १९९४ ई०]

योगिराज श्री देवराहा बाबा ही श्री हंस बाबा के रूप में अवतरित हैं

★ श्री वायुनन्दन मिश्र

मैं बेतिया (पूर्वचम्पारण्य जनपद, बिहार) के एक सुदूर ग्राम का निवासी हूँ। मैं आप श्रद्धालु सतीर्थ बन्धुओं का अनुज हूँ। मुझे १९ नवम्बर, १९८२ कार्तिक पूर्णिमा को परम पावन सरयू-तट स्थित आश्रम पर अमितविभूति योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज से विधिवत् दीक्षा-प्राप्त करने का सौभाग्य हुआ था। तत्पश्चात् बहुत सारी असुविधाओं के मध्य शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर जीवन-विधा को व्यवस्थित करने का प्रयास करता रहा। संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की पर आजीविका का आधार अभी मिला नहीं था। इसी प्रकार घूमते-घामते जिला मुख्यालय बेतिया शहर में मैं आ गया। श्री महाराज जी का एक आश्रम बेतिया शहर के पोस्टल कॉलोनी में है जहाँ उनका विग्रह भी चरण-पादुका के रूप में स्थापित किया गया है तथा वहीं श्री राम-लक्ष्मण-सीता और श्री हनुमान जी की मूर्तियाँ भी स्थापित हैं। धीरे-धीरे मैं वहीं आ लगा तथा १९९४ के राम-विवाह के शुभ अवसर पर श्रद्धालु गुरु भाइयों ने मुझे उन विग्रहों की सेवा के लिए सन्नद्ध कर दिया।

तब से मैं वहीं जुड़ा रहा था।

सन् १९९१ के अक्टूबर माह में आश्विन दशहरा का दिन था। मैं आश्रम पर था और पूजा में लगा हुआ था। नवमी की रात्रि को मैंने एक दिव्य स्वप्न देखा। मैंने देखा कि मैं विन्ध्याचल में माता के मंदिर में पूजा हेतु गया हुआ हूँ। उसी समय एक अपरिचित संत मेरे निकट आये तथा मुझसे जिज्ञासा प्रकट की कि– "बच्चा, कहाँ से आये हो?" तब मैंने अपने को बेतिया (बिहार) से आने वाला बताया और उनके चरण स्पर्श किये। संत जी के अन्य प्रश्नों पर मैंने उन्हें बताया कि माँ की कृपा से ही मैं आया हूँ और उनकी दया ही सर्वोपरि है। मैंने उन्हें यह भी बताया कि बेतिया में श्री देवराहा बाबा आश्रम का पुजारी

भी हूँ। परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से मैंने जब श्री संत जी से जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने अपने को श्री देवराहा बाबा आश्रम का बताया। मेरे इस प्रश्न पर कि क्या यहाँ भी बाबा का आश्रम है, उन्होंने 'हाँ' कहा और दिखलाने के लिए मुझे साथ ले चले। जिस पथ से वे मुझे चले वह निर्जन घनघोर जंगल होते हुए पहाड़ से गुजरा। पहाड़ के मध्य एक गुफा है जिसमें रेलगाड़ी भी चलती है और उसपर हम सवार हो गये हैं। फिर मैंने देखा कि गाड़ी अचानक रुक गयी है और उससे बहुत लोग उतर रहे हैं और सबसे पीछे परम पूज्य गुरुदेव श्री देवराहा बाबाजी भी उसी गाड़ी से उतर रहे हैं! संतश्री जी मेरे साथ-साथ थे और अब वे गुरुदेव को साष्टांग दण्डवत् निवेदित कर रहे हैं। मेरी दृष्टि पड़ने पर मैं भी दौड़ा और श्री गुरुदेव जी के पावन श्रीचरणों में जा लगा। मैं वहाँ फूट-फूटकर रोने लगा। मैंने रोते-रोते श्री गुरुदेव जी से जिज्ञासा की—"प्रभु, आप तो समाधि ल चुके हैं, फिर यहाँ कैसे दर्शन हो रहा है?" तब श्री महाराज जी बोले—"बच्चा, मैं अब यहीं हूँ!"

ये सारी बातें सच्ची घटना हैं। सुना था कि भोर का स्वप्न सच होता है। मै उद्विग्न रहने लगा और विन्ध्य-वासिनी माता के दर्शन हेतु लालायित रहने लगा। सोचता था—स्वप्न जिस स्थल का है—शायद वहीं कुछ सच्चाई को राह पाऊँ। ३ मार्च, १९९३ को मुझे तदर्थ समय मिल गया। मैं बेतिया से कुछ गुरु-भाइयों के साथ माँ विन्ध्यवासिनी की पूजा-अर्चा हेतु गया और वहीं पंडों तथा अन्य लोगों से पूछने पर श्री देवराहा बाबा आश्रम का पता चला और विदित हुआ कि आश्रम विंध्याचल से दक्षिण की ओर करीब ७ किलोमीटर की दूरी पर है। वहाँ जाने के लिए बेतिया के भक्तों ने एक टेम्पो की सवारी कर ली।

आश्रम प्रांगण में प्रवेश के साथ ही श्री सीताराम एवं राधा-कृष्ण मंदिर के ऊपरी भाग से प्रश्न हुआ—"बच्चा, कहाँ से आये हो?" और उत्तर में जब बिहार के बेतिया से बताया गया तो निर्देश मिला—आगे मंच है, वहीं दर्शन होगा।

गुरु-आश्रम के कुँआ, मंदिर, गोशाला, सरोवर, उद्यान आदि-आदि समेत समस्त चर-अचर का अगाध श्रद्धा, उत्सुकता और सुखद विस्मय से दर्शन करते हुए, मंच के निकट हमलोग पहुँचे तथा राम-धुन

और कीर्तन में लग गये। बाद में श्री-श्री हंस बाबा जी का वहाँ मचासीन दर्शन हमने पाया।

दर्शनोपरांत हम सभी भक्तों को अकाय हुए पूज्य बाबा में और श्री हंस बाबा में कोई अंतर नहीं लगा। आचार-व्यवहार आदि सब कुछ हमें श्री-श्री देवराहा बाबा जी की ही तरह लगा। प्रतीत होता था जैसे पूज्य बाबा ही नया युवा शरीर धारण किए हुए हैं। बाबा वही हैं, शरीर नया धारण कर लिया है! अर्थात् यों कहें कि योगिराज महाराज का ही दर्शन युवा शरीर में अब हम कर रहे हैं।

योगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण ने ही स्वयं कहा था—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
--(गीता २/२२)

अर्थात् जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्याग कर दूसरे नये शरीर को प्राप्त करता है।

मंदिर के मुंडेरे पर से हमलोगों को निर्देश देने वाले भी श्री हंस बाबा जी ही थे किन्तु हमलोगों ने करीब से उन्हें नहीं देखा था। तब मुझे यह भी भान नहीं हो पाया था कि विन्ध्याचल मन्दिर में पाठ करने के समय जिस संतश्री का निकट से दर्शन हुआ था और जो 'श्री देवराहा बाबा आश्रम यहीं पर है'—यह कहकर उसे दिखलाने के लिए मुझे साथ-साथ लेकर चले थे, उस सारे स्वप्न में मेरे साथ मार्ग-दर्शक महात्मा के रूप में आप ही थे।

स्वप्न के साकार होने के अध्याय के आधार पर श्री-श्री महाराज जी को—जिन्हें अबतक 'श्री हंस बाबा' के सम्बोधन से जाना जाता रहा है—उन्हें निस्सन्देह अब 'श्री देवराहा हंस बाबा' कहना ही उचित होगा। मेरे समान विन्ध्याचल स्वर्गाश्रम परिसर से बाहर पूज्य बाबा की प्रथम यात्रा बिहार के ही विभिन्न क्षेत्रों की हुई और इस क्रम में बेतिया निवासी भक्तों पर उनकी यह विशेष कृपा हुई कि उस आश्रम

पर भी वे आये जहाँ मैं १९८४ से पुजारी था। वहीं उनका मंच बना और अन्य भक्तों के साथ मैं भी सेवक के रूप में कार्य करता रहा।

वहाँ पर मुझे मंचासीन श्री देवराहा हंस बाबा गुरुदेव की सेवा में तीन दिन निर्जल, ९ दिन जलाहार पर तथा दिन मात्र फलाहार पर रहने की आज्ञा भी सहर्ष शिरोधार्य हुई और इन परीक्षाओं के उपरान्त ही अंततः मंच-सेवा में निरत रहने का परम शुभंकर आदेश मुझे मिल सका।

जून १९९३ में श्री-श्री देवराहा हंस बाबाजी महाराज पटना शहर के गंगा किनारे उत्तरी तट पर श्रद्धालु भक्तों को दर्शन प्रदान करते रहे थे। उनके दर्शन में बेतिया के भक्तों के साथ मैं भी उपस्थित हुआ था तथा वहीं मुझे श्री-श्री महाराजजी की सेवा में सन्नद्ध होने का सुअवसर प्रदान हुआ।

सम्प्रति तब से मैं मंच की सेवा में हूँ। इस बीच पूज्य महाराज जी की विपुल एवं अजस्र योग विभूतियों के एवं ऐश्वर्यों के दर्शन होते रहे हैं। अकाय श्री देवराहा बाबा का सूक्ष्म शरीर श्री-श्री हंस बाबा में उसी क्षण से विद्यमान है जब से श्री-श्री सद्गुरुदेव ने ऐसी इच्छा की। योगिराज बाबा के मुखपत्र श्री-श्री 'पावन प्रसाद' में इसका विवरण लगातार आरम्भ से ही प्रकाशित होता रहा है।

सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबाजी की जय !
अमित-महिमामय श्री देवराहा हंस बाबाजी की जय !!



[स्रोत : 'पावन प्रसाद' मासिक, अनुभव विशेषांक, जनवरी '९४]

'भक्तन के हित करन को धर्‌यो दिव्य तनु आज'

★ श्री जगदीश प्रसाद मोहनका

मैं परम पूज्य अनन्तश्री देवराहा बाबा जी का आश्रित हो गया था। 'गुरु करो जान कर, पानी पियो छान कर'—किसी की यह उक्ति सुनकर मैं मन-ही-मन किसी सिद्ध संत, ब्रह्म-निष्ठ गुरु की खोज में बराबर रहने लगा था।

इसी क्रम में परम पूज्य अमित-विभूति श्री-श्री देवराहा बाबा के सम्बन्ध में अनेक प्रशस्तियाँ मैंने सुनीं और उनके प्रति श्रद्धावनत रहने लगा। अब अभिलाषा यह थी कि कब और कैसे उनका दर्शन मिले। अचानक वह अवसर भगवान विश्वनाथ की दया से मुझे बनारस प्रवास के समय मिल गया।

ज्ञात हुआ कि बाबा गंगातट पर नदी की धारा में मंचासीन हैं। मैंने तब अविलम्ब श्री-श्री बाबा का दर्शन लाभ किया और उनसे गुरु-दीक्षा प्राप्त की। अब मैं उनके ही स्मरण-चिन्तन में खोया रहने लगा। किन्तु सहसा एक दिन सूचना मिली कि श्री-श्री बाबा ब्रह्मलीन हो गये!

यह जानकर मैं पुनः निरवलम्ब और अनाथ-सा हो गया।

गत वर्ष १९९३ फरवरी में ज्ञात हुआ कि श्री-श्री देवराहा बाबा हाजीपुर आ रहे हैं! एक गुरु-भाई ने मुझे यह समाचार सुनाया। मैंने यह अविश्वसनीय समाचार सुनकर उन्हें कहा कि यह क्या बता रहे हैं आप! श्री-श्री बाबा तो बहुत पूर्व ही ब्रह्मलीन हो गये हैं और वृन्दावन यमुना तट पर उन्होंने अपना शरीर त्याग किया था। गुरु-भाई भागवत भगत ने मेरे आश्चर्य पर अपना स्पष्टीकरण दिया कि 'विंध्याचल स्वर्गाश्रम के हंस बाबा, जो श्री-श्री देवराहा बाबा के परम शिष्य थे, अब उन्हीं की काया में बाबा के कारण शरीर का अवतरण हो गया है और वे अब बाबा-स्वरूप लगते भी हैं।

उत्सुकता और परम आश्चर्य के अधीन, साथ ही गुरु के पुनः दर्शन के उत्कट औत्सुक्य वश, मैं श्री भागवत भगत के साथ हाजीपुर में पवित्र नारायणी नदी के चन्द्रालय तट पर उनके दर्शन हेतु गया। दर्शनोपरान्त लगा कि साक्षात् श्री देवराहा बाबा ही वहाँ विराजमान हैं। एक तरफ विस्मय बोध और दूसरी ओर गुरु के सान्निध्य का सुअवसर ! मैं श्रद्धावनत हो चरणों में पड़ गया, साष्टांग दंडवत् निवेदित किया। अपार भीड़ लगी हुई थी। श्री-श्री देवराहा हंस बाबा लोगों का कल्याण कर रहे थे—उनकी शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की व्याधियों का निराकरण कर रहे थे।

फिर तो मेरे द्वारा उनके दर्शन का क्रम चल पड़ा। उनके विहार प्रवास में कभी डेहरी-ओन-सोन, कभी धनबाद, कभी निरसा में मैं दर्शन-लाभ पाता रहा। मन फिर भी नहीं अघाया। बार-बार दर्शन की इच्छा बनी रही।

मुझे मेरे भगवान पुनः मिल गये थे—मेरा कठिन से कठिन कार्य अब ऐसा लगता है कि साक्षात् भगवान ही निपटा रहे हैं। अब मैं श्री-श्री देवराहा बाबा की नौका में सम्पूर्णतः सवार हूँ, अब गठरी माथे पर क्यों रखूँ, नौका पर ही उसे भी क्यों नहीं धर दूँ !

श्री देवराहा हंस बाबा भगवान के ही अवतार होकर आये हैं। 'भक्तन के हित करन को धर्यो दिव्य तनु आज'— मेरी अनुभूति यही है।

अतएव मैं सभी श्रद्धालु अध्यात्मानुरागी जनों से निवेदन करता हूँ कि उनके दर्शन से आप भी लाभ उठायें, कृत-कृत्य हों।



'एक बार विन्ध्याचल आश्रम ने फिर आज पुकारा है'

★ डॉ० योगेश्वर प्र० सिंह 'योगेश'

एक बार विन्ध्याचल आश्रम ने फिर आज पुकारा है।
पूज्य हंस बाबा का मिलता, सबको जहाँ सहारा है।।

भक्तिपूर्ण परिवेश शान्तिमय, वृक्ष जहाँ बतियाते हैं।
पूज्य देवराहा बाबा की महिमा याद दिलाते हैं।
कभी राम का, कभी कृष्ण का, जहाँ गूँजता नारा है।।१।।

ब्रह्म एक हैं, उनकी ही सत्ता से दुनिया सारी है।
उन्हें जानने पर न दुबारा फिर आने की बारी है।
राहत मिलती उसे वहाँ, जो इस दुनिया से हारा है।।२।।

जो भी गया, उसे हीं मिलता, ढारस और दिलासा है।
आर्त जनों के लिए द्वार रहता हर समय खुला-सा है।
बाबा की वाणी से निःसृत विमल स्नेह की धारा है।।३।।

जीव भ्रमित, घूमा करता है कठिन मोह के बन्धन में।
स्वार्थ विवश वह भूल गया है, ईश्वर को अपने मन में।
जिसने किया न सन्त-संग, सच में विपत्ति का मारा है।।४।।

भक्तों का सौभाग्य, भक्ति का बाँट वर रहे बाबा हैं।
वहाँ उपस्थित वृन्दावन, मथुरा, काशी और काबा हैं।
शरणागत जो हुआ, उसे फिर आना नहीं दुबारा है।।५।।



[स्रोत : 'पा० प्र०', जनवरी, अनुभव विशेषांक १९९४]

'मैं पुनः शीघ्र अवतरित होऊँगा': योगिराज के वचन की अटल सार्थकता

★ श्री विनोद कुमार मिश्र

१६ जून, १६६० दिन मंगलवार, तदनुसार कृष्ण पक्ष योगिनी एकादशी आषाढ़ सं० २०४७ को वृन्दावन धाम में मंचासीन गुरु भगवान के शरीर छोड़ने की खबर दूरदर्शन द्वारा रात्रि समाचार में प्रसारित हुई।

मैं उस समय सारन जनपद बिहार के अपने छपरा निवास पर था। बिजली के गुल हो जाने के कारण मैं पूरा समाचार सुन नहीं पाया। बाद में दूसरे दिन समाचारपत्रों द्वारा यह अत्यन्त दुखद संवाद हम सभी सतीर्थ बन्धुओं को पूर्णतः विदित हुआ। बाद में समवेत निर्णयानुसार कुछ अन्य बन्धुओं के साथ मैं भी वृन्दावन में आयोजित भंडारा में शामिल हुआ। वहाँ संन्यासी गुरुभाई ब्रह्मचारी श्री देवदास जी ने बताया कि महाराज जी का निर्देश है कि कोई भी भक्त दुःखी न हो, आँसू नहीं बहाये क्योंकि मैं पुनः शीघ्र अवतरित होऊँगा और किसी-न-किसी रूप में दर्शन दूँगा—और यह भी कि भक्त जहाँ भी होंगे मैं पूर्ववत् उनका मार्ग-दर्शन करता रहूँगा।

उस समय मुझे तथा अन्य भक्तों को यही लगा कि ब्रह्मचारी देवदास जी हमें मात्र सांत्वना और तोष देने के भाव में यह सब कह रहे हैं। किन्तु भगवन् की वाणी भी याद आने लगी कि—'भारत का कल्याण होगा, कोई आपत्ति नहीं आयेगी, गो-रक्षा अवश्य होगी...... मैं शरीर छोड़ने के उपरान्त भी भारत में रहकर भारत का कल्याण करूंगा....विश्व मेरा है और मैं विश्व का हूँ'—आदि।

मेरी समझ से परे था कि यह सब अब कैसे होगा। तथापि यह अटूट विश्वास भी था कि 'वृथा न जाहिं देव ऋषि वाणी'—गुरुदेव महाप्रभु

ने जब कहा है तो ऐसा होना ही है, होगा ही। भगवन् कहा करते थे—"बच्चा, मेरा आदेश तुम लोगों की तरह का नहीं होता, मेरा आदेश तो हवा, सूरज, आकाश, पृथ्वी को हुआ करता है और परिस्थितियाँ ऐसी बन जाती हैं कि कार्य सिद्ध हो जाता है, घटना घटित हो जाती है।"

समय बीतता गया। 'पावन प्रसाद' के माध्यम से लेख और संवाद आने लगे, आते गये। मैं भी उत्सुकता से भगवन् की अवतरण-लीला के विषय में पढ़ता रहा और जब प्रथमतः मोतीहारी में मंचासीन श्री हंस बाबा जी के दर्शन हुए तो प्रतीत हुआ जैसे सचमुच साक्षात् महाराज जी ही पूर्ववत् पधारे हुए हैं। अपना पूर्व शरीर त्यागने के पहले जो उन्होंने कहा था आज वही दिखलाई पड़ रहा है।

फिर समय ऐसा भी आया जब हाजीपुर (बलभद्रपुर) में नारायणी तट पे पधारे तथा उनकी असीम दया इस प्रकार विकीर्ण होने लगी कि सभी भक्त ओत-प्रोत हो गये। भगवन् की इच्छा होते ही परिस्थितियाँ तद्नुकूल हो जाती हैं।

छोटी-छोटी बातों को कितना गिनाया जाय। मेरी निजी तबादले की बात आयी तो मैंने भगवन् से प्रार्थना की कि पटना में पदस्थापन हो सके तो मेरे लिए भी उपयुक्त होगा और अन्य बन्धुओं के लिए भी मैं विशेष उपयोगी हो सकूँगा। और इसके एक माह बाद ही यहाँ के सबसे प्रधान कार्यालय में मेरा पदस्थापन एक अत्यन्त भगवद्भक्त उच्च अधिकारी के अधीन हो गया।

अब परम पूज्य भगवन् की दया से सभी भक्तों के हृदय में अटूट विश्वास और भक्ति की धारा प्रवाहित हो रही है। और भक्तगण इसे अमृतमय धारा में अवगाहन कर धन्य-धन्य हैं।

सद्गुरुदेव योगिराज श्री देवराहा बाबा जी महाराज की जय !

महर्षि देवराहा-वपु श्री हंस बाबा जी महाराज की जय !



[स्रोत : 'पावन प्रसाद', फरवरी १९९४ अंक]

पूज्य हंस बाबा जी महाराज के प्रति विनम्र अभ्यर्चन

□ श्री विश्वनाथ जायसवाल

ब्रह्म-रूप बाबा देवराहा नमन आपका सौ-सौ बार।
हंस रूप अवतरण आपका, आप दया के पारावार॥

भक्तों के संरक्षक, निर्बल-जन के प्रबल सहारे।
आप सकल अध्यात्म शक्ति के उत्थापक आधार॥

आपके अन्तर्धान हुए-से बने थे हम निष्प्राण।
मानो महाप्रलय था आगत, खंडित था संसार॥

किन्तु आपका पुनः आगमन बना अमित अवलम्ब।
निश्चय होगा भगवद्भक्तों का अब बेड़ा पार॥

रोग-व्याधि से मुक्ति हो रही, मिला आत्म-कल्याण।
कलियुग में सतयुग का आगम होता है साकार॥

अब कालिय-मद मर्दन होगा, श्याम करेंगे नृत्य।
जगती के दुख विरमित होंगे, क्लेशों का परिहार॥

भक्त-हृदय में, शिष्यों में, जो घनीभूत थी पीड़ा।
हुई दूर वह शरण आपके, मिला पूर्ण निस्तार!!

○ ○ ○

परम-विभु श्री देवराहा हंस बाबा जी महाराज की जय!



योगिराज श्री देवराहा बाबा का हंसावतार

श्री जितेन्द्र कुमार सिंह

सर्वप्रथम २१ नवम्बर, १९७८ को मैंने श्री गुरुदेव योगिराज देवराहा बाबा जी महाराज के दर्शन का लाभ पाया।

उसी दर्शन में महाराजश्री से मैंने मन ही मन प्रार्थना की कि मुझे अध्यात्म का प्रायोगिक ज्ञान हो क्योंकि मैं विज्ञान का छात्र था। उस काल मुझे महाराजश्री से जो ज्ञान मिला वह प्रायोगिक ही था। मैं उन क्रियाओं का थोड़ा अनुभव व्यक्त करता हूँ।

पूज्य महाराजश्री के अकाय होने के बाद मैं लगभग छः मास तक बड़ा विषण्ण रहा था। तब एक दिन मुझे बोध हुआ कि जब महाराज जी ने अपने शीघ्र प्रत्यावर्त्तन का आश्वासन भी अपने प्रयाण के पूर्व दिया था तो सम्भव है वे परकाया-प्रवेश विधि ही अपनायें जैसा कि लोक-श्रुति के अनुसार पहले भी उन्होंने किया था। तब एक दिन विक्रमगंज में गुरु भाई श्री यमुना पाठक के माध्यम से जानकारी प्राप्त हुई कि विन्ध्याचल से ७ किलोमीटर दूर स्थित पूज्य महाराज जी का जो आश्रम है वहाँ श्री हंसदास जी महाराज मंचासीन हुए हैं तथा वे लोग नवरात्र १९९१ में वहाँ दर्शन में गये थे। उन्होंने इस विषय में 'पावन प्रसाद' में प्रकाशित लेखों की भी चर्चा की। 'पावन प्रसाद' में ही श्री देवराहा बाबा जी महाराज के अवतरण प्रसंग की कथा मैंने भी पढ़ी और वह प्रसंग पढ़कर मुझे 'सूखत धान पड़ा जनु पानी' की तरह की सांत्वना मिली।

बाद में ५ सितम्बर, १९९२ को श्री हंस दास बाबा जी के दर्शन में मैं गया। वहाँ जाने के मेरे दो-उद्देश्य थे। प्रथम यह कि श्री गुरुदेव महाराज जी के नये रूप का दर्शन लाभ करूं तथा दूसरा कि अपने भविष्य के लिए मार्ग-दर्शन प्राप्त करूं।

वहाँ पहुँचने पर प्रथमतः मैं मंच के समीप जाकर भगवद्-भजन करने लगा। इसके थोड़ी देर ही बाद श्री हंस बाबा जी महाराज का दर्शनप्राप्त हुआ। महाराज जी ने कहा, 'बच्चा—

सत्यहिं गावहिं एक मह, रूप निरन्तर एक,
देखहिं एक ही एक मह, एक ही में ही एक—

इसका क्या अर्थ होगा ?'

मैंने निवेदन किया कि 'महाराज मैं तो अल्पज्ञ हूँ, तथापि मेरी समझ में इसका अभिप्राय यही है कि आप मेरे वही पूज्य महाराज हैं, सद्गुरुदेव योगिराज महाराज हैं, आप निरन्तर स्व-रूप में ही रहते हैं, आप निरंतर एक सत्य ही गाते रहते हैं।

मेरा यह उत्तर सुनकर पूज्य हंस बाबा जी मौन रहे। इससे मेरे प्रथम उद्देश्य की पूर्ति हो गई। उसके बाद श्री हंस बाबा जी महाराज ने पूछा— 'बच्चा, और कुछ कहना है ?' मैंने कहा—'हाँ महाराज, इस काल मेरे लिए जीवन में कुछ उपयोगी कार्य करते रहने की समस्या ही जटिलतम है।'

यह सुनकर श्री हंस बाबा जी महाराज ने मंच पर की कुटी में प्रवेश किया और नेपथ्य में ही प्रश्न हुआ—कौन आया है, क्या चाहता है, आदि।

इसके कुछ ही दिनों बाद श्री हंस बाबा जी महाराज ने मुझे अपनी ही सेवा में लगाये रहने की कृपा की और कहा कि इसी से तुम्हारा कल्याण हो जायगा। पहले तो हमने यक्ष और युधिष्टिर के संवाद के विषय में पढ़ा था लेकिन उस दिन अपने कानों से श्री हंस बाबा और योगिराज देवराहा बाबा का परोक्ष सम्भाषण सुना और श्री बड़े गुरु महाराज के प्रतिरूप श्री देवराहा हंस बाबा के माध्यम से उसका प्रतिफलन भी अब देख रहा हूँ।

इस घटना से मुझे स्पष्ट बोध हुआ कि हम सभी के पूज्य गुरुदेव श्री देवराहा बाबा का हंसावतार हो चुका है।



[सुत्र : 'पावन प्रसाद', मसिक, अनुभव विशेषांक १९९४]

'हंस बाबा आ गये हैं सब दिशा में शोर है'

डॉ० योगेश्वर प्रसाद सिंह 'योगेश'

देवराहा आ गये फिर हंस के अवतार में।
भक्ति की धारा रही बह, इस कठिन संसार में।

लोग दौड़े जा रहे हैं, आस में—विश्वास में।
लोग दौड़ें जा रहे हैं क्षुधा और पियास में।
है नहीं पतवार, टूटी नाव है मझधार में ।।१।।

पुण्य आश्रय विन्ध्यगिरि का, शान्ति का आवास है।
पादपों की डालियों में भी भरा उल्लास है।
झूम उठते लोग शीतल गंधयुक्त बयार में ।।२।।

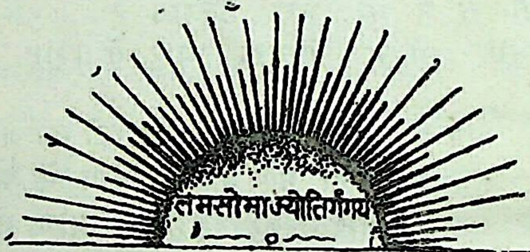
पाप का दल हट रहा, तम घट रहा सब ओर है।
हंस बाबा आ गए हैं, सब दिशा में शोर है।
स्वर निनादित हो रहे हैं हृदय-वीणा तार में ।।३।।

वेद की वीणा मुखर हो रही जिनके बोल में।
वह रही है स्नेह-धारा युगल लोचन लोल में।
ज्योति नूतन बढ़ रही सन्मार्ग पर, रफ़्तार में ।।४।।

पूज्य बाबा हंस जी को नमन शत-शत बार है।
करूँ कैसे वन्दना, यह अधम मन लाचार है।
उठ रही भीषण तरंगें अगम पारावार में ।।५।।






तमसोमाज्योतिर्गमय

